ओ३म्

वर्ष ११ **वेद ज्योति** अंक एक

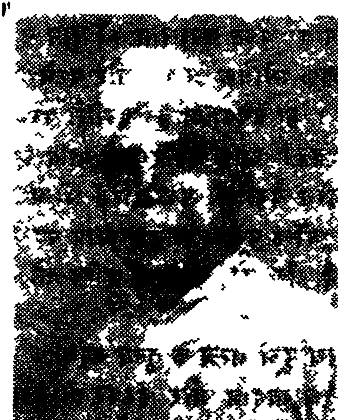
वर्ष ११, अङ्क १, सहस्य(पौष)२०४६ वि०, जनवरी १९८७ ई०

वेद-सृष्टि-संवत् [illegible] वार्षिक शुल्क

सम्पादक- वीरेन्द्रमुनि, सहा. विमलाशास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ

❀ इस अङ्क मे पठनीय — ❀

5:37



स्वामी सत्यपति

त्यागी तपस्वी विद्वान् सन्यासी स्वामी सत्यपति जी आजकल आर्य-वन-विकास फार्म, रोजड़ डा० सागपुर (साबरकांठा गुजरात) में दर्शन एवं योग का प्रशिक्षण शिविर चला रहे हैं।

सत्यार्थ प्रकाश मन्त्र व्याख्या

क्रमाङ्क १३- ऋषि भृगु, देवता अग्नि, छन्द त्रिष्टुप, स्वर धैवत ।

साय साय गृहपतिर्नो अग्नि, प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता ।
प्रातः प्रात, गृहपतिर्नो अग्निः साय सायं सौमनसस्य दाता ॥

अथ. १९.५५.३ ४-

जो सन्ध्या-सन्ध्या काल मे होम होता है, वह हुत द्रव्य प्रातः काल तक वायु-शुद्धि द्वारा सुखकारी होता है ।

जो अग्नि मे प्रात प्रातः काल में होम किया जाता है वह-वह हुत-द्रव्य सायङ्काल-पर्यन्त वायु की शुद्धि-द्वारा बल-बुद्धि और आरोग्य-कारक होता है । (समुल्लास ४)

दोनो मन्त्रोंका उत्तरार्ध ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, पंचमहायज्ञविधि से-

वसोर्वंसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वम् पुषेम ॥ ३
वसोर्वंसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्व शतहिमा ऋधेम ॥४

प्रतिदिन प्रात; साय श्रेष्ठ उपासना को प्राप्त यह गृहपति अर्थात्घर और आत्मा का रक्षक भौतिक अग्नि और परमेश्वर आरोग्य, आनन्द और वसु अर्थात् धन का देनेवाला है। इसीसे परमेश्वर वसुदान नाम से प्रसिद्ध है । हे परमेश्वर! आप मेरे राज्य आदि व्यवहार और चित्त मे सदा प्रकाशित रहो । यहाँ भौतिक अग्नि भी ग्रहण करने योग्य है । हे परमेश्वर ; जैसे पूर्वोक्त प्रकार से हम आप का मान करते हुए अपने शरीर से पुष्ट होते हैं, वैसे ही भौतिक अग्नि को भी प्रज्वलित करते हुए पुष्ट हो।

चौथे मन्त्र का अर्थ पूर्व मन्त्र के तुल्य जानो । परन्तु इसमें इतना विशेष भी है कि — अग्निहोत्र और ईश्वरकी उपासना करते हुए हम लोग सौ हेमन्त ऋतु व्यतीत होजाने पर्यन्त अर्थात् सौ वर्ष तक धनादि की वृद्धि को प्राप्त हों।

श्री क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने अथर्ववेद भाष्य में इस मन्त्र का आधिभौतिक अर्थ भी किया है । तदनुसार अग्नि आचार्य है. हम विद्या-वसु (धन) के दाता से प्रात.- सायं ज्ञान पाकर अपने शरीर को पुष्ट करें और सौ वर्ष तक आयु प्राप्त करें ।

[illegible] विद्यामार्तण्ड ने अग्निका अर्थ [illegible] राजा भी किया है।

करपात्री-मत-मर्दन

[श्री ज्वलन्तकुमार शास्त्री एम.ए. आर्यसमाज वाराणसी]

स्वामी हरिहरानन्द करपात्री का सम्पूर्ण जीवन रूढ़िवादी रहा तथा दकियानूसी मूर्खतापूर्ण परम्पराओं के प्रोत्साहन में व्यतीत हुआ।

अन्तिम समय में सेठों के तर माल ने जोर मारा कि शिष्यों के द्वारा वेदार्थपारिजात लिख दिया। यह 'पराजित' क्या है? गालियों का पिटारा है जिसमें महर्षि दयानन्द के लिए भरपेट गालियाँ दी हैं।

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में पृष्ठ १२ पर महर्षि ने छन्दांसि का अर्थ अथर्ववेद करके चारों वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए बताये हैं—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥(य ३१.७ ऋ १०-९०-९

इस पर श्री करपात्री ने पृष्ठ ८८५ पर लिखा कि छन्दः पद का अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थ ही ठीक है, अथर्व वेद अर्थ करना निराधार है।

मैं अपने इस लेख में श्री करपात्री के मत का मर्दन करूँगा—

१- ऋचः साम यजु के साथ प्रयुक्त छन्दांसि का अर्थ अथर्व ही हो सकता है।

२- यास्क, पाणिनि, सायण, महीधर, उवट आदि ने छन्द का अर्थ गायत्र्यादि छन्द मन्त्र और वेद किया है ब्राह्मणग्रन्थ किसी ने नहीं।

३- सायण ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन। (अथर्व ६-१२-११-१ में इसका अर्थ छन्दोयुक्त मन्त्र, और तै० सं० १०-६ में मन्त्र किया है। उनका न मानना अपने ही मान्य आचार्यों का खण्डन करना है।

४- सायण से प्राचीन भट्ट गोविन्द के श्रुतिविकास (ऋ० द अष्टक द के भाष्य)में १०-१४४ के छन्द का अर्थ 'छन्दोयुक्त मन्त्र' किया है। तीनों वेदों के नाम के साथ छन्दोयुक्त मन्त्र अथर्व ही हो सकता है।

५- ऋग्वेद ६-१११-३ में आता है—

यत्र ब्रह्मा पवमानश्छन्दस्यां वाचं वदन् ।

अर्थात् जहाँ यज्ञ में ब्रह्मा छन्द की वाणी बोलता है। वह अथर्व वेद से ही नियुक्त होता है जैसा कि गोपथ १-३-१,२ में लिखा है—

अथर्वांगिरोविदं ब्रह्माणम् [अथर्ववेदी को ब्रह्मा बनाये।]

वहीं आगे लिखा है कि प्रजापति ने यज्ञ का विस्तार किया- उस ने ऋग्वेद से होता का, यजु से अध्वर्यु का, साम से उद्गाता का, तथा अथर्ववेद से ब्रह्मा का कार्य सम्पन्न किया। अत: अ०१५-७-८ में

तम् ऋचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म च।

इसमें ब्रह्म का अर्थ अथर्व ही है।

गोपथ में कहा है कि ४ वेद हैं- ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद ब्रह्मवेद। यह नाम इसीलिए पडा कि यह इसी छन्द के साथ नियुक्त होता है। अत: सिद्ध हुआ कि छन्द और ब्रह्मवेद अथर्ववेद ही है।

६-पुराणों में यह तथ्य भली प्रकार स्पष्ट कर दिया गया है—

ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांस्याथर्वणानि च।

चत्वारोऽखिला वेदाः सरहस्याः सविस्तराः ॥(हरिवंशपुराण)

यहां ऋक् यजु साम के साथ छन्दांसि आथर्वणानि कहा गया है जिससे यह निर्विवाद समझना चाहिए कि अथर्व वेद का ही नाम छन्दांसि है।

७-यही नहीं किन्तु पारसी धर्म की प्राचीन गाथा में अथर्व को छन्द ही कहा गया है। प्रो० मार्टिन हाग लिखते हैं— पारसियों के पुराने साहित्य गाथा में महात्मा जरदुश्त एक पुराने ईश्वरीय ज्ञान को स्वीकार करते हैं, अथर्वा की प्रशंसा करते और उसी अंगिरा की प्रशंसा करते हैं जिसका वेदों में वर्णन है। गाथा के वे श्लोक ये हैं-

स्पेन्तेम अत्थवा मज्दा मैं गही अहुरा
हत मा वोहू पइरि-जस मनंगहा
दक्षत उष्या तुश्ना महतिश वहिश्ता
नोइत् ना पोउरुश् देगवतो क्यात चिक्शुषो
अत् तो वीस्पेंग अंग्रेंग अषा उना आद्रे

गाथा ४.१८ १२

अर्थात हे अहुरमज्द ! मैंने तुझे आज्ञाकी करनेवाला जाना। जब तेरा सन्देश लानेवाला अंगिरा मेरे पास आता तब उसने जाहिर किया कि सन्तोष अच्छी चीज है। एक मूर्ख-मनुष्य कभी पापी को राजी नहीं

रख सकता क्योंकि वह सत्य का ही पक्ष करता है।

इस गाथा में अंग्रेंग पद अगिरा के लिए आया है जो ... ही वाचक है क्योंकि इसमें लिखा है—

अथर्वांगिरसो मुखम् ॥

अर्थात् अथर्व अंगिरा विराट् का मुख है, इस वाक्य में अथर्वा और अंगिरा एक ही बताये गये हैं। इसलिए जरदुश्त देव जिस के द्वारा ईश्वर सन्देश स्वसमीप पहुंचना बताते हैं वह यही छन्द; वेद है।

अथर्व को छन्द कहते हैं अतः पारसी धर्मका उपदेश जिस साहित्य के द्वारा हुआ है वह भी छन्द या छन्दावस्था कहलाता है। ये दोनों शब्द छन्द और छन्दावस्था के ही रूपान्तर है। प्रो० मैक्समूलर कहते हैं—

'मैं विश्वासपूर्वक कहता हूं कि जन्द शब्द संस्कृत के छन्द शब्द का ही अपभ्रंश है, जिसे पाणिनि और अन्य विद्वानों ने वैदिक भाषा के लिए कहा है।'

'छन्द शब्द वैदिक भाषा में वेदों के लिए इसी कारण प्रयुक्त हुआ है कि वेदों का चतुर्थ भाग अथर्व छन्द, वेद ही कहलाता है, पारसियों का अथर्ववेद से ही अधिक सम्बन्ध है, उनके साहित्य का जन्द नाम अथर्व के ही कारण पड़ा है। अतएव अथर्ववेद के छन्द वेद होने में अब कुछ भी सन्देह नही है।' (द्रष्टव्य— वैदिक सम्पत्ति पृष्ठ ४४२)

८— तस्माद् यज्ञात् ० के महर्षि दयानन्द कृत अर्थों का ही अनुसरण परवर्ती दूसरे वैदिक विद्वानों तथा सनातनी वेद-भाष्य-कारों ने भी किया है। कन्धार्ड़ी जी के हाथ स्व० महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी इस मन्त्र का निम्नलिखित अर्थ करते हैं—

'अर्थात् सबके द्वारा पूजनीय परमात्मा से ऋक् यजु साम और छन्द अर्थात् अथर्व वेद प्रकट हुए।' (वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति पृष्ठ ५०) उनका यह अर्थ महर्षि के अर्थों का अनुमोदन मात्र है।

प० सत्यव्रत सामश्रमी के सुयोग्य शिष्य एवं सामवेद और यजुर्वेदके भाष्यकार स्वामी भगवदाचार्य इस मन्त्र के सम्बन्ध में लिखते है—

'इस मन्त्र में ऋक साम छन्दः और यजुः की उत्पत्तिका वर्णन है। छन्दः शब्द से अवश्य ही अथर्ववेद का ग्रहण हुआ है।'

(सामसंस्कार भाष्य की प्रस्तावना पृष्ठ१३)

स्वामी भगवदाचार्य का यह अर्थ भी स्पष्टतः महर्षि दयानन्द के अर्थ की पुष्टि करता है।

उपसंहार—

इस प्रकार मैंने इस लेख में वेदार्थपारिजात के महर्षि दयानन्द के वेदार्थ की परीक्षा के आरम्भ के भाग का ही विशद पर्यालोचन जाहिर करके महर्षि दयानन्द के अर्थ का मण्डन और कुतर्कों के दास करपात्री के मत का खण्डन किया है। मैंने इस लेख में करपात्री की छिछली युक्तियाँ तथा वैदिक साहित्य मे उनकी कोरी अनभिज्ञता भली भाँति प्रदर्शित करदी गयी है, इसलिए करपात्री के समर्थकों इस डिण्डिम घोष का कोई मूल्य नहीं है कि 'खण्डन की सामर्थ्य तो इन बेचारे आर्यसमाजियों में जन्म-जन्मान्तर में भी आने से रही। जैसे हम यहाँ पर उनकी प्रत्येक पंक्ति को उद्धृत कर उसका अक्षरशः अनुवाद कर खण्डन करते हैं उस तरह का खण्डन वे हमारे किसी ग्रन्थ का भी कर सकने में सर्वथा असमर्थ हैं।'

हम करपात्री की सम्पूर्ण शिष्य-मण्डली को बार बार चैलेञ्ज देते हैं कि वे हमारे इस लेख के प्रतिवाद में कुछ लिखने का साहस दिखायें। क्या दूसरे जीवन या दूसरे कल्प में भी श्री करपात्री इस का खण्डन कर सकेंगे ?

निरुक्त अ. बारह पाद चार

खंड ४०, शब्द २८ साध्याः (सूर्य-रश्मियाँ) – साधन ही बना। ऋचा–

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
ऋ १.१६४.५०

देवों (किरणों) ने यज्ञ से यज्ञ का यज्ञ (संगमन) किया। वे कर्म विस्तृत थे, वे सामर्थ्यवान् किरण फिर सूर्य में संयुक्त होजाती हैं, जहाँ पहली किरणें विद्यमान रहती हैं। तै० ब्रा० ५.७.२६ में आया है कि अग्नि पुरोडाश था, उसे प्राप्त किया, उससे यजन किया।

नैरुक्त कहते हैं कि साध्य द्युस्थानी देवगण हैं किन्तु आख्यान यह बन गया कि पहले देवयुग था।

खंड ४१, शब्द २९ वसवः — जो सबको आच्छादित करें वे वसु हैं। अग्नि वसुओं से वासव कहाता है अतः ये पृथिवीस्थानी हैं। इन्द्र का वसुओं से वासव नाम है अतः ये मध्यस्थानी हैं। विवासन से वसु आदित्य-रश्मियाँ हैं अतः द्युस्थानी हैं, उनकी यह ऋचा है—

सुगा वो देवाः सुपथा अकर्म य आजग्मुः सवनमिदं जुषाणाः।
जक्षिवांसः पपिवांसश्च विश्वे ऽस्मे धत्त वसवो वसूनि ॥
यजु ८.१८-१६

हे देवो! तुम्हारे लिए सुपथ सुगम करदिये हैं जो इस सवन का सेवन करते हुए आओ। हे किरणो, (क्रिमियों को) खाते-पीते हुए तुम हमारे लिए धन दो।

खंड ४२– उनकी ही यह अन्य ऋचा है—

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः।
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥
ऋ ७.३९.३

हे पृथ्वी में होने वाले वसु देवो! तुम यहाँ रमण करो, और हे शुभ्र शोभमान वसुओ! तुम महान् अन्तरिक्ष में गमन करते रहो। हे बहुत वेगवान् वसुओ, तुम अपने पथ हमारी ओर बनाओ। हमें प्राप्त इस दूत अग्नि की बात सुनो।

खण्ड ४३, शब्द ३० वाजिनः– व्याख्या होचुकी, ऋचा यह है–

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः॥

ऋ ७-३८-७

सु-अर्क सुख-प्रापक सुअर्चनीय सुदीप्त निर्धमें में चलनेवाली सूर्य को वेगवान् किरणें, देवोंके यज्ञमें प्रार्थनाओं पर हमें सुखकारी हों। ये साँपों, वृकों, राक्षसों का नाश करती हुई हमसे भय शीघ्र दूर करें।

खण्ड ४१, शब्द ३१ देवपत्न्यः— देवों की शक्तियां हैं, उनकी ऋचा—

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत॥

ऋ ५-४६-७

देवों की पत्नियाँ कामना करती हुई हम तक आवें और सन्तान-जनन तथा अन्न-लाभ के हेतु हमारी रक्षा करें। जो पार्थिव हैं और जो जल के भी कर्म में हैं वे अच्छी तरह प्रार्थित देवियां हमें शरण दें।

उनकी ही यह दूसरी ऋचा है—

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्॥

ऋ ५-४६-८

और इन्द्राणी अग्नायी दीप्त अश्विनी ये देवी शक्तियाँ हमें शुभ हों, रुद्र की पत्नी और वरुणानी सुने। ये देवियां कामना करें जो जायाओं का ऋतुकाल है।

यह पाद ४ और अध्याय १२ समाप्त हुआ॥

❀ दैवत काण्ड समाप्त ❀

—❀—❀—

निरुक्त, अ. १३ यज्ञांग कांड

खंड १— अब ये अतिस्तुति (ईश्वरस्तुति) कहाती हैं, अथवा देवता के महान् ऐश्वर्य होनेसे पूर्ण प्रतीति ही होती है।

१–२ अग्नि-वरुण– वह (निघण्टुकार) पहले अग्नि को कहता है–

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिः० (ऋ २.१.१)

पहले ६.१.१ में पृष्ठ ११४ पर विद्युत्परक अर्थ हो चुका है। यहाँ ईश्वरपरक बताया है इसीप्रकार वरुणका आध्यात्मिक अर्थ ईश्वर है–

नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे। ऋ २.२८.६

हे वरुण ईश्वर, तुमसे दूर होकर कोई आँख भी नहीं झपका सकता।

खंड २ शब्द ३ इन्द्र— इन्द्र की यह ऋचा ईश्वरपरक है—

यद्द्याव इन्द्र ते शतं शत भूमीरुत स्युः।

न त्वा वज्रिन् सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥

ऋ ८,७०.५

हे वज्रशक्तिवाले ईश्वर, यदि तेरे प्रतिमान सैकड़ों द्यौ सैकड़ों भूमि हों वे और सहस्रों भी सूर्य तथा द्यावापृथिवी भी तुम्हें प्रकाशित को नहीं कर सकते।

खण्ड ३, शब्द ४ आदित्य— अब यह आदित्य की ऋचा है-

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥
ऋ १०-८६-२२

हे धर्म में श्रेष्ठ ईश्वर ! जब ऊर्ध्वगामी भक्त तेरे घर (मोक्ष) में आते हैं तब तेरा बहुत खानेवाला संहारक दूरगन्ता और जन-विम हक रूप कहाँ चला जाता है ? जो ईश्वर सबसे बढ़कर है उस आदित्यको हम बताते हैं ।

खण्ड ४, शब्द ५ आदित्यरश्मयः— उनकी यह ऋचा है —

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
अत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥
ऋ १०.८६.१

ईश्वर ने मनुष्य को ज्ञान-रश्मियाँ दीं किन्तु वह उस इन्द्रको प्रकाशक नहीं मानता । जब कि मुझ हृष्टचित्त का मित्र धर्म-श्रेष्ठ ईश्वर जो मेरे सखा है उनके साथ पुष्ट योगियों में हृष्ट होता है, जो स बसे बढ़कर इन्द्र है उस आदित्य को हम बताते हैं।

खंड ५, शब्द ६ अश्विनौ(माता-पिता)— यह ऋचा उनको है-

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥

हे ईश्वर,तू दो तरह की सृणि(दात्री)के समान भर्त्ता तथा हन्ता है, शत्रु-हन्ता राजपुत्र के समान दुष्टों का शीघ्र नाशक तथा काटनेवाला है, जलोत्पन्न रत्न समुद्री और चन्द्रकान्त मणि की तरह मनका विजयी और हर्षप्रद है , वह तू मेरे मरणशील जीवन को अजर अमर कर।

खण्ड ६, शब्द ७ सोम- उसकी यह ऋचा है-

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ ऋ ९-५८-१

जो स्तुति करता है वह सब पाप को तैर जाता है, मन्त्र से पवित्र, वाणी से स्तुत सोम ईश्वर की आनन्द-धारा से वह ऊर्ध्व गति पाता है।

खंड ७, शब्द ८ यज्ञ— इसकी यह ऋचा ऋ ४.५८.३ है—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश ॥

इसके ४ सींग हैं, ये वेद हैं, ३ पैर ३ सवन हैं २ सिर प्रायणीय— उदयनीय इष्टियाँ है, ७ हाथ ७ छन्द हैं, ३ प्रकार मन्त्र-ब्राह्मण-कल्पों

अष्टाध्यायी ३।.४ पाद चार

लाल रंगके अर्थमें लोहितसे कन् हो- लोहितिका लोहिनिका शाटी।

३३ कालाच्च।

और काल से भी कन् हो- कालमुखम् कालक; पट: कालिका शाटी।

३४ विनयादिभ्यष्ठक् ॥

विनय आदि से ठक् हो— वैनयिक सामयिक। १८७ वाँ गण— विनय समय उपायाद्धस्वत्वं च संगति कथंचित् अकस्मात् समयाचार उपचार समाचार व्यवहार सम्प्रदान समुत्कर्ष समूह विशेष अत्यय।

३५ वाचो व्याहृतार्थायाम् ॥

सन्देशार्थ वाक् से ठक् हो— वाचिकम्।

३६ तद्युक्तात्कर्मणोऽण् ॥

उस सन्देश से युक्त कर्मसे अण् हो— कार्मणम्। वार्तिक— अण के प्रकरण में वेद में इनसे भी ठक् हो — कौलाल वारुड नैषाद कार्मार चाण्डाल मैत्र आमित्र।

३७ ओषधेरजातौ ॥

जाति अर्थ न हो तो ओषधि से अण् हो— औषधं ददाति, पिबति।

३८.प्रज्ञादिभ्यश्च।

प्रज्ञ आदि से अण् हो— प्राज्ञ, १८८ वाँ गण—

प्रज्ञ वणिक उशिक उष्णिक प्रत्यक्ष विद्वस् विदन् षोडन् षोडश विद्या मनस्। श्रोत्र शरीरे; श्रौत्रम् जुह्वत् कृष्ण मृगे। चिकीर्षत्; चोर शत्रु योध वक्षस् धूर्त वस् एत् मरुत्, क्रुङ्, राजा सत्वन्तु दशार्ह वयस् आतुर रक्षस् पिशाच अशनि कार्षापण देवता बन्धु।

३९.मृदस्तिकन्।

मृत से तिकन् हो- मृत्तिका।

४० स-स्नौ प्रशंसायाम् ॥

प्रशंसा मेंउससे स और स्न हो— मृत्सा मृत्स्ना -

४१ वृक-ज्येष्ठाभ्यां तिल् तातिलौ च च्छन्दसि ॥

वेदमें वृक से तिल और ज्येष्ठ से तातिल हो- वृकति: ज्येष्ठताति:।

४२ बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्।

कारकवाची बहु और अल्प अर्थ वालशब्दों से विकल्प से शस् हो- बहुश: अल्पश:।

४३ संख्यै-एकवचनाच्चवीप्सायाम्।

संख्या और एकवचन से वीप्सा में विकल्प से शस् हो— द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति— द्विशः ददाति । माषशः; त्रिशः प्रस्थशः पादशः ।

४४ प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ।

प्रति के योग में पञ्चमी से तसि हो— अभिमन्युरर्जुनतः प्रति ।

वार्तिक—आद्यादि से भी तसि हो— आदितः मध्यतः अन्ततः पृष्ठतः पार्श्वतः स्वरतः वर्णतः आदि । यह आकृतिगण है ।

४५ अपादाने चाहीय रुहोः ।

हीय और रुह को छोड़कर अपादानमें तसि हो— ग्रामतः आगच्छति ।

४६ अतिग्रहाव्यथन क्षेपेष्वकर्त्तरि तृतीयायाः ।

अतिग्रह, अव्यथन, निन्दा अर्थोंमें कर्ता छोड़कर तृतीयान्तसे विकल्प से तसि हो – चारित्रेण चारित्रतो वाऽतिगृह्यते । वृत्तेन वृत्ततो वा न व्यथते । वृत्तेन वृत्ततो वा क्षिप्तः ।

४७ हीयमान पापयोगाच्च ।

हीयमान और पाप के योग से भी तसि हो— वृत्तेन वृत्ततो वा हीयते, पापः च ।

४८.षष्ठ्या व्याश्रये ।

विशेष आश्रय में षष्ठी से तसि हो— देवा अर्जुनतोऽभवन् ।

४९. रोगाच्चापनयने ।

और रोग से अपनयन में तसि हो— प्रवाहिकातः कुरु ।

५० अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्य कर्त्तरि च्विः ।

न हुए के होने में कृ, भू, अस्ति के योग में सम्-पद के कर्त्तामें च्वि हो अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति- शुक्लीकरोति शुक्लीभवति शुक्ली स्यात् ।

५१ अरुर्मनश्चक्षुश्चेतो रहो रजसां लोपश्च ।

इनसे च्वि; और अन्त्याक्षर का लोप हो— अरूकरोति, भवति स्यात् उन्मनीकरोति भवति स्यात् । उच्चक्षूकरोति भवति स्यात् । विचेतीकरोति भवति स्यात् । विरहीकरोति भवति स्यात् । विरजीकरोति स्यात् भवति ।

५२ विभाषा साति: कार्त्स्न्ये ॥

सम्पूर्ण अर्थ में विकल्प से साति हो— शस्त्रम् अग्निसाद् भवति, अग्नीभवति । लवणम् उदकसाद् भवति, उदकीभवति ।

५३ अभिविधौ सम्पदा च ॥

अभिव्याप्ति और सम्पदा-योग में भी साति हो ।(उदा० पूर्वसूत्रोक्त)

५४. तदधीनवचने ।

उसके अधीन कहने मे साति हो – राजसात्करोति, भवति,सम्पद्यते ।

५५.देये त्रा च ।

देयमे त्रा भी हो- विप्रत्रा विप्रसाद् वा करोति, भवति,स्यात्,सम्पद्यते ।

५६ ।देव मनुष्य पुरुष पुरु मर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ,

इनसे द्वितीया और सप्तमी मे त्रा बहुलता से हो- देवत्रा, देवान् वा गच्छति, देवेषु वा वसति । मनुष्यत्रा पुरुषत्रा पुरुत्रा मर्त्यत्रा बहुत्रा ।

५७ अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धाद् अनितौ डाच् ।।

अव्यक्त के अनुकरण वाले अवर अर्ध मे दो स्वर वाले से डाच् हो यदि इति परे न हो- पटपटाकरोति पटपटायति पटपटा स्यात् ।

५८ कृञो द्वितीय तृतीय शम्ब बीजात् कृषौ ।।

कृञ् से ही इन ४ शब्दों से कृषि में डाच् हो— द्वितीयाकरोति तृतीयाकरोति शम्बाकरोति(जुते खेत को उलटना शम्ब है)बीजाकरोति

५९ संख्यायाश्च गुणान्तायाः ।।

गुणान्त संख्या से डाच् हो— द्विगुणाकरोति क्षेत्रम् ।

६० समयाच्च यापनायाम् ।।

यापना मे समय से डाच् हो— समयाकरोति ।

६१ सपत्र निष्पत्राद् अतिव्यथने ।।

अतिव्यथन मे इनसे डाच् हो- सपत्राकरोति मृगं व्याधः निष्पत्राकरोति

६२.निष्कुलान्निष्कोषणे ।।

निष्कोषण मे निष्कुल से डाच् हो— निष्कुलाकरोति दाडिमम् ।

६३ सुखप्रियादानुलोम्ये ।।

अनुकूलता मे सुख और प्रिय से डाच् हो— सुखाकरोति गुरुम् प्रियाकरोति ।

६४.दुःखात्प्रातिलोम्ये ।

प्रतिकूलता मे दुःख से डाच् हो— दुःखाकरोति भृत्य ।

६५.शूलात्पाके ।

[illegible] शूल से डाच् हो— शूलाकरोति ।

६६.सत्यादशपथे ।

अशपथ में सत्य से डाच् हो— सत्याकरोति भाण्डं वणिक् ।

६७ मद्रात्परिवापणे ।

मुण्डन में मद्र (और वार्तिक- भद्र) से डाच् हो— मद्राकरोति भद्राकरोति ।

६८.समासान्ताः ।

यह इस पाद ४ की समाप्ति तक समासान्तों का अधिकार है।

६९. न पूजनात्।

पूजनवाची से परे समासान्त न हो— सुराजा। अतिराजा।

७०. किमः क्षेपे।

निन्दा में किम् से समासान्त न हो— किंराजा किंसखा।

७१. नञस्तत्पुरुषात्।

नञ्तत्पुरुष से समासान्त न हो— अराजा असखा।

७२. पथो विभाषा।

नञ्पूर्वक पथ से विकल्प से समासान्त हो— अपथम् अपन्थाः।

७३ बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्॥

बहुगण को छोड़ कर संख्येय बहुव्रीहि से डच् हो उपदशाः उपविंशाः द्वित्राः पंचषाः।

७४ ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे।

अक्षवर्जित इन ५ से अ हो— अर्द्धर्चः धर्मपुरम् द्वीप राजधुरा जलपथः

७५ अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः।

प्रति अनु अव पूर्वक साम और लोम से अच् हो— प्रतिसामम् अनुसामम् अवसामम् प्रतिलोमम् अनुलोमम् अवलोमम्।

वार्तिक— इन ४ के साथ भूमि से अच् हो— कृष्णभूमः उदग्भूमः पाण्डुभूमः द्विभूमः प्रासादः। संख्या के साथ नदी और गोदावरी से अच् हो—पञ्चनदम् सप्तगोदावरम्।

७६ अक्ष्णोऽदर्शनात्।

दर्शन-भिन्न अक्षि से अच् हो— गवाक्षः।

७७ अचतुर विचतुर सुचतुर स्त्रीपुंस धेन्वनडुह ऋक्साम वाङ्मनस अक्षिभ्रुव दारगव ऊर्वष्ठीव पदष्ठीव नक्तन्दिव रात्रिन्दिव अहर्दिव सरजस निःश्रेयस पुरुषायुष द्व्यायुष त्र्यायुष ऋग्यजुष जातोक्ष महोक्ष वृद्धोक्ष उपशुन गोष्ठश्वाः॥

सूत्रोक्त २५ शब्द अच्प्रत्ययान्त निपातित हैं।

७८ ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः॥

इनसे परे वर्च से अच् हो— ब्रह्मवर्चसम् हस्तिवर्चसम्।

वार्तिक— पल्य और राज से भी अच् हो— पल्यवर्चसम् राजवर्चसम्।

७९ अवसमन्धेभ्यस्तमसः॥

अव सम् अन्ध से परे तमस् से अच् हो— अवतमसम् सन्तमसम् अन्धतमसम्॥

शतपथ का ३ अ. पाँच ब्राह्मण २

अब वह यह मन्त्र पढ़कर बीच में घी डालता है—

सिद्यस्यावह देवान यजमानाय स्वाहा । (य ५.१२)११

इससे वह देवोंको यजमानके पास बुलाता है । अब स्रुचाको उठाता है—

भूतेभ्यस्त्वा (य ५.१२) [प्रजा के लिए तुझ को] १२

अब वह परिधियों को य ५.१३ पढ़कर रखता है—

बीच की— ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृंह [तू ध्रुव है, पृथिवी को दृढ़ कर]

दक्षिण की— ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृंह [,, अन्तरिक्ष ,,

उत्तर की— अच्युतक्षिदसि दिव दृंह [,, द्यौ ,,

सम्भारों को- अग्नेः पुरीषमसि । [तू आग का भोजन है] यह पढ़कर, जो सामान होते है वे अग्नि के सर्वस्व के लिए ही होते हैं । १४

पोतु दारु इसका शरीर है, यदि उसकी बनी परिधियाँ हों तो मानो उसको शरीर से ही पूर्ण समृद्ध करता है । १५

गूगल उसका मांस है, यदि गूगल हो तो इसका मांस बढ़ाता है ।१६ सुगन्धतेज(तेजपात)इसका गन्ध है उससे इसे सुगन्धित करता है ।१७

वृष्णि की तुका (मेढ़े की पूंछ के बाल) होती है । एकबार अग्नि उसके सींग पर एक रात रहा, उसका जो अंश वहाँ था वह यहाँ भी हो इसलिए उसके सिर के पास के बालों के गुच्छे को काटकर लाये, यदि वह न मिले तो जो तुका मिले उसी को ले आये । परिधियाँ आग की रक्षा के लिए हैं, इससे दूर पर ही उत्तर में परिधियाँ आती हैं ।१८

—❀—

अध्याय ५ ब्राह्मण ३

पुरुष ही यज्ञ है, इसलिए कि वही इसका विस्तार करता है। विस्तृत होकर उतना ही हो जाता है जितना पुरुष है अतः पुरुष यज्ञ है। १

सिर ही इसका हविर्धान है, इसका देवता विष्णु है। क्योंकि इस में सोम रहता है जो देवोंकी हवि है.इसलिए इसका हविर्धान नाम है।२

आहवनीय मुख है अतः जब आहुति देता है तो मानो मुखके भीतर डालता है। ३

यूप सिर की चोटी, अग्नीध्रीय-मार्जालीय उसके बाहू हैं। ४

सदः उसका उदर है अतः उसमें ही खाते हैं, जो कुछ खाया जाता है वह उदर में ही रक्खा जाता है। सदः सलिए कहते हैं क्योंकि इस में सब देव बैठे थे और सब गोत्रों के ब्राह्मण इसीमें बैठते हैं। ५

शेष दो अग्नियां पैर हुए। विस्तार करने से यज्ञ उतना ही हो जाता है जितना पुरुष है अतः कहा है कि पुरुष यज्ञ है।६

हविर्धान और सदः के दोनों ओर द्वार होते हैं पुरुष के भी पाचन संस्थान के दो द्वार हैं द्वार खुलने पर वह उनमें प्रवेश करता है। ७

वे उनको ठीक रखते हैं— दक्षिण और उत्तर। दक्षिणकी ओर का बड़ा होता है।८

ठीक किये हुओं पर एक चटाई रखते हैं, वह न मिले तो बेंत को चीर कर छदि बना ले। आगे द्वार पर टट्टर लगाते हैं, दो टट्टर खड़े कर गाड़ियों को उनके बीच में रखते हैं और उनके ऊपर चटाई टट्टर सा डाल देते हैं।९

अब वह शालामें जाकर चार चम्मच घी लेकर सविता को प्रेरणा

के लिए आहुति देता है। सविता देवों का प्रेरक है, उसके लिए हम यज्ञ करें, अतः सावित्र-होम करता है। १०

इस मन्त्र से होम करता है—

युञ्जते मन उत युञ्जते धिय (य ५.१४)

मन और वाणी से यज्ञ किया जाता है। वहाँ मन-वाणी लगाता है। क्योंकि इसीसे मनुष्य बुद्धि के अनुसार जीविका उपार्जन करते हैं, वेद-पाठ, यथेच्छ उद्यम या गीत गाकर, उनको युक्तकर यज्ञ करता है।११

विप्रा विप्रस्य दृहतो विपश्चितः (य ५.१४)

वेदज्ञ विद्वान् विप्र हैं, विपश्चित् यज्ञ है उन्ही के विषय में यह कहा।

वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्महीं देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥

य ५-१४

एक सर्वज्ञ ने ही होताओं का कर्म निश्चित किया है। देव सविताकी स्तुति बड़ी है। यह कहकर प्रेरणा केलिए सविताको आहुति देताहै। १२

अब फिर चार चम्मच घी लेकर शाला से निकलता है। दक्षिणद्वार से यजमान-पत्नी को निकालते हैं। दाहिने हविर्धान के दाहिने पहिये के मार्ग में सोना रखकर यह मन्त्र पढ़कर आहुति देता है—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।

समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥ ऋ १-२२-१७, य ५.१५

इस संसार को विष्णु ने बनाया; उसने ३ स्थानों पर अपना पद रखा। जो अन्तरिक्ष में सम्यक् धारित है।

बचे हुए घी को पत्नी के हाथ में डाल देता है जो उसे धुरे के तम भाग में यह मन्त्र पढ़कर मलती है। -

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतम् य ५.१७) [शेष मन्त्रांश खड २० तक है]

देवों में प्रसिद्ध तुम दोनों देवों में घोषणा करो। अब वह स्रुच और आज्यपात्र प्रतिप्रस्थाता को देता है। वे पत्नी को दोनों अग्नियों के पीछे होकर ले जाते हैं। १३

चार चम्मच घी लेकर प्रतिप्रस्थाता उत्तरी हविर्धानके बायें मार्गमें सोना रखकर इस मन्त्र से आहुति देता है —

इरावती धेनुमती हि भूतम् सूयवसिनी मनवे दशस्या ।

यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥

य ५.१६, ऋ ७,९९.६

[मनुष्य के कल्याण के लिए तुम दोनों अन्न-गौ-धान्य वाले होओ, हे विष्णु ! तूने इन द्यौ-पृथ्वी को अलग अलग कर पृथ्वी को चारों ओर से किरणों से धारण किया है। यह सुवचन और आहुति है ।]

रोध या देशों के हाथ में काम देता है जो उसे उस स्थिति में देता- श्रुती देवेष्वाघोषतम् पढ़कर मल देती है।१४

एक बार देवों ने यज्ञ आरम्भ किया. उनको असुर-राक्षसोंके आक्रमण का भय हुआ। घी वज्र है, उसकी सहायता से उन्होंने दक्षिणकी ओर से उन्हेंहटा दिया,वे मार्ग में उनके पीछे न आये। इसी तरह वह भी उनको घी-वज्र से हटाता है। वह उक्त दो वैष्णव ऋचाओं से आहुति देता है क्योंकि हविर्धान विष्णु का है। १५

पत्नी जो तप्त धुरे में घी मलती है यह सन्तानोत्पत्ति का सङ्केत है. जब स्त्री-पुरुष तप्त होते हैं तब रेतःसिञ्चन होता। है तब उत्पत्ति होती है। वह पहिये से दूर दूसरी ओर घी मलती है क्योंकि रेतः का सिंचन दूर हो होता है। अब वह होता से कहता है—आगे चलते हुए हविर्धानों के लिए मन्त्र बोले। १६

वह कहता है- प्राचीं प्रेतमध्वरङ्कल्पयन्ती [यज्ञको बढ़ाती हुई तुम दोनों आगे चलो।] ऊर्ध्वं यज्ञं नयतम् मा जिह्वरतम् [ऊपर यज्ञको देवलोक तक उठाओ, विचलित न होओ।] गाड़ी को ऐसे चलाये मानो उठाकर चला रहे हैं। धुरे की ध्वनि न हो वह असुरों की होती है, यहाँ आसुरी ध्वनि न हो इस तरह पहिये चलें। १७

यह कहलाये- स्वङ्गोष्ठमा वदतम् देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टम् प्रजां मा निर्वादिष्टम्। [हे गृह,समान दोनों दिव्य गाड़ियो, अपने गोष्ठसे बात करो, मेरी आयु और प्रजा को मतनष्टकरो] यहउसका प्रायश्चित्त है।१८

कहते हैं कि उत्तरवेदि से पश्चिम की ओर तीन पग चले और वहाँ हविर्धान को ठहरा दे यही इसकी मात्रा है परन्तु यह ठीक नहीं, कोई नियत मात्रा नहीं, जहाँ समझे कि न बहुत दूर न निकट, वहीं ठहरा दें। १९

अब नमस्कार करे-

अत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः॥ (य १५.२०)

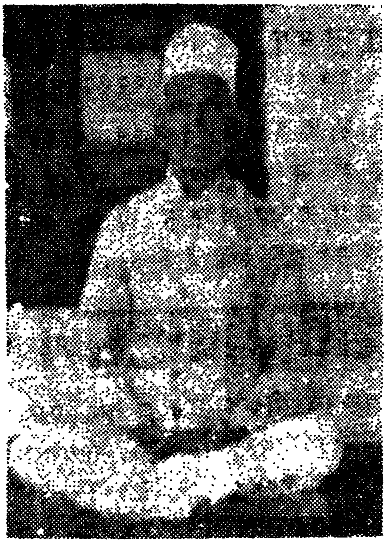
[तुम दोनो यहाँ पृथिवी के सुखवर्षक स्थान पर ठहरो।]

यह ऊंचाई है।आहवनीय द्यौ है, वह उनके नाभि में खड़ा करता है शान्ति का यही रूप है। २०

उत्तर को चलकरअध्वर्यु दक्षिणी हविर्धान को यह पढ़करठहराता है- विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम् यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा॥५.१८

बाल कथामाला

रचयिता— स्वर्गीयः श्री मङ्गलसेनः कविः, बदायूं



५ लोभी श्वा

कश्चित् श्वा रोटिका-खण्डं मुखे कृत्वा नदीं तरन् ।
स्वस्य च्छायां जले दृष्ट्वा मनस्येवं व्यचिन्तयत् ॥ १
अपरो श्वा मुखे धृत्वा रोटिकामप्सु गच्छति ।
तदस्मादपहराम्येनामिति चित्ते व्यधारयत् ॥ २
एतां ग्रहीतुमास्यं स्वं व्याददान् मूर्ख-कुक्कुरः ।
अपतत् रोटिका नद्यां पश्चात्तापेन रोदिति ॥ ३
हा ! हा ! लोभो महान् दोषः सर्वस्वं तेन नश्यति ।
लोभः क्वापि न कर्त्तव्यो लोभो दुःखस्य कारणम् ॥ ४

—❀—

वर्ष ११ अङ्क १ जनवरी १९८७ ❀ वेदज्योति ❀ सं १९२१/६२ डाक २०

आपका वर्ष पूर्ण होगया है, कृपया वार्षिक शुल्क २०) शीघ्र भेजें ।

दैनन्दिनी माघ २०४३ वि.

तिथि माघ कृष्ण १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० १२ १३ १४ ३० अ ।
वार शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु
नक्षत्र पु आ म पू उ ह चि स्वा बि अनु ज्ये मू पू उ श
तारीख जन. १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९

माघ शुक्ल १ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पूर्णिमा
वार शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु
नक्षत्र श्र ध श पू रे. अ भ म कृ रो मृ आ पु पु आश
तारीख ज ३० ३१ फर १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३

मुद्रक— आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१

वेद-ज्योति

वर्ष ११ अङ्क २ तप: (माघ) २०४३ वि०, फरवरी १९८७ ई०

दैनन्दिनी फाल्गुन कृष्ण २०४३ विक्रम

तिथि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	३०अमा
वार	श	र	सो	मं	बु	गु	शु	श	र	सो	मं	बु	गु	शु	श
नक्षत्र	म	पू	उ	ह	चि	स्व	वि	अ	ज्ये	मू	पू	उ	श्र	ध	श
तारीख	फ१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८

सम्पादक-प्रकाशक-मुद्रक — आचार्य वीरेन्द्रमुनि, सहायक त्रिमला शास्त्री

सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१

१— सत्यार्थप्रकाश
२— संस्कृत बाल कथा माला
३— वेदार्थपारिजातखण्डन
४— निघण्टु निरुक्त
५— अष्टाध्यायी
६— शतपथ, यजुर्वेद-भाष्य

शुल्क— आजीवन २००) वार्षिक २०) एक प्रति २)



महर्षि दयानन्द सरस्वती

ऋषिबोध-दिवस शिवरात्रि, २६ फरवरी १९८७ को मनाया जायगा।

सत्यार्थ मन्त्रव्याख्या

क्रमाङ्क १४. ऋषि पूर्णा सावित्री, देवता सूर्या, छन्द अनुष्टुप्, स्वर गान्धार

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥ (ऋ १० ८५.४५)

हे वीर्य-सिंचन में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा (नियुक्त) स्त्रियों को श्रेष्ठ पुत्र (वाली) और सौभाग्य-युक्त कर। इस विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर, और ग्यारहवीं स्त्री को मान। हे स्त्री ! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवें पति को समझ।

इस वेदकी आज्ञासे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश-दश सन्तान से अधिक उत्पन्न न करें। क्योंकि अधिक करने से सन्तान निर्बल निर्बुद्धि अल्पायु होते हैं और स्त्री तथा पुरुष भी निर्बल अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्था में बहुत दुःख पाते हैं। (स.प्र.४)

समाचार— १५ से २२-२-८७ तक रोहतक में महात्मा प्रभुआश्रित जी की जन्म-शताब्दी, तथा २५ से २७-२-८७ तक टङ्कारा में ऋषि-दयानन्द-मेला, दशाब्दी एवं [illegible] उत्सव मनाये जायेंगे।

६. शशक-कच्छपयोः ।

[स्व० श्री मङ्गलसेन, बदायूँ]

एकदा शश-कूर्माभ्यां कृता स्पर्धा परस्परम् ।
प्रोक्तं चाज्ञया; पूर्वं को गच्छेन्निश्चितस्थलम् ॥ १
आत्मनः अभिमानेन मत्वा स्वं विजयं ध्रुवम्
गत्वा जवेन मार्गार्द्धं शशो मध्ये प्रसुप्तवान् ॥ २
कच्छपो गन्तुमारेभे स्वप्रकृत्यनुसारतः ।
मन्दं मन्दं सरन्नेवं निर्दिष्टस्थानमाप्तवान् ॥ ३
उत्थितश्चाथ निद्रातः शशको दृष्टवानिदम् ।
सायङ्कालोऽधुना जातः कूर्मो निष्क्रान्तवानितः ॥
पराजयं स्वकं मत्वा शशको विरतस्तदा ।
आलस्येन पराभूतः शीघ्रगो मन्दगामिना ॥ ५
एवं यो मन्दगत्यापि पठेद्दृत्यल्पधीः सदा ।
तीव्रबुद्धिमपि छात्रं जयेन्नूनं प्रमादिनम् ॥ ६

अविद्या-पारिजात

[डा० प्रज्ञादेवी आचार्या पाणिनि कन्यागुरुकुल वाराणसी]

वेदार्थपारिजात के लेखक श्री करपात्री केवल नव्यन्याय की अवच्छेदकावच्छिन्न वाली शैली की अपनाकर सामान्य जनता को भ्रमाने में अभ्यस्त हैं किन्तु शास्त्रीय पाण्डित्य से सर्वथा दूर हैं। अतः इस पोथेको अविद्यापारिजात कहना अधिक उचित होगा।

समूचे ग्रन्थ को पढ़लेने पर भी हमें किसी एक मन्त्र का भी अज्ञात अर्थ पाठक को [illegible] नहीं होता, सिवाय गाली गलौज के [illegible]. वे इस जाति का [illegible] उपकार करते यदि यह लिखते कि वेद का पठन-पाठन सबके लिए श्रेयस्कर है, किन्तु वे यह [illegible]।

यहाँ उनकी गलत जानकारी के कुछ उदाहरण प्रस्तुत [illegible] हैं—

१— [illegible] के रूप में गार्गी मैत्रेयी-संवाद उपलब्ध नहीं है. दयानन्द ने [illegible] यह लिख दिया है।' (पृष्ठ [illegible])

पाठक देखें कि यह बृहदारण्यकोपनिषद्‌ में विद्यमान है जो शतपथ का १४ वाँ काण्ड है जिसमें यह संवाद बड़े विस्तार से आया है। करपात्री की अज्ञता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण होगा कि उन्हें यह ज्ञात नहीं कि बृहदारण्यक शतपथ के अन्तर्गत है।

२— ऋषि दयानन्द ने यज्ञ का दृष्ट प्रयोजन दुर्गन्धि एवं दूषित परमाणुओं का नाश होना तथा सुगन्धि का फैलना बताया, इसका खण्डन करते हुए करपात्रीजी लिखते हैं कि यज्ञ-यागादिका अदृष्ट फल नहीं है। प्रमाणमें कुमारिल भट्ट के वचनोंके साथ यह भी लिखा— 'मानो दयानन्द जैसे व्यक्तियों को लक्ष्य करके ही यह बात कही गई हो' (पृष्ठ ५०५)

निश्चय ही उक्त स्थल में ऋषिवर दयानन्द को मूर्ख बतानेकी निन्दनीय कुचेष्टा करते हुए करपात्रीजी ने अपनी ही जड़ता का प्रदर्शन किया है। उन्हें इतना भी याद नहीं कि मीमांसा के पहले ही सूत्र की व्याख्या में उसी भट्ट कुमारिल ने धर्म की जिज्ञासा का फल अधर्म से हटना बताते हुए लिखा है—

दृष्टफलसम्भवेऽदृष्टफलकल्पनाया अन्याय्यत्वात्।

जब दृष्ट फल विद्यमान हो तो अदृष्ट की कल्पना अन्याय्य है।

यही बात न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में भी कही गई है। महर्षि दयानन्द की सूक्ष्म ज्ञान-विज्ञान-मूलक थी।

अत: उन्होंने यज्ञ का ऐसा प्रत्यक्ष फल बताया जो एक अपठित की समझ में भी आने योग्य है। यह आधिभौतिक फल है, आध्यात्मिक फल तो उसे मिलेगा ही। यहींपर 'अंशत: यज्ञका यह भी फल हो सकत है तो भी यह अग्निहोत्रका फल नहीं' लिखतेहुए वे स्वयं वदतोऽव्याघात दोष से भी ग्रस्त हो रहे हैं।

एक और मजेदार बात करपात्री जी लिखते –

आजकल तो भारतमें ६० करोड़ मैं सौ भी यज्ञकर्ता न होंगे। पृ.५७

उनका यह कथन असत्य है; आजभी हजारों आर्य यज्ञ करकेही अन्न ग्रहण करते हैं।

३— पृ.४८४ पर वे शङ्का करते हैं कि तस्माद्यज्ञात्० (य ३१.७)में ऋच: आदि ऋग्वेदादि के बोधक है इस में क्या प्रमाण हैं?

वस्तुत, इसमें प्रमाण मांगना उपहासास्पद है,. यह ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि आपके हाथों को 'कर' और उनको पाव कहने में क्या प्रमाण है? आपके मान्य सायण ने जब इन का यही अर्थ किया है तो उनसे प्रमाण क्यों नहीं पूछते? इस बातपर यास्कमुनि की यही उक्ति चरितार्थ होती है— नैष स्थाणोरपराध: यदेनमन्धो न पश्यति पुरुषापराध: स भवति।

४-इस भ्रष्ट ग्रन्थ को लिखने में बड़ी शरारतसे काम लिया गया है-

एक स्थल पर लिखा कि दयानन्द ने भी सूर्य चन्द्र प्रभृति के लिए अर्घ्यदान, नमस्कार आदि का विधान किया है। (पृष्ठ ६११)

उनकी इस घोर मिथ्या उक्तिपर आर्यजगत् सहस्रश: चैलेंज करता है कि बतायें कहाँ पर ऐसा लिखा, नहीं तो मिथ्या सिद्ध होगा।

पृ. ६११ पर वे लिखते हैं- 'दयानन्द बाइबिल कुरान आदि अनार्य ग्रन्थों से प्रभावित होने के कारण एक ईश्वर ही उपास्य मानने लगे है।'

भला ऐसे कूप-मण्डूकों को क्या कहा जाय जिन्हें यहभी ज्ञात नही कि वेदका डङ्का दयानन्दने ही उस समय बजाया था जब आर्यजाति भौंडी पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर धर्म-कर्म से लुट रही थी। उस समय करपात्री के समान लोग सौ कोस दूर भागते थे। आर्यसमाज का सौ वर्ष से ऊपर का इतिहास साक्षी है कि महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायियों ने हजारों शास्त्रार्थ ईसाई-मुसलमानों से करके लोगों को विधर्मी होनेसे बचाया। किन्तु आजतकहै

करपात्री, उनमें गुरु या शिष्यों ने एक भी शास्त्रार्थ ईसाई-मुसलमानों करने का दम नहीं भरा, पुनः ऋषि दयानन्द को कुरान-बाइबिलसे प्रभावित बताना सरासर मिथ्या प्रलाप एवं द्वेष-मति-सूचक है। जब वेद के शतशः मन्त्र एकेश्वर-पूजा की बात करते हैं, तो उसे न मानना दुराग्रह है।

पण्डितम्मन्य करपात्री जी ऋषि दयानन्द को पग-पग पर तुच्छम् बात-भाषितम् आदि लिखते हैं पर अपनी ऊटपटांग बातों पर उनका ध्यान नहीं जाता। शोक है कि पौराणिकों को अब तक शिष्टता से बोलना और लिखना भी नहीं आया।

५—- करपात्री जी ब्राह्मण-ग्रन्थों को भी वेद सिद्ध करने के लिए सम्प्रदायाविच्छन्नत्वे सत्यरमर्यमाणकर्तृत्वं वेदत्वम् इस वेद के लक्षण को(द्र० पृ० ५०१) अनेकश. प्रस्तुत करते हैं, पर उन्हें यह पता नहीं कि यह तो अव्याप्ति-अतिव्याप्ति दोषों से ग्रस्त है (देखें श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक कृत वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा पृ० १७३-१७७) इससे ब्राह्मणग्रन्थों का वेदत्व सिद्ध न हो सकेगा। वस्तुतः वे वेद नहीं हो सकते क्योंकि वेद में अनित्य इतिहास नहीं इत्यादि उत्तर आर्यसमाज की ओर से बहुत प्रमाण एवं युक्ति पूर्वक लिखित एवं अलिखित दिये जा चुके हैं पर दुराग्रह से ग्रस्त बुद्धि यदि उन्हें ग्रहण न करे तो इलाज ही क्या है?

६— एक अन्य स्थल पर श्री करपात्री जी फर्माते हैं—

व्यास को ऋषि न मानना दयानन्द की धृष्टता है। दयानन्द के अनुयायी तो दयानन्दको महर्षि मानतेहैं इसमें क्या प्रमाण है?पृ.५०४

वस्तुतः देखाजाय तो करपात्रीजी जैसे व्यक्तिका ऋषिप्रवर दयानन्द को धृष्ट कहना ही धृष्टता की पराकाष्ठा है। ऋषि दयानन्द ने उन्हें सत्यार्थप्रकाश में अनेक स्थलों में ऋषि मुनि कहकर पुकारा है—

...इसलिए व्यास आदि ऋषि मुनियों के नाम धर के पुराण बनाये।
समुल्लास ११ पृ० ४४१

...और बहुत से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमानी असम्भव गाथा युक्त ग्रन्थ बनाये। वही ४५६।

७— स्वामी करपात्री अपने पोथे में सायण को वेदार्थ विषय में सूर्यसम तेजस्वी (पृष्ठ ७२७) लिखते हुए उनकी प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते, किन्तु सायणाचार्य ने जिन मन्त्रों के अत्यन्त अश्लील

एवं गन्दे अर्थ किये हैं उन्हें देख कर लज्जित अवश्य होना पड़ेगा। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का खण्डन करते हुए उन्होंने ऋषि दयानन्द-प्रदर्शित उन स्थलोंका उत्तर क्यों नहीं दिय, जो भाष्यकरणशङ्का समाधानादि विषय प्रकरण में दयानन्द ने सायणाचार्यादि के भाष्यों में दोषके रूपमे दिखाये हैं ? उन्हें यदि अपनी विद्याका इतना अभिमान था तो जिन स्थलोंमे महर्षि दयानन्दने इनभाष्यकारोंके मन्त्रगत स्वर-प्रक्रिया के दोष दिखाये हैं उनके उत्तर क्यो नही दिये ?

८— मैं तो यही समझती हूं कि इस पोथे का प्रमुख उद्देश्य ऋषि दयानन्द को गाली देना है। सो वे दे लें दयानन्द एवं उनके अनु-यायियो का इससे कुछ बिगडता नहीं। समस्त विश्व के लोग दयानन्द को महिमा को स्वीकार करते हैं, पर सूर्य का प्रकाश भी जिनकी आंखो को अच्छा न लगे उन्हें उलूक कहते है।

९— स्वामी करपात्री जी को संस्कृत हिन्दी के अतिरिक्त अन्य किसी विदेशी भाषा का ज्ञान न था। आधुनिक शोध-पद्धतिसे वे निरे अछूते थ, केवल जानते थे नवीन वेदान्ती भाषा म घुमाना, बस यही उनका पाण्डित्य था। वेद के विषय मे पाश्चात्य विद्वानों की क्या मान्यनाएं रही हैं, उन्होंने किस प्रकार वेद की खिल्लियाँ उड़ाई है, इसका उत्तर तो करपात्री-समुदाय दे नहीं सकता था अतः गेह-शूर बने हुए वे महर्षि के वेदार्थ- भूषण को भी दूषण समझ रहे हैं। उन्हें यह पता ही नहीं कि उनके इस पोथे का न तो विद्वानों एवं शोध-के छात्रों के लिए उपयोग है नही सर्व साधारण जनता के लिए। कुछ थोड़े से लोग ही है जिनकी मति वे इससे भ्रष्ट कर सकते है। फिर आखिर यह महान् प्रयास किसलिए है ?

निरुक्त अध्याय चौदह

दैवत और यज्ञाङ्ग की व्याख्या करदी। अब यहाँ से ऊर्ध्वमार्गगति को व्याख्या करेंगे।

'भूये आत्मा' आदि मन्त्र में उदित मनुष्य के कर्म का द्रष्टा ईश्वर बताया है, अब इसका अनुमोदन करते हैं। इस महान् आत्मा को यह ऋक्समूह बताता है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः (पृ० १६२)

यह ईश्वर जीव की जिज्ञासा से अपने को इन दो मे बताता है—

खंड २— अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतम्मे चक्षुरमृतम्म आसन्।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥
ऋ ३.२६.७

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाभिः।
यो मा ददाति स इदेवमावत् अहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥
सा पू. ६.३.१०.६

मैं अग्नि हूं, स्वभाव से सर्वज्ञ हूं, तेज मेरा चक्षु है, मोक्ष मेरा मुख है, मैं पूज्य, त्रिलोक-धर्त्ता, लोकों का कर्त्ता, सदा यज्ञरूप हवि नामक हूं।

मैं ऋत का प्रथम प्रवर्त्तक हूं, देवों से पहले अमृत का केन्द्र हूं, जो मुझे समर्पण करताहै वही मोक्ष पाताहै, मैं अन्न हूं, अन्न खातेहुए को खाताहूं।

इस प्रकार बताकर वह योगी को साक्षात् हुआ और कहा कि तू आत्मा में प्रकाशित निकटस्थ ईश्वर को अन्य के लिए बतला।

खंड ३— अपश्यम गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥
ऋ १. १६४.३१

सर्वरक्षक, इन्द्रियों से अप्राप्य, मार्गों से पास और दूर तक गतिशील ईश्वर को मैंने साक्षात् किया। वह साथ,की और दूर की गतियों को आच्छादित करता हुआ सब भुवनों में अन्दर वर्तमान है।

यह ईश्वर सत्त्वलक्षण है। वह ईश्वर अमृत सत्य सलिल अव्यक्त अस्पर्श अरूप अरस अगन्ध अमृत है, जीव उसीमे आश्रय पाता है, निमित्त कारण होने से कई उसे भूतप्रकृति कहते हैं। वह क्षेत्र है, उसके ज्ञानसे दोलग्न जीव मुक्त हो जाता है।

यह महत्तत्त्व ६ प्रकार का होता है– सत्त्व रजस् तमः, विशुद्ध सत्त्व बीच में, दोनों तरफ रजः तम, ठहरते हैं। काम-द्वेष तम हैं। यह अविज्ञात, विशुद्ध, ऐश्वर्यशाली जीव की पृथक्ता के लिए समर्थ होता है। प्रतिमात चिह्न वाला आत्मा तम नहीं है, वह अलिङ्ग है, तम विद्या से प्रकाशित लिंग वाला है, आकाश निश्चित लिंग वाला है।

खण्ड ४– आकाश का गुण शब्द है, आकाश से वायु स्पर्श से दोगुणी है वायु से अग्नि रूप से तीनगुणी है अग्नि से जल रस से चार गुण वाला है जल से पृथिवी गन्ध से पाँच गुण वाली है। स्थावर-जंगम भूत-समूह पैदा होता है। यह सहस्र युग पर्यन्त जागता है फिर सोने लगता अंगों को समेटता है—भूतसमूह पृथिवीमें, वह अग्निमें, वह वायु वह आकाश मे वह मन में मन विद्यामें विद्या महान् में महान् प्रतिभा में प्रतिभा प्रकृति में लीन हो जाते हैं। वह सहस्र युग रात्रि तक शयन करती है। ये दिन-रात लगातार चला करते हैं, यह काल है—

सहस्रयुग पर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥ (गीता ८-१७)
(तुलना कीजिए- मनु १.१०, ७२- ८ तथा बृहद्देवता ८,९८)

ब्रह्म का दिन और रात एक एक हजार चतुर्युगियों के होते हैं।

खण्ड ५– इस कालचक्र के साथ जीव भी घूमता है जो अपने कर्मों का स्रष्टा द्रष्टा विभक्ता निरवयव है तथा अहम्भाव रखता है, मिथ्यादर्शन से महाभूतों में फँसा रहता है। वह आकाश से अवकाश वायु से प्राण अग्नि से आँख और वाणी पानी से सलिल पृथ्वी से शरीर पाता है, पृथ्वी के ८ गुण जाने, ३ माता से, ३ पिता से, अस्थि-स्नायु-मज्जा पिता से, खाल-मांस-रक्त माता से आये, २ अन्न-जल हैं ये ८ हुए। इस प्रकार यह पुरुष सर्वमय सर्वज्ञान माना गया है।

यह जो जैसा काम करता है वैसा,बनता है यदि धर्म की तो देव, यदि ज्ञान की तो मुक्त, यदि काम की तो पतित बनकर गिर जाता है।

यज्ञ-दुर्धव शब्द करता है। इसका शब्द सवन के क्रम से है— ऋचाओं से इसका शंसन करते हैं, यजुओं से यजन करते हैं। सामो से स्तुति करते हैं। महान् देव यज्ञ (पूजनीय ईश्वर) यजन के लिए मनुष्यों में प्रवेश करता है।

खंड८— उसके अधिक निर्वचन के लिए यह अन्य ऋचा है—

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी।

यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥ (यजु १७,६८)

जो उत्तम विद्वान् सबके धारक यज्ञ-ईश्वर को विशेष धारण करते हैं वे सुख पाते हुए इस लोक की इच्छा नहीं करते, वे मृत्यु-निरोधक द्यौ (मोक्ष) पा जाते हैं।

खंड ९, शब्द ६ वाक्— यह वाणीरूप ईश्वर की पहेली सी है—

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥
ऋ १-१६४-४५

वाणी के परिमित पद ४ हैं, उन्हें ब्राह्मण जानते हैं जो मेधावी हैं। ३ तो गुहा मे रखे हैं, अर्थ को सरलता से नही बताते। गुहा गूह से तुरीय त्वर् से बना है। वाणीके चौथे स्वरूपको मनुष्य बोला करते हैं।

वे चारों पद कौन-से है? इस विषय में ७ मत है—

१ आर्ष मत— ओङ्कार(अ उ म्) और महाव्याहृतियाँ (भूर्भुवः स्वः) (मनु २·७६)

२ वैयाकरण मत— नाम आख्यात उपसर्ग और निपात।

३ याज्ञिक मत— मन्त्र ब्राह्मण कल्प और व्यावहारिकी।

४ नैरुक्त मत — ऋचाएं यजुः साम और ,,

५ एक मत— सर्पों की पक्षियों की क्षुद्र रींगनेवालों की और ,,

६ आत्मप्रवाद मत— ग्राम्य पशुओं में बाजों में मृगों में मनुष्यों में।

७ ब्राह्मण मत— मै० सं० १.११.५में कहा है— वह उत्पन्न कीगयी वाणी चार प्रकार की हुई- ३ प्रकारकी इन्ही ३ लोकोंमें है, चौथी पशुओंमें। जो पृथिवी में वह अग्नि में वह रथन्तर साम मे। जो अन्तरिक्ष में वह वायु मे वह वामदेव्य साम में। जो द्युमें वह आदित्य में वह बृहत् साम में वह स्तनयित्नु में। अब चौथी पशुओं में। इससे जो वाणी बढ़कर रही उसे ब्राह्मणों में रक्खा अतः वे दोनों प्रकार की वाणी बोलते हैं, जो देवों की है और जो मनुष्यों की है।

खंड १०, शब्द १० अक्षर- यह अविनाशी ईश्वर की अतिस्तुति है-

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किम् ऋचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥
ऋ १.१६४.३९

ऋचाएं परम विशेष रक्षक अक्षर (ईश्वर) में हैं जिसमें सब देव स्थित हैं। जो उसे नही जानता वह ऋचा से क्या करेगा? जो ही उसे जानते हैं वे अच्छे स्थित होते हैं। यह विद्वानों को उपदेश करता है।

यह अक्षर कौनसा है? शाकपूणि के मत में यह 'ओ३म्' वाक् है। निश्चयही ऋचाएं परमरक्षकमें और नाना देवतावाले मन्त्रों मे स्थितहैं। कौषीतकि ब्राह्मण ६.१२ में कहा है- यही यह अक्षर ओम् है जो सब त्रयी विद्या के साथ है।

खंड ११- शाकपूणि-पुत्र कहता है कि यह आदित्य है। यह ऋक् है जिस से इसका गुण-वर्णन करते हैं। पृथक पृथक ऋचाएं सब भूत हैं। उसका जो मन्त्रों से अन्य स्वरूप है वह अक्षर है रश्मियों को यहाँ देव कहा है जो इसमें ठहरी हैं। यह आधिदैव अर्थ है।

अब अध्यात्म अर्थ यह है कि शरीर यहाँ ऋच कही गयी हैं जिनसे इस अक्षर जीवात्मा की अर्चा करते हैं, प्रति ऋचा इन्द्रियों को यहाँ देव कहा है जो इस आत्मा में एक हो जाती हैं। ये आत्म-प्रवाद हैं।

खण्ड १२ -' अक्षर १. जो नष्ट न हो २. जो क्षीण न हो ३. जो वाणीका अक्ष (धुरा) हो। यान का अक्ष अञ्जु गर्तों से बना है, सकी समानता से केन्द्र अक्ष है। यह मन्त्रार्थ-चिन्तनका ऊहापोह किया गया। श्रुति से और तर्क से, पृथक्ता से नही, मन्त्रों का निर्वचन करना चाहिए प्रकरणशः ही निर्वचन हो। अनऋषि और अतपस का इनमें प्रत्यक्ष नहीं है, यह पहले कह चुके हैं। वेद के विद्वानों में अधिक विद्यावाला प्रशंसनीय होता है।

ऋषियों के उठ जाने पर मनुष्य देवों से बोले कि हमारा ऋषि कौन होगा? तब उनके लिए मन्त्रार्थ-चिन्तन की ऊहापोह कर सकने वाले इस तर्क-ऋषि को प्रदान किया। अतः जो कुछ वेद-विद्वान् ऊहा करता है वह आर्ष होता है।

खंड१३- हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः।
अत्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो विचरन्त्यु त्वे ॥ ऋ १०-७१-८

जब समान ख्याति के ऋत्विज वेदज्ञ बुद्धि से तीव्र किये मनके वेगो मे सङ्गत होतेहैं तब मूढ़को वेदितव्य प्रवृत्तियास छोड़ देतेहैं और कोई तार्किक वेदज्ञ विचरते हैं। वह यह विद्या वेद-मति-बुद्धि है, उसके तपसे पार जाना चाहिए। आयु के इच्छुक को यह न करना चाहिए, अतः छन्दों में शेषार्थ देखना चाहिए। फल यह होता है कि वह जिस-जिस देवता को कहता है उसका तादूभाव्य अनुभव करता है॥ —०—

अष्टाध्यायी अध्याय ५ पाद ४

८० श्वसो वसीयः श्रेयसः ।

श्वस् से परे वसीयस् और श्रेयस् से अच् हो- श्वसीयसम् श्वश्श्रेयसन् ।

८१ अन्ववतप्ताद्रहसः ।

इनसे परे रहस् से अच् हो- अनुरहसम् अवरहसम् तप्तरहसम् ।

८२ प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ।

प्रति के परे सप्तमीस्थ उरस् से अच् हो- प्रत्युरसम् ।

८३ अनुगवमायामे ।

लम्बाई मेअनुगवम् निपातन हो- अनुगवं यानम् ।

८४ द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः ।

वेदि के लिए द्विस्तावा, त्रिस्तावा निपातन हो

८५ उपसर्गादध्वनः ।

उपसर्ग से परे अध्वन् से अच् हो— प्राध्वो रथः प्राध्वं शकटम् ।

८६ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः ।।

सङ्ख्यादि और अव्ययादि अङ्गुल्यन्त तत्पुरुष से अच् हो- द्व्यङ्गुलं दारु । निरङ्गुलम्

८७ अहस्सर्वैकदेश सङ्ख्यात पुण्याच्च रात्रः

. इनसे परे रात्रि से अच् हो- अहोरात्रः सर्वरात्रः पूर्वरात्रः संख्यात- रात्रः पुण्यरात्रः द्विरात्रः अतिरात्रः ।

८८.अह्नोऽह्न एतेभ्यः ।

इन सर्वनामोंमे आगे अहन् को अह्न आदेश हो- अत्यह्नः सर्वाह्नः पूर्वाह्न अपराह्न ।

८९ न सख्यादेः समाहारे ।।

संख्या आदि के समाहार मे अहन् को अह्न न हो- द्व्यहः त्र्यहः ।

९० उत्तमैकाभ्यां च ।

उत्तम और एक के आगे भी अहन् को अह्न न हो पुण्याह एकाह ।

९१ राजाहस्सखिभ्यष्टच ।।

इनसे समासान्त टच् हो— महाराजः परमाहः राजसखः ।

९२.गोरतद्धितलुकि ।

तद्धित-लुक्समास-वर्जित गो से टच् हो— पञ्चगवधनः ।

९३ अग्राख्यायामुरसः ।

प्रधान की आख्या में उरस् से टच् हो — अश्वोरसम् ।

९४. अनोऽश्मायःसरसां जाति-संज्ञयोः।

जाति और संज्ञा में इन से टच् हो, जाति में उपानसम् अमृताश्मः कालायसम् मण्डूकसरसम्। संज्ञा में महानसम् पिण्डाश्मः लोहितायसम् जलसरसम्।

९५ ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः।

ग्राम-कौट से परे तक्षन् से टच् हो— ग्रामतक्षः कौटतक्षः।

९६ अतेः शुनः।

अति से परे श्वन् से टच् हो — अतिश्वो वराहः, सेवकः।

९७ उपमानादप्राणिषु।

अप्राणियों में उपमान वाची श्वा से टच् हो — आकर्षश्वः।

९८ उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः।

उत्तर मृग पूर्व और उपमान से परे सक्थि से टच् हो- उत्तरसक्थम् मृगसक्थम् पूर्वसक्थम् फलकसक्थम्।

९९ नावो द्विगोः।

नौ शब्दान्त द्विगु से टच् हो— द्विनावरूप्यम् द्विनावमयम्।

१०० अर्धाच्च।

और अर्ध से परे नौ से भी टच् हो— अर्धनावम्।

१०१ खार्याः प्राचाम्।

प्राग्दर्शियों के मत में खारी से टच् हो— द्विखारम् द्विखारि अर्ध-खारम् अर्धखारि।

१०२ द्वित्रिभ्यामञ्जलेः।

द्वि-त्रि से परे अञ्जलि से टच् हो— द्व्यञ्जलम् त्र्यञ्जलम्।

१०३ अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि।

अनन्त तथा असन्त नपुंसक लिंग से वेद में टच् हो—ब्रह्मसामं भवति देव-छन्दसानि।

१०४ ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्।

ब्रह्म से जनपद की आख्या में टच् हो— सुराष्ट्रब्रह्मः।

१०५ कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्।

कु तथा महत् के साथ ब्रह्म से टच् विकल्प से हो- कुब्रह्मः महाब्रह्मः।

१०६ द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे।

द्वन्द्व से चवर्गान्त दान्त षान्त हान्त से समाहार में टच् हो- वाक्-त्वचम् त्वक्स्रजम् शमीदृषदम् वाक्त्विषम् छत्रोपानहम्।

१०७ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः।

अव्ययीभाव समास में शरत् आदि से टच हो— उपशरदम प्रति-
शरदम् उपविपाशम् प्रतिविपाशम् ।

१८९ वाँ गण शरदादि— शरत् विपाश अनस मनस उपानड् दिव्
हिमवत् अनडुह दिश् दृश् चतुर् यद् तद्, जराया जस्, सद् श्, प्रति
परसमनुभ्योऽक्ष्णः, पथिन् प्रत्यक्षम् परोक्षम समक्षम अन्वक्षम् प्रतिपथम्
संपथम अनुपथम्

१०८ अन च ॥

और अन्नन्त अव्ययीभाव से भी टच हो— उपराजम अध्यात्मम
प्रत्यात्मम् ।

१०९ नपुंसकादन्यतरस्याम् ॥

अन्नन्त नपुंसक से विकल्प से टच हो— उपचर्मम् उपचर्म ।

११० नदी पौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः ॥

इनसे विकल्प से टच हो— उपनदम् उपनदि उपपौर्णमासम्
उपपौर्णमासि उपाग्रहायणम् उपाग्रहायणि

१११ झयः

झयन्त अव्ययीभाव से विकल्प से टच हो— उपसमिधम उपसमित

११२ गिरेश्च सेनकस्य ।

सेनक आचार्य के मत में गिरि से टच हो— उपगिरम् उपगिरि ।

११३ बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्

बहुव्रीहि में स्वांगवाची सक्थि और अक्षि से षच हो— दीर्घसक्थः
विशालाक्षः ।

११४ अङ्गुलेर्दारुणि ॥

दारु (लकड़ी) अर्थ में अंगुलि से षच हो— पञ्चाङ्गुलं दारु ।

११५ द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः ॥

द्वि और त्रि से परे मूर्द्धा से ष हो— द्विमूर्द्धः त्रिमूर्द्धः ।

११६ अप्पूरणी-प्रमाण्योः ॥

पूरणप्रत्ययान्त और प्रमाण्यन्त से अप् हो— कल्याणीपञ्चमा
रात्रयः, स्त्रीप्रमाणः ।

११७ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ॥

अन्तर् और बहिर् से परे लोम से अप् हो- अन्तर्लोमः बहिर्लोमः।

११८ अच् नासिकायाः सञ्ज्ञायां नसं चास्थूलात् ॥

स्थूल पहले न हो तो नासिका से संज्ञा में अच् हो और नासिका को नस हो— द्रुणसः खरणसः । वार्तिक — खुर-खर से णस् भी हो— खुरणः खरणः ।

११९, उपसर्गाच्च ॥

और उपसर्ग से असंज्ञा में भी अच् हो— उन्नसः। वार्तिक—वि से परे ग्र हो विग्रः। ।

१२०.सुप्रातसुश्व । सुदिव शारिकुक्ष चतुरश्र एणीपद अजपद [illegible]

बहुव्रीहि में अच्प्रत्ययान्तसूत्रोक्त ८ निपातित हैं ।

१२१.नञ्दुःसुभ्यो हलि सक्थ्यो (शक्त्यो) रन्यतरस्याम् ॥

नञ्,दु,,सु से परे हलि और सक्थि (शक्ति) से विकल्प से अच् हो- अहल अहलि दुर्हल दुर्हलि सुहल सुहलि असक्थ असक्थि दुःसक्थ दुः सक्थि [illegible]।

१२२ नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ॥

प्रजा और मेधा अन्त वाले से नित्य असिच् हो- अप्रजाः दुष्प्रजाः सुप्रजाः; अमेधाः दुर्मेधाः सुमेधाः ।

१२३ बहुप्रजाश्छन्दसि ॥

वेद में बहुप्रजाः निपातन है- बहुप्रजाः निर्ऋतिमाविवेश।

१२४ धर्मादनिच् केवलात् ॥

केवल एक से परे धर्म से अनिच् हो- कल्याणधर्मा प्रियधर्मा ।

१२५ जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः॥

इनसे जम्भा निपातित है- सुजम्भा हरितजम्भा तृणजम्भा सोमजम्भा ।

१२६ दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ॥

व्याध के योग में दक्षिणेर्मा निपातन हो- दक्षिणेर्मा मृगः । ईर्मं का अर्थ घाव है।

१२७ इच् कर्मव्यतिहारे ॥

कर्मव्यतिहार में इच् हो — केशाकेशि कचाकचि ।

१२८ द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ॥

द्विदण्डि आदि २१ निपात हैं ।

मैं अब विष्णु के पराक्रमों को कहता हूं जिसने पार्थिव लोक बनाये, और तीनों को प्रकाशित करते हुए उच्चतर स्थान ग्रहण किया उस विष्णु के लिए मैं तुझे स्थापित करता हूं।

यह पढ़कर दक्षिणी हविर्धान को खड़ा करता है २१

प्रतिप्रस्थाता उत्तरी हविर्धान को यह मन्त्र पढ़कर खड़ा करता है—
दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरो अन्तरिक्षात्।
उभा हि हस्ता वसुनापृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्वविष्णवे त्वा ॥
य २.१०

हे विष्णु, तू द्यौ, पृथिवी या विशाल अन्तरिक्ष से धनसे दोनों हाथ भर दे और दाईं-बाईं दोनों ओरसे दे ; विष्णु के लिये तुझको। वहां स्थिर स्थान में अन्य स्थानपर हविर्धान खड़ा करता है। हविर्धान विष्णु का होने से वह तत्सम्बन्धी यजु पढ़ता है। २२

बीचकी चटाई छूकर यजमान से कहलाता है—
प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ (य ५.२०

उस विष्णु के पराक्रम की स्तुति करो जो भयानक, पृथ्वी पर घूमने पहाड़ी शेर के समान है और जिसके तीन बड़े पराक्रमों के अधीन सब भुवन बसते हैं।

यह चटाई उस छप्पर की मुख्य शीर्ष कपाल है क्योंकि इसी पर अन्य कपाल ठहरते हैं अतः कहा, 'अधिक्षियन्ति'। २३

अब रराट(छप्पर) व टट्टरों को छूकर यजमान से कहलवाता है—
विष्णोः रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थः (य ५.२१)

[तू विष्णु का ललाट है, तुम दोनों उसके सक्व (मुख के किनारे) हो।] पीछे की चटाई इसके पीछे का शीर्ष कपाल है। २४

अब लकड़ी की कील से यह मन्त्र पढ़कर सीता है—

विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णवमसि ॥ (य ५.२१)

[तू विष्णु की सुई है। तू उसका ध्रुव है यह कहकर गांठ देता है गाँठ इसलिए देता है कि छुट न जाय, काम समाप्त होने पर खोल देता है। इस प्रकार न अध्वर्यु को कष्ट होता है न यजमान को।] छप्पर बनने पर कहता है— तू विष्णु का है।२५

यह अध्याय ५ का ब्राह्मण ४ समाप्त हुआ।

शतपथ अध्याय पाँच ब्राह्मण ४

हविर्धान में उपरव (छिद्र) बनाये जाते हैं। यह यज्ञ का सिर है। उसमें भी दो नाकके दो कानके छिद्र होते हैं, अतः उपरव खोदता है।१

प्रजापति की दोनों सन्तान देव और असुर लड़ पड़े। असुरों ने इन लोकों में कृत्या और वलग (सुरंगें) लगा दिये कि देवोंको जीत लें। २

अन्त में देव जीते, उन्होंने इन्ही उपरवों से दोनों को खोद डाला। यदि वलग खोद दिये जायें तो उनका प्रभाव नहीं रहता। यहाँ भी यदि किसी शत्रु ने वलग गाड़ दिया हो तो वह इन उपरवों के द्वारा उसको खोद डालता है। अतः ये बनाये जाते हैं। दक्षिणी हविर्धानके अगले भाग मे ये बनाता है ।३

वह यह मन्त्र पढ़कर अभ्रि (खुरपी) उठाता है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे नार्यसि। (य ५.२२) देव सविता के उत्पादित संसार में अश्विओं के बाहुओं और पूषा के हाथों से तुझे लेता हूं, तू नारी है। नारी इसलिए कहा कि अग्नि स्त्रीलिंग है, शेष अन्य अनेक यजुओंके समान सरल है।४

वह एक प्रादेश (बालिश्त) छोड़कर यह पढ़कर रेखा खींचता है—

इदमहं रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि॥ य ५.२२
[यह मैं राक्षसों की गरदन काटता हूं] खुरपी वज्र है, उससे ही वह राक्षसों की गरदन काटता है। ५

इनका चिह्न इस तरह हो- पहले अगलों में दायाँ फिर पिछलों में बायाँ और दायाँ फिर अगलों में का बायाँ। ६

कुछ लोग इससे उल्टा बताते हैं— पहले पिछलों का बायाँ फिर अगलों का बाया-दायाँ। या एक ही दिशा में ले किन्तु अन्त में अगलों में बायाँ ही ले।७

फिर चिह्न बनाने के क्रम से यह मन्त्र पढ़कर खोदे-

बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद। (य ५.२२)

तू बड़ी है बड़े शब्दवाली, यह गुण-वर्णन है। तू इन्द्र के लिए बड़ी वाणी बोल। इन्द्र यज्ञ का, विष्णु हविर्धान का देवता है, इससे इन्द्र-सहित करता है।८

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीम्। (य ५.२३) [राक्षस और वलग को नष्ट करनेवाली यह विष्णु की वाणी है। ये इसीलिए खोदे जाते हैं ;९

जिस क्रम से खोदता है उसी क्रम से मिट्टी यहपढ़कर फेंकता है—

इदमहं तं वलगमुत्किरामि यम्मे निष्टयो यममात्यो निचखान॥

मैं उस बलदायक यज्ञ को उत्कृष्ट करता हूं जिसे मेरा श्रेष्ठ अमात्य रखता है, उनके किये कृत्या-वलगोंको यह उखाड़ फेंकता है।१०

इदमहं तं वलगमुत्किरामि यम्मे समानो यमसमानो नचिखान।
मैं उस वलग को फेंकता हूं जिसे मेरे समान-असमान ने लगाया हो यह उनके लगाये कृत्या-वलग उखाड़ फेंकता है।११

इदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखान॥
मैं उस वलगको उखाड़ता हूं जिसे मेरा सबन्धु और असबन्धु गाड़ताहै यह कहकर वह ऐसों को खोदकर फेंकता है।१२

इदमहन्तं वल।मुत्किरामि यम्मे सजातो यमसजातो निचखान।
मैं उस वलगको हटाता हूं जिसे मेरा सजातीय और विदेशी करता है यह पढ़कर ऐसे कृत्या-वलगो को हटाता हूं।

उत्कृत्यांकिरामि॥(य ५.२३) मैं हिंसा नष्ट कर यज्ञ-क्रिया फैलाऊँ। यह पढकर छिद्रों की शेष मिट्टीको निकालकर फेंक देता है। १३

उनको बाहुमात्र खोद, यही अन्त है। इससे कृत्या को नष्ट करता है। इन गड्ढों को भीतर भीतर आड़े मार्गों से मिला दे, यदि आड़े मार्ग न बना सके तो सीधे से ही- क्योंकि मनुष्य के प्राण भी एक दूसरे से भी मेरी नलिकाओं द्वारा मिले रहते हैं। १४

खोदने के क्रमसे ही यजमानको गड्ढे यह मन्त्र, पढ़कर छुआता है—
स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा ।
जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥ } ५.२४

तू शत्रुओं को मारने वाला स्वराट है, अभिमानियों का नाशक तू सदा चमकनेवाला है; राक्षसों का नाशक तू जनता का राजा है और शत्रुनाशक तू सर्वराट् है । यह आशीर्वाद वह इसको देता है । १५

अध्वर्यु तथा यजमान गड्ढा में हाथ डालकर एकदूसरेको छूते हैं— सामने के दक्षिण-गड्ढे में अध्वर्यु तथा नीचे के बाएँ गड्ढे में यजमान अन्दर अन्दर परस्पर छूते हैं । अध्वर्यु पूछता है— यजमान, यहाँ क्या है ? वह उत्तर देता है— भद्र । अध्वर्यु कहता है— यह हम दोनों के लिए हो । १६

अब पिछले दक्षिणी गड्ढे में अध्वर्यु और सामने के बाएँ में यजमान परस्पर हाथ मिलाते हैं । यजमान पूछता है – अध्वर्यु यह क्या ? वह उत्तर देता है— भद्र । यजमान कहता है— तथास्तु वे ऐसा इस लिए करते हैं कि प्राणों को जोड देते है इसीलिए प्राण बहुत दूर भीतर मिले होते हैं । भद्र कहने का अर्थ हुआ कल्याणकी कामना अब वह गड्ढे पवित्र करने के लिए जल से आगे के मन्त्र से सींचता हैं । १७

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् । (य ५.२५)

राक्षस-वलग-नाशक मैं तुम विष्णुके गड्ढो को सींचता हुं । १८

अब बचे हुए जलको गड्ढोंमें ही डालताहै मानो वे प्राणोंके हैं- १९

रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान् (य ५.२५)

अब उनपर कुश बिछाताहै कुछकी नोक पूर्वको कुछकी उत्तर को मानो प्राणों में लोम धारण कराता है यह मन्त्र पढ़कर- २०

रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् । (य ५.२५)

वह कुश बिछाता है मानो शिराओं के बालों से शरीर ढकता है । २१

अब सोम निचोड़ने के दो तख्ते यह मन्त्र पढ़कर रखता है—

रक्षोहणौ वां वलगहना उपदधामि वैष्णवी ।

मानो वे विष्णु के दो जबड़े हों । उन्हें मिट्टीसे ढाककर दृढ बनाता है—

रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी । (य ५.२५) २२

अब सोम निचोड़ने का बैल के रंग का लाल चर्म सीधा रखता है—

वैष्णवमसि । (य ५.२५) [तू विष्णु का है] । २३

अब सोम निचोड़ने के ५ पत्थर जो दांतोंके तुल्य हैं रखता है—

वैष्णवा स्थ ॥ (य ५.२५) [तुम विष्णु के हो] यह यज्ञ-सिर पूर्ण हुआ । २४

❀ यह अध्याय ५ समाप्त हुआ । ब्राह्मणम् ५-४ । २० ॥ ❀

'माण्डवी महाशया' की विशेषता

(वीरेन्द्र मुनि)

श्री स्वामी ओ३मप्रेमी चतुर्थाश्रमी (भू.पू. राम नारायण माथुर ओ३मप्रेमी अधिवक्ता) द्वारा प्रणीत 'माण्डवी महाशया' पद्योपन्यास की समीक्षा यद्यपि पहले वेदज्योति में छप चुकी है तथापि उस में उक्त प्रणयन की वेदविषयक विशेषताओं का उल्लेख होनेसे रह गया था। जो अब किया जाता है।

— सम्पूर्ण रचना का आधार 'आर्याभिविनय' के एक ऋग्मन्त्र पर रखा गया है और उसका अनेक बार भिन्न भिन्न प्रकार मे समुल्लेख किया गया है। वह मन्त्र पूरा हो (प्रणेता-कृत पद्यानुवाद एवं महर्षि दयानन्द कृत व्याख्यान-सहित) परिशिष्ट में दिया गया है।

२-३- कथावस्तु में गुंफित करते हुए बड़े ही उत्तम ढङ्ग से लगभग ३०-२५ वेदमन्त्रों के शब्द और भाव पद्यम रखे गये है, एक वेद-मन्त्र तो अक्षरश; विनियुक्त हुआ है। मन्युभाव का प्रतिपादन बहुत रोचक प्रकारेण अनेक स्थलों पर सोदाहरण किया गया है और आधारस्वरूप वेदवाक्य भी वहीं दे दिये गये हैं, पाद-टिप्पणियां भी महत्त्वमयी हैं।

४- हिन्दी-साहित्य में पद्योपन्यास सर्वथा नई विधा है, इसके इस सर्वप्रथम प्रणयन में वेदमन्त्रों सहित वैदिक मान्यताएं प्रस्तुत कियाजाना अत्यन्त श्लाघनीय है। भूमिका-लेखक श्री अमरस्वामी (गाजियाबाद) ने सत्य लिखा है— 'धार्मिक भावनायुक्त श्री ओ३म् प्रेमी जी ने अपने स्वाध्यायके बलपर वेदमन्त्रों तथा उनकेसाथ मिलनेवाले अन्य वचनों मे वर्तमान काल के युवक और युवतियों के लिए शिक्षाएं, उनके विचारमें देना आवश्यक थी उन शिक्षाओं और उपदेशों को प्रश्नोत्तर के रूप में माण्डवी आदि के साथ सम्बद्धकर दिया है। शिक्षा देने का यह उत्तम प्रकार है गिलोय और चिरायत का क्वाथ न पी सकने वाले के लिए विचारशील वैद्य की बनाई मधुर स्वादिष्ठ और सुगन्धित पेय के रूप मे यह उत्तम औषधि है। लेखक का ध्यान कविता की ओर अधिक न रह कर उन शिक्षाओं के प्रति अधिक रहा है जिन्हें वेदमन्त्रो द्वारा देना आवश्यक जाना है। परमेश्वर करे कि यह काव्य वर्तमान काल के युवक और युवतियो को सन्मार्ग दिखा कर भयङ्कर पतन से बचाने मे समर्थ हो। केवल मनोरंजन करानेवाले उपन्यासो को पढ़ने से धन और समय का अपव्यय मात्र ही होता है, लाभ कुछ नहीं। मेरा विश्वास है कि इसके पढ़ने से अवश्य ही लाभ होगा ..... अन्त मे मैं माण्डवी महाशया के लेखक (कवि) महोदय को इसके लिखने पर धन्यवाद और बधाई देता हूं और यह कामना करता हूं कि इस काव्य का सर्वत्र प्रचार हो।' ऐसी ही कामना हमारी भी हैं।

वर्ष ११ अङ्क २ फरवरी १९८७ ❋ वेदज्योति ❋ सं० १०२१/६२ डाक २०९

आपका वर्ष पूर्ण होगया है, कृपया वार्षिक शुल्क २१) शीघ्र भेजें।

५— 'यज्ञ और उसकी महिमा' शीर्षक युक्त २३वें प्रकरण में महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अनेकों के भाव पद्यमय किये गये हैं. अन्य प्रकरणों में भी इसमे बहुत कुछ कहा गया है, विशेषतया वेदों के विषय का प्रतिपादन करने में।

यह यज्ञोपन्यास पठनीय एवं संग्रहणीय है। प्रणेता इसके प्रणयन के लिए धन्यवाद के पूर्णतया अधिकारी हैं। वैदिक भावोंसे ओतप्रोत यह एक विरल विशिष्ट साहित्यिक प्रणयन है। २००० के लगभग छंदों वाली, ३१० पृष्ठों की इस कृति का मूल्य १५)रु. है।

प्राप्ति-स्थान— गुरुकुल परिसर, होशङ्गाबाद (म० प्र०)

प्रेषक- [illegible] महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३८०१

1328 श्री पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरुकुल कांगड़ी

ओ३म्

वर्ष ११ **वेद-ज्योति** अंक ३

वर्ष ११, अङ्क ३, तपस्य(फाल्गुन) २०४३ वि०, मार्च १९८७ ई०
वेद-सृष्टि-संवत १९६०८५३०८७, दयानन्दाब्द१६४, वार्षिक शुल्क २०)
सम्पादक- वीरेन्द्रमुनि, सहा विमलाशास्त्री, सी८१७ महानगर, लखनऊ

❀ इस अङ्क मे पठनीय— ❀

....

ईश्वर के चार प्यारे !

ऋषि- वामदेव, देवता- इन्द्र, छन्द- त्रिष्टुप, स्वर धैवत।

न तं जिनन्ति बहवो न दभ्राः उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत ।
प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥
ऋ ४.२५.५

उसको न जीत सकते हिंसक मनुष्य सारे,
उसको ही माता रूपी वह ईश सुख है देता ।
प्यारा सुकर्मी जिसको प्यारा जिसे मनस्वी,
प्यारा है जिसको रक्षक, है जिसको प्यारा सामी ॥
शुभ कर्म करनेवाले या मन से हो विचारक,
हो रक्षा करनेवाले या साम के हो धारक ?
ईश्वर के चार प्यारे तुम कौन हो ? विचारो,
सुकृत्, मनीषी, रक्षक, सोमी, अगर हो चारों ।
तो तुम सकल जगत् मे हो श्रेष्ठतम, प्रथम हो,
यदि तीन गुण हैं तुम मे, तो तुम द्वितीय प्यारे ॥
यदि दो ही गुण हैं तुममे तो तुम तृतीय प्रिय हो,
यदि एक ही हो गुण तो, हो तुम चतुर्थ प्यारे ॥
गुण एक भी नहीं यदि, तो व्यर्थ है यह जीवन ।
जीवन सफल बनालो, हो जाओ उसके प्यारे ॥ —वीरेन्द्रमुनि

सत्यार्थप्रकाश मन्त्र व्याख्या

क्रमाङ्क १५, ऋषिका घोषा, देवता अश्विनौ, छन्द जगती, स्वर निषाद

कुह स्विद् दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥
ऋ १०.४०.२

हे स्त्री-पुरुषो ! जैसे देवर को विधवा, और विवाहिता स्त्री अपने पति को समान स्थानमें एकत्र होकर सन्तानों को सब प्रकार से उत्पन्न करती है [illegible] कहां रात्रि और कहां दिनमें बसते थे कहां पदार्थों की प्राप्ति की ? और किस समय कहां वास करते थे ? तुम्हारा शयन-स्थान कहां है तथा कौन वा किस देशके रहनेवाले हो?

इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेश में स्त्री-पुरुष संग ही में रहें । और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे । समुल्लास ४

❁ समाचार ❁

—टङ्कारा में २५-२७ फरवरी तक ऋषि-मेला मनाया गया ।

—रोहतक में १५ से २२ फरवरी तक महात्मा प्रभुआश्रित जी की जन्मशताब्दी पर १०१ कुण्डों में यजुर्वेद-पारायण यज्ञ हुआ ।

—आर्यसमाज बदायूं का वार्षिकोत्सव १५-२-८७ तक हुआ ।

–शोक है कि नीचे छपे सज्जनों का देहान्त होगया—

श्रीमती ओमवती देवी [illegible] लखनऊ २६-१-८७

,, यशोदादेवी [श्र. यु० मीमांसक की पत्नी] बहालगढ़ ११-१-८७

डा० श्यामलाल पाण्डेय पूर्वप्रधान आ० स० लखनऊ १९-१-८७

श्री रस्तोगी (श्रीमती कृपादेवी के पति) ,, ,, ,,

धर्मपत्नी श्री प० धर्मपाल विद्यालङ्कार बदायूं दिसम्बर १९८७

❁ वेदज्योति–संबन्धी वक्तव्य ❁ (फार्म ४) [नियम ८]

१ प्रकाशन का स्थान– लखनऊ । २ अवधि– मासिक, तारीख १
३ मुद्रक– ४ प्रकाशक– ५ सम्पादक नाम– वीरेन्द्रमुनि शास्त्री
राष्ट्रीयता– भारतीय पता– सी ८१७ महानगर लखनऊ ६ [उ.प्र.]
६ स्वामित्व – विश्व वेदपरिषद् सी ८१७ महानगर लखनऊ ६
मैं वीरेन्द्रमुनि शास्त्री इस वक्तव्य द्वारा घोषणा करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरे ज्ञान और विश्वासमें सत्य है । वीरेन्द्रमुनि शास्त्री १.३.८७

वेद-विषय-विचार

लेखक—

[आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ,
अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्' सी ८१७ महानगर, लखनऊ]



श्री हरिहरानन्द करपात्री ने (जिन्हें आगे सुविधार्थ क लिखा है) अपने वेदार्थपारिजात में महर्षि दयानन्द सरस्वती की (जिन्हें आगे सुविधार्थ 'द' लिखा है) ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेद-विषय-विचार की आलोचनामें उस शीर्षक पर आपत्ति की है जिसमें पहले संस्करणमें अन्त में विषय लगा था। इसमें षष्ठीतत्पुरुष समास मानने से आपत्ति नहीं रहती— वेदों के विषयों के विचार का विषय।

२— वेदों के ४ विषयों [विज्ञान–कर्म–उपासना–ज्ञान] के साथ काण्ड के लगाने पर क द्वारा दोष दिखाना व्यर्थ है क्योंकि ४ विषय ही ४ काण्ड हैं।

३— क ने आपत्ति की चारों वेदों के ४ विषय यथाक्रम नहीं हो सकते। इसका निराकरण यह है कि ये विषय उस उस वेद के अधिकांश में हैं।

४— विज्ञान को परमेश्वर से लेकर तृण पर्यन्त पदार्थों में बोधान्वयत्व बताने को व्यर्थ बताते हुए क ने कहा कि दयानन्द और उनके अनुयायी इसे सिद्ध नहीं कर सकते। द तो अब नहीं हैं किन्तु उनके अनुयायी उत्तर अवश्य देंगे। क भी चले गये अब उनके अनुयायिओं को आह्वान है कि इसे व्यर्थ सिद्ध करें। ऋषि का कोई वचन व्यर्थ नहीं। यह तो न समझ सकने वालों का ही दोष है।

५— ऋ० भा० भू० के हिन्दी अनुवाद में दिये विज्ञान के अर्थ को क ने अर्थशून्य और प्रमत्त-प्रलाप बताया। वस्तुत: उनका यह कहना ही बेकार और पागल की बकवाद है क्योंकि इसमें वि उपसर्ग ही प्रमाण है जो ज्ञान से विज्ञान को विशेष बताता है।

६— द ने लिखा था– परमेश्वरसे आरम्भ करके तृणपर्यन्त पदार्थों का ज्ञान विज्ञान है। इसे क ने बदलकर परमेश्वरके अतिरिक्त पदार्थों का ज्ञान करके व्यर्थ ही आपत्ति की। द ने लिखा कि वेद-विज्ञान में सबका मूल रूप से वर्णन है और भू० तथा भाष्य में अनेकत्र उनका दिग्दर्शन भी कराया फिर भी क का यह कहना कि 'तुमने ऐसा कोई मन्त्र ऐसे व्याख्यान से युक्त नहीं दिखाया' दुष्टतापूर्ण है। द ने अपने समर्थन में कठ आदि के दस प्रमाण भू० में दिये हैं पाठक वहीं देखें।

७— कठ में आये यदेजन्तो के तस्मिन्नध्यासमाना: अर्थ में दोष बताना ठीक नहीं। ब्रह्मज्ञान का फल दु:खों से मोक्ष के पश्चात् ब्रह्म की प्राप्ति करना है यह तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति के अनुकूल है।

८— द का किया मुण्डक-वचन का अर्थ कुछ भी विरुद्ध नहीं। क 'तत्र' से वेद का ग्रहण स्वीकार करते हैं। वे परा में कुछ मन्त्र तथा उपनिषद् मानते हैं। तो क्या वे कुछ मन्त्र वेद के नहीं हैं और क्या मुख्य उपनिषद् ईश यजुर्वेद का ४० वां अध्याय नहीं? अतः द का दिया मुण्डक-वचन विधान का साधक ही है बाधक नहीं। द कृत अर्थ ठीक है, मूल वचन के विरुद्ध नहीं। अन्तमें क को भी मानना पड़ा कि कर्मोपासना-परक वेद अपरा विद्या और ब्रह्म-प्रतिपादक वेद परा विद्या है। पृ.५४९

९— ब्रह्मचर्यं चरन्ति में द ने ब्रह्मचर्य का अर्थ चारों आश्रमों मे सत्याचरण कर्म बताया है, उसमें दोष बताना ठीक नहीं है क्योंकि वह तो चारों ही आश्रमों में विहित है।

१०. तद्विष्णोः० ऋ ८.२.७ का द ने बहुत उत्तम सत्य अर्थ किया है— उस परमात्मा के परम पद मोक्ष को विद्वान् सदा आत्ममें देखते है। इसे क ने असङ्गत निराधार और विशृंखल बताकर सायण के और अपने अद्वैतवादी अर्थ को ठीक बताया उन्होंने यहां निस्सार कुतर्क-जाल बिछाया है। उन दोनोंका अर्थ ठीक नहीं बैठता क्योंकि मन्त्र में परम पद और सूरयः दोनों भिन्न हैं द ने कभी नहीं लिखा कि वह ब्रह्म पद सभी के द्वारा सदा उपलब्ध है, यह तो क ने अपनी ओर से गढ़ लिया जिससे उसका खण्डन किया जा सके। द का किया अर्थ कुछ भी विशृंखल नहीं प्रत्युत साध्य के साधनार्थ हेतुका उपन्यास है प्रकरण की सङ्गति भी ठीक लग रही है। नायं स्थाणोरपराधः यदेनमन्धो न पश्यति। सायण का अर्थ देकर फिर 'अथवा' लिखकर अपना अर्थ देने से सिद्ध होता है कि क को सायण का अर्थ ठीक नहीं लगा। पृष्ठ ५८३ पर दिये अर्थ से अद्वैतवाद का स्वतः खण्डन हो जाता है क्योंकि विष्णु और ब्रह्मवेत्ता अलग अलग हैं एक प्राप्तव्य है और दूसरा पानेवाला जीव है।

११— द ने स्वपक्ष-पुष्टि में तत्तु समन्वयात (वेदान्त १.१.४) दिया और समन्वय का अर्थ 'प्रतिपादित' किया जिसे क ने अशुद्ध बताकर 'तात्पर्य' किया, प्रमाण कुछ नहीं दिया। दोनोंका भाव एक होने से द के अर्थ को अशुद्ध बताकर क ने अपनी द्वेषबुद्धि का ही परिचय दिया (सूत्र वेदान्त १.१.१४ का बताना क की अज्ञता को ही सूचित करता है।

१२— … ने स्वकृत-पुस्तिका में ८ वाँ प्रमाण यजु ८ ३६ का दिया—

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥

इसे … ने असङ्गत अयुक्त और निरर्थक बताया जो द्वेष-बुद्धि ही है षोडशी का अर्थ … ने १६ कलात्मक तथा १६ ग्रह (पात्र) रूप किया। दोनों में विरुद्ध है १६ कलाओं के स्वामी को एक बरतन की मूर्ति के रूप पूजा बुद्धि एवं तर्क के विरुद्ध है। ग्रह-पूजा का विनियोग बहुत बाद के मध्य-काल का है उसके पहले सृष्टि-प्रारम्भ से प्रचलित अर्थ को अशुद्ध बताना सर्वथा अनुचित है। यह मन्त्र ब्रह्म का प्रतिपादक है इसे इसके चारों पाद बता रहे हैं। अर्थ सर्वथा सङ्गत है। जातः का 'प्रकट' अर्थ कोई विरुद्ध बात नहीं कहता। संरराणः का भाव प्राणियों को सुख देना भी सुसंगत है, प्रजा का तात्पर्य सृष्टि सर्वथा उचित है क्योंकि वह प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न होती है। सृष्टि का सामान्य कथन करके १६ कलाओं का विशेष कथन किसी तरह अयुक्त तथा निरर्थक नहीं हो सकता।

१३— दसवाँ प्रमाण महाभाष्य-वचन संख्या १०६ पर मिलता है। अष्टाध्यायी १.२.६९ तथा ३.१.१ के महाभाष्य की इस परिभाषा में स्पष्टता के लिए आरम्भ में प्रधानाप्रधानयो, किसी ने जोड़ा था उपलब्ध संस्करण में छपने से रह गया। किन्तु बाल की खाल निकालने वाले … को इसमें भी दोष दिखाई दिया

१४— इसके उपसंहार में … पूछते हैं कि तदुपदेशपुरस्सरेण किसका विशेषण है? हमारा उत्तर है कि यह क्रिया का विशेषण है तथा ऋषियों की भाषा में शुद्ध है। … के कथनानुसार यह नपुंसकलिंग है एकवचन होना चाहिए। वह तो यहाँ है ही, फिर आपत्ति क्यों?

१५— … पूछते हैं कि काण्डों का अनुष्ठान कैसे होगा? हमारा उत्तर है कि यदि ज्ञान-कर्म-उपासना का अनुष्ठान नहीं होगा तो फिर किसका होगा?

'यथायोग्य उपकार' को प्रयोजन बताने में भी … को दोष दिखाई देता है। किन्तु समझना चाहिए कि यह ज्ञान-कर्म-उपासना के अतिरिक्त यथायोग्य उपकार है जो दूसरे के लिए ही किया जाता है।

यह वेद-विज्ञान-विषय-विचार समाप्त हो गया।

इसके पश्चात् वेद के कर्मकाण्ड पर विचार होगा।

निरुक्त अध्याय चौदह

खण्ड ६— मनुष्य योनि से संयुक्त होने के विषय में यह मत है— रेत से श्लेष्मा पैदा होता है, उस से रस; उससे रुधिर, उससे मांस, उससे चर्बी, उससे स्नायुएँ, उनसे हड्डियां, उनसे मज्जा, उससे वीर्य उत्पन्न होता है। यह स्त्री के गर्भाशय में सिक्त किया हुआ पुरुष बन जाता है। वीर्य की अधिकता में पुरुष, रज की अधिकता में स्त्री, दोनों के समान होने पर नपुंसक होता है, और वीर्य के भेद हो जाने से जोड़ा उत्पन्न होता है।

वीर्य-रज के और माता-पिता के संयोग से किस प्रकार यह शरीर अन्तिम सङ्गठन में लाया जाता है? गर्भाधान के पश्चात् सौम्य होता है, एक रात में कलल पाँच रातों में बुद्बुद, सात रातों में पेशी, चौदह रातों में अर्बुद, पच्चीस रातों में स्थित घन, एक मास में कठिन हो जाता है। दो मासों के अन्दर सिर बन जाता है, तीन मास में गरदन की बनावट जान पड़ती है, चार मासों में त्वचा की ओर पाँचवें मास में नख तथा रोमों की बनावट दीखपड़ती है. छटे मासमे मुख नाक चक्षु नख कान बन जाते हैं, सातवें मास में हिलने डुजने में समर्थ होता है, आठवें मास में बुद्धि से संयुक्त होता है, नवे मास में सर्वाङ्ग सम्पूर्ण हो जाता है।

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर् मृतः।
नानायोनिसहस्राणि मया यान्युषितानि वै ॥
आहारा विविधाः भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥
अवाङ् मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः।
सांख्यं योगं समभ्यस्ये पुरुषं वा पञ्च विंशकम् ॥

मैं मरा और फिर पैदा हुआ, मैं पैदा हुआ और फिर मरा एवं मैंने जिन नाना प्रकार की सहस्रों योनियों में निवास किया,

वहाँ मैंने अनेक प्रकार के भोजन खाये और अनेकविध स्तन पिये, अनेक माताएं, पिता और मित्र देखे।

और अब यहाँ नीचे मुख करके पड़ा हुआ पीड़ित हूं, वहाँसे निकल कर मैं सांख्य और योगका अभ्यास करूँगा और पच्चीसवें तत्त्व ईश्वर की भक्ति करूँगा'

फिर वह जीव दशम महीने में उत्पन्न होकर वायुसे संस्पृष्ट होकर

यह जन्म-मरण को और अन्त में शुभ-अशुभ कर्मको भूल जाता है ।

खण्ड ७- यह शरीर का प्रमाण है-- १०८ सन्धियाँ हैं, ८ कपालों वाला सिर बनता है । १६ पल (१६ माशे=१ कर्ष,४ कर्ष ॥ १ पल, अतः १७ छटाँक ४ माशे) चर्बी होती है, ६०० स्नायु होती हैं । डिश के १०१ मर्मस्थल हैं ' साढ़े चार करोड़ रोम हैं, ८ पल (८ छ० २ तोला ८ माशे) हृदय होता है, १२ पल जिह्वा होती है, और दोनों अण्डकोष ८ सुवर्ण १ सुवर्ण=१६ माशे, अतः २ छटाक ८ माशे) है, तथा उपस्थ और गुदा-पायु मूत्र और मल के द्वार हैं । किस कारणमें? आहार-पान के सिक्त होनेसे, अनुपचित कर्मवाले अन्योन्य को जीतते हैं।

उसके विद्या-कर्म और पूर्वप्रज्ञा सहारा देतेहैं । महान् अज्ञानरूपी से डूबा डर-मरण-भूख-प्यास-शोक-क्रोध-लोभ-मोह-मद-भय मत्सर-हर्ष-विषाद-ईर्ष्या-असूया रूपी द्वन्द्वों से पराजित हो वह इससे सरलता पूर्वोक्त तीव्र भावों से मुक्त होता है । वह अहङ्कारयुक्त महा भूमिका के समान शरीर से निमेषमात्र से आरम्भ करके प्रकृति को सर्वत्र घेरकर तजस शरीर करके कर्म के अनुरूप फल भोगकर उसके नाश पर फिर इस लोक को प्राप्त होता है ।

खंड८.और जो कर्म का आश्रय लेकर विद्या को छोड़क महान् तप करते हैं और वेदोक्त कर्म करते हैं वे मृत्यु के बाद धूम को पाते हैं, धूम से रात्रि, उससे कृष्णपक्ष, उससे दक्षिणायन, उससे पितृलोक, उससे चन्द्रमा, उससे वायु, उससे वृष्टि, उससे ओषधियों को प्राप्त होते हैं, इस प्रकार पुनः इस लोक को आते हैं ।

खण्ड ९— और जो हिंसा (कर्म)को छोड़कर विद्याका आश्रय लेकर महान् तप और ज्ञानोक्त कर्म करते हैं वे मृत्यु के बाद अर्चि को,उससे दिन, उससे शुक्लपक्ष, उससे उत्तरायण, उससे देवलोक, उससे आदित्य,आदित्य से वैद्युत, वैद्युत से मानस, और मानस पुरुष होकर ब्रह्मलोक(मुक्ति-धाम) में पहुंच जाते हैं । वेफिर नई सृष्टि तक नहीं लौटते, शेषसांप-बिच्छू आदि होते हैं जो यह नहीं जानते,अतः यह ज्ञातव्य है ।

खण्ड १०— और ऋ १०.८२ ७ में कहा भी है—

न तं विदाथ य इमा जजान अन्यद् युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

हे अज्ञानिओ ! तुम विद्या से उस ईश्वर को नहीं जानते जिसको विद्वान् इस प्रकार अक्षर, ब्रह्मणस्पति कहते हैं, जिसने इन प्रजाओं

को बनाया; जो तुमसे अन्य, तुम्हारे अन्दर है। वे अज्ञानी लोग अज्ञान से आच्छादित, विवाद-कुशल, प्राण-रक्षा में तत्पर, और वचनमात्र से प्राण तथा सूर्य को ईश्वर कहते हुए घूमते हैं।

विद्वान् सर्वज्ञ ईश्वर के विषय में कहते हैं कि वह उस जीवपर दया करता है जो तप से अप्रमादी होता है और जब प्रभु प्राप्तव्य हो जाता है। मनुष्य उससे अविच्छेद की इच्छा करे और मैत्री चाहे। निश्चय से ही वह श्रेष्ठ मित्र है और भूत-भविष्यद्-वर्त्तमान सब को जानता है।

[ज्ञाता किस से ? ज्ञा से। सखा किस से ? ख्यायति से बना है]

तब वह जीव इन्द्रियों के साथ स्थित होता है और उन भौतिक इन्द्रियों से कर्त्तव्याकर्त्तव्य विचारपूर्वक कर्म कराता है। एवं सका जो तप, स्थिरता, शील, उपशम है, तथा यह ब्रह्म मेरा प्राण है ऐसी जो धारणा है उनसे वह ब्रह्मस्वरूप बन जाता है, साक्षिमात्र, अबन्ध, ज्ञानी अवस्थित होता है।

खण्ड ११– अब पहले महान् आत्माके ६४ भूतवाची नाम गिनाते हैं–

[उनमें भूतम् से अम्बरम् तक ४२ नाम (निघण्टु पृष्ठ ४) जलवाची हैं, अम्बरम् से समुद्र तक १४ नाम (नि० पृष्ठ २) अन्तरिक्षवाची हैं, धर्म से मेघ तक ४ नाम (नि० पृष्ठ १६) यज्ञ वाची हैं—

हंस घर्म यज्ञ वेन मेध कृमि भूमि विभु प्रभु शम्भु शभु वध-कर्मा सोमः भूतम् भुवनम् भविष्यत् महत् आपः व्योम यशः महः स्वर्णीकम् स्मृतीकम् स्वृवीकम् सतीकम् सतीनम् गहनम् गभीर गह्व-रम् कम् अन्न हवि सद्म सदन ऋत योनि ऋतस्य योनिः सत्य नीर रयि सत् पूर्ण सर्व अक्षित बर्हि नाम सर्पि आपः पवित्र अमृत इन्दु हेम स्वः सर्गाः शम्बर अम्बरम् वियत् व्योम बर्हि धन्व अन्तरिक्ष आकाश अपः पृथिवी भू स्वयम्भूअध्वा पुष्कर सगर समुद्रः तप तेज सिन्धु अर्णव नाभि ऊध वृक्ष तत् यत् किम् ब्रह्म वरेण्यमे हस आत्मा भवन्ति बध्नन्ति अध्वानमं यद्बाहिष्या। शरीराणि अव्ययं च संस्कुरुते यज्ञ आत्मा भवति यदेनं तन्वते।

खण्ड १२—इन महान् आत्मा के ये सूक्त (ऋ ९.९६, ९७ आदि और २६ ऋचाएं अनुप्रवचन कर रही हैं–

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥

ऋ ९;९६.५

सोम प्रेरक सूर्य चमकता है, वह मतियों (प्रकाशक आदित्य-रश्मियों)

का, द्यौ (द्योतक आदित्य-रश्मियों) का,, पृथिवी का; अग्नि (गति-कर्मा आदित्य-रश्मियों) का, सूर्य की प्रेरक किरणों का, इन्द्र (ऐश्वर्य-शाली आदित्य-रश्मियों) का, विष्णु (व्यापक आदित्य-रश्मियों) का, जनयिता उत्पादक है। यह अधिदैवत अर्थ हुआ।

अब अध्यात्म अर्थ— सोम प्रेरक परमात्मा व्यापक है। वह इन्द्रियों द्यौ, पृथिवी, अग्नि, सूर्य विद्युत् यज्ञ का जनयिता सर्वविभूतियुक्त है।

खण्ड १३- दूसरा मन्त्र ऋ९.९६.६का है-

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥

सोम आदित्य देवों (किरणों) का धर्ता है, कवि (क्रान्तदर्शी किरणों) का पद जानता है, विप्रों (व्यापक किरणों) का गतिस्थान है, मृगों (अन्वेषक किरणों) का महान् स्थान है, गृध्रों (स्वस्थानस्थ किरणों) का श्येन (गतिप्रद) है, विभाजक किरणोंका स्वयं धारकहै, यह आदित्य वर्णित होकर अपनी रश्मियों की पवित्रता को हम तक पहुंचाता है। यह अधिदैवत हैं।

अब अध्यात्म अर्थ— सोम आत्मा देवों (इन्द्रियों) का ब्रह्मा, कवियों इन्द्रियों का पदज्ञ, विप्र इन्द्रियों का द्रष्टा, मृग अन्वेषक इन्द्रियोंका बड़ा केन्द्र है, गृध्र इन्द्रियों का ज्ञाता है, विभाजक इन्द्रियों का स्वयं धर्ता है, वह स्तुत होकर पवित्र इन्द्रियों को अतिक्रमण करता है, यही इस सबको अनुभव करता है। इस तरह यह मन्त्र आत्म-गति को कहता है।

खंड १४ मन्त्र १-

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥

ऋ ९.९७.३४

वह्नि आदित्य होता है। वह ३ वाणियों (ऋग्-यजुः-साम) को और ऋत आदित्य के कर्मों को तथा ब्रह्म के मतों को प्रेरित करता है। गौएं (पृथिवी-रश्मि-वाणी) अपने रक्षक स्वामी को पूछती हुई गति करती हैं। मतियाँ कामना करती हुईं सोम की ओर जाती हैं। यही यह सब अक्षर है। यह अधिदैवत है।

अब अध्यात्म अर्थ— वह्नि आत्मा है। वह तीनों वाणियों (विद्या-मति-बुद्धि) को और ऋत सत्य के कर्मोंको तथा वेद के मतो का प्रेरित करता है। वाणियाँ अपने पति को पूछती हैं। कामनायुक्त मतियाँ सोम परमात्मा को जाती हैं। इसका यही अनुभव है। यह आत्मगति बताई।

अष्टाध्यायी अ. ५ पाद चार

१९० वां गण— द्विदण्डि द्विमुसलि उभाञ्जलि उभयाञ्जलि उभा कर्णि उभयाकर्णि उभादन्ति उभयादन्ति उभाहस्ति उभयाहस्ति उभा-पाणि उभयेपाणि उभाबाहु उभयाबाहु एकपदि प्रोष्ठपदि आढ्यपदि सपदि निकुच्यकर्णि संहतपुच्छि

१२९ [illegible]

प्र और सं से परे जानु को ज्ञु हो— प्रज्ञु; संज्ञु: ।

१३० ऊर्ध्वाद् विभाषा

ऊर्ध्व से परे ज्ञु विकल्प से हो— ऊर्ध्वज्ञु; ऊर्ध्वजानु: ।

१३१ ऊधसोऽनङ्

ऊधस् को समासान्त अनङ् हो— घटोघ्नी धेनु: ।

१३२ धनुषश्च ॥

और धनु: से भी अनङ् हो— शार्ङ्गधन्वा गाण्डीवधन्वा ।

१३३ वा संज्ञायाम् ।

संज्ञा मे विकल्प से अनङ् हो— शतधन्वा शतधनु: ।

१३४ जायाया निङ् ।

जाया के समासान्त निङ् हो— युवजानि: वृद्धजानि:

१३५ गन्धस्येदुत्पूति सु सुरभिभ्य: ॥

इन ४ से परे गन्ध को इ हो— उद्गन्धिपूतिगन्धि: सुगन्धि:

१३६ अल्पाख्यायाम् ।

अल्प की आख्या मे गन्ध से थ हो— घृतगन्धि क्षीरगन्धि भोजनम् ।

१३७ उपमानाच्च ।

और उपमान से परे गन्ध से इ हो— पद्मगन्धि: ।

१३८ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य ॥

हस्त्यादि वर्जित उपमान से पाद का लोप हो— व्याघ्रपाद् सिंहपाद् ।

गण१९१ हस्तिन् कटोल गयेडोल गंडोलकमहिला दासी गणिकाकुसूल ।

१३९ कुम्भपदीषु च ॥

कुम्भपदी आदि में पाद का लोप और ङीप निपातित हैं

१९२ वॉ गण— कुम्भपदी (आगे भी सबमें पदी लगेगा) शत अष्टा जाल एक माला मुनि गोधा गो कलशी घत दासी निष आद्र कुण कृष्ण द्रोण द्रु शकृत् सूप पञ्च अध स्तन । पाद: पत् से पदादेश हुआ ।

१४० सङ्ख्यासुपूर्वस्य ।

संख्या और सु पूर्ववाले से पादका लोप हो –द्विपात् त्रिपात् सुपात।

१४१ वयसि दन्तस्य दतृ ।

आयु बतानेमें दन्त का दतृ हो– द्विदन् त्रिदन् चतुर्दन् षोडन् सुदन्, सुदती

१४२.छन्दसिच।

. वेद में भी दन्त को दतृ हो – पत्रदन् तमाजभेत।

१४३ स्त्रियां संज्ञायाम्।

स्त्रीलिंग में संज्ञा में दन्त को दतृ हो— अयोदती फालदती

१४४ विभाषा श्यावारोकाभ्याम् ॥

इनके बाद दन्त को दतृ विकल्प से हो— श्यावदन्त: अरोकदन्त: श्यावदन् अरोकदन्।

१४५ अग्रान्त शुद्ध शुभ्र वृष वराहेभ्यश्च।

इन ५ के बाद दन्त को दतृ विकल्प से हो— कुड्मलाग्रदन्, दन्त: शुद्धदन् शुभ्रदन् वृषदन् वराहदन्, दन्त:।

१४६ ककुदस्यावस्थायां लोप:।

अवस्था में हो तो ककुद का लोप हो— असंजातककुत् पूर्णककुत उन्नतककुत्।

१४७.त्रिककुत्पर्वते।

पर्वत में त्रिककुत् निपातित है।

१४८ उद्विभ्यां काकुदस्य ॥

उद् और वि के बाद काकुद का लोप हो – उत्काकुत् विकाकुत्।

१४९.पूर्णाद्विभाषा।

पूर्ण से विकल्प से लोप हो— पूर्णकाकुत् पूर्णकाकुद.।

१५० सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयो: ॥

मित्र और शत्रु अर्थ में सुहृद् और दुर्हृद् निपातित हैं।

१५१ उर:प्रभृतिभ्य: कप् ॥

उर आदि से कप् हो– व्यूढोरस्क: प्रियसर्पिष्क: अवमुक्तोपानत्क: १५१ वा गण- उर: सर्पिस् उपानह् पुमान् अनड्वान् नौ: पय: लक्ष्मी; शाला दधि मधु॰ नञ्पूर्वक अर्थ से- अनर्थक;।

१५२. इन: स्त्रियाम्।

स्त्रीलिंग में इन्नन्त से कप् हो– बहुदण्डिका शाला बहुस्वामिका।

१५३.नद्यृतश्च।

१५४.शेषाद्विभाषा ।

शेष से विकल्प से कप् हो- महायशस्क: महायशः ।

१५५.न संज्ञायाम् ।

संज्ञा में कप् न हो — विश्वदेवः विश्वयशाः ।

१५६.ईयसश्च ॥

ईयस् अन्त वाले में कप् न हो — बहुश्रेयान् बहुश्रेयसी ।

१५७.वन्दिते भ्रातुः ।

पूजित अर्थ में भ्राता से कप् न हो- प्रशस्तभ्राता ।

१५८ ऋतश्छन्दसि ॥

ऋदन्त में वेद में कप् न हो — हतमाता हतपिता ।

१५९ नाडीतन्त्र्योः स्वांगे ॥

स्वांगवाची नाडी और तन्त्री से कप् न हो- बहुनाडीः काया

१६० निष्प्रवाणिश्च ।

और निष्प्रवाणि निपातित है ।

यह अध्याय ५ समाप्त हुआ ।

अध्याय ६ पाद एक

१ एकाचो द्वे प्रथमस्य ॥

हलादि धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व हो। यह अधिकार है।

२ अजादेर्द्वितीयस्य॥

अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो- अटिटिषति अशिशिषति।

३ न न्द्राः संयोगादयः।

संयोगके आदिके न द र को द्वित्व न हो- उन्दिदिषति उड्डिडिषति अर्चिचिषति।

४ पूर्वोऽभ्यासः।

द्वित्व मे पहले अक्षर की अभ्यास संज्ञा हो — पपाच पिपक्षति पापच्यते जुहोति अपीपचत्।

५ उभेऽभ्यस्तम्।

द्वित्व के दोनो अक्षर अभ्यस्तसंज्ञक हों— ददति ददत्।

६ जक्षित्यादयः षट्।

शतपथ का ३अ, ६ ब्राह्मण एक

सद, इस यज्ञ का उदर है, अतः उसमें बैठकर खाते हैं, जो खाया जाता है उदर में ही रक्खा जाता है। इसमें सब देव बैठे अतः इसका नाम सदः है। सब गोत्रोंके ब्राह्मण इसीमें बैठते हैं। इन्द्र देवता है। १

उसके मध्य में वह गूलर की लकड़ी रखता है जो अन्न वा शक्ति है, सदः-उदर के बीच में वह गूलर की लकड़ी रखता है। २

वेदि के पिछले आधे भाग के बीच की शङ्कु से पूर्वकी ओर ६ पग चलकर दाहिनी ओर ७वाँ पग कामनापूर्त्यर्थ भरता है, वहाँ एक गड्ढे का चिह्न बनादेता है।३

वह यह मन्त्र पढ़कर अभ्रि लेता है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् आददे नार्यसि। (य ५.२६) तात्पर्य पूर्ववत् है। ४

अब वह इस मन्त्र से गड्ढे का चिह्न बनाता है—

इदमहं रक्षसां ग्रीवा अपिकृन्तामि॥ (य ५.२६, अर्थ पूर्ववत्) ५

अब खोदता है, मिट्टी पूर्व को डालता है,, यजमान के बराबर नाप कर लकड़ी चिकनाता है और गड्ढेके आगे पूर्वाग्र रखता है,कुश ऊपर बिछाता है। ६

प्रोक्षणियों में जौ होते हैं। जल ओषधियों का रस है, वे ही खाये जायें तो तृप्ति नहीं, ओषधियाँ जल का रस है, वही पिया जाय तो भी तृप्ति नहीं. दोनोंके मिलने पर तृप्ति होती है; वह सोचता है कि सरस जल सींचूँ। ७

प्रजापति-सन्तान देव-असुर लड़े. देवोंसे जौ छोड़कर सब चलागया।८

उन्होने कहा-सब ओषधियोंका रस जौ में रखलें, वैसाही किया।९

अतः सब के सूख जाने पर भी हरे भरे रहते हैं। इसी प्रकार यजमान जौ के द्वारा शत्रु के अन्नोंको खींच लेता है। अतः प्रोक्षणी मे जौ रहते हैं।१०

यह उस गड्ढे में यह मन्त्र पढ़कर जौ डाल देता है—

यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीः (य ५.२६)

[तू यव है, हमसे द्वेष और शत्रु हटा।]। अब सींचता है जिस का ... पवित्रता है।११

वह इस मन्त्रसे जल सींचता है—

दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा(य ५.२६)

[द्यु अन्तरिक्ष और पृथिवी के लिए तुझे] इस तरह इन लोकों में शक्ति-रस देताहै।१२

बचा हुआ जल यह कहकर गड्ढे में डाल देता है—

शुन्धन्तां लोकाः पितृषदनाः [पितरों के सदन लोक शुद्ध हों]

कूप पितृ देवता का है अतः उसे यज्ञ-योग्य बनाता है। १३

अब वह पूर्वाग्र और उत्तराग्र कुश यह कहकर उसमे बिछाता है—

पितृषदनमसि (य ५-२६)[तू पितरों का सदन है]

मानो खोदागया भाग वृक्षोंके साथ मिलकर उनके समान हो जाता है।१४

अब वह उस को यह कह कर उठाता है—

उद्दिवं स्तभानान्तरिक्षं पृण दृंहस्व पृथिव्याम्।(य ५-२७)

[द्यौ को उठा अन्तरिक्ष को भर, पृथ्वी को दृढ़ कर।] इस तरह वह इन लोकोंको शक्ति और रस से युक्त करता और स्थापित करता है।१५

अब वह उसको यह पढ़कर गाड़ देता है—

द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा(य ५-२७)

[मरुतो का पुत्र द्युतान वायु तुझको गाड़े।] उसीसे वह गाड़ता है।

[मित्र और वरुण के ध्रुव धर्म के द्वारा] ये प्राण-उदान है। इनसे उसे गाड़ता है।१६

अब वह यह पढ़कर चारों ओर मिट्टी इकट्ठी करता है—

ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। (य ५-२७)

[ब्रह्मत्व-क्षत्रियत्व-रायस्पोष को प्राप्त करनेवाले तुझको मैं घेरता हूं] यजुओं में आशीर्वाद बहुत है। इससे वह ब्रह्मत्व-क्षत्रियत्व और ऐश्वर्य और पुष्कलता का आशीर्वाद देता है। १७

अब वह यह कहकर मिट्टी को दबा दबा कर मजबूत करता है—

ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंहायुर्दृंह प्रजां दृंह। (य ५-२७)

[ब्रह्म-क्षत्र-आयु-प्रजा को दृढ़ कर] यही इस कर्मका आशीर्वाद है। जिसे वह इससे देता है। इतनी दबाता है मिट्टी भूमिके बराबर या कुछ ऊँची होजाती है जो देवता के समान गड्ढा ऊँचा कर देती है। १८

अब उसपर जल छिड़कता है। जहाँ भूमि खोदते हैं उसमें अन्न पैदा कर देते हैं. जल शान्तिदायक है अतः उससे सींचकर शान्ति देता है। १९

वह इसे छुआकर यजमान से कहलाता है—

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया भूयात्पशुभिः।
(य ५.२८)

[तू अटल है, यह यजमान इस घर में प्रजा और पशुओं के साथ अटल हो। जो जो कामना करता है वह वह समृद्ध होती है। २०

अब स्रुवा से घी लेकर सिरे पर यह कहकर डालता है—

घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम। (य ५-२८)। द्यु. और पृथिवी घी से भर जायें। इनको वह शक्ति-रस से भर देता है। यह जनता उसीपर निर्भर है। २१

अब वह यह कहकर चटाई बिछाता है—

इन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया। (य ५-२८) तू इन्द्र की छदि और सब मनुष्यों का छाया है। क्योंकि इसमें सब गोत्रोंके ब्राह्मण बैठते हैं। इसमें दो छादें जोड़ता है। फिर उनके उत्तर में २, फिर उनके उत्तर में २; इस तरह ९ छादें हो जाता है। यह त्रिवृत् होती है। अतः छादें होती है। २२

सदः को नींव इसलिए उत्तर को होता है, इसमें नींव को पूर्व न पश्चिम को। यह देवताओं का होता है न कि यहाँ मनुष्य खाते पीते। नहीं। जो वहाँ खाय पिये उसका सिर गिर जाय। आग्नीध्र और सदः देव-मनुष्य दोनों के मिश्रित हैं अतः उसमें खाना-पीना होता है। मनुष्यों की दिशा उत्तर है अतः सदः का भाग उत्तर को होता है। २२

इस मन्त्र को पढ़कर उसको घेरत है—

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।

वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥(य ५.२९, ऋ १.१०.१२)

गिर्वा (इन्द्र) की ये गिर. (प्रजाएं) चारों ओर से तुझको घेरें, बड़ी आयुवाले के पीछे वृद्धियाँ हों, शक्तियाँ शक्तिवाली हों। इस तरह वह क्षत्रियको विशः से घेरता है, अतः क्षत्रिय विशःसे घिरा रहता है।२

अब वह यह पढ़कर सुई-डोरे से सीता और गाँठ देता है —

इन्द्रस्य स्यूरसि इन्द्रस्य ध्रुवोऽसि (य ५.३०)

[तू इन्द्र की सुई है, तू इन्द्र का ध्रुव है।] कहीं खुल न जाय। कार्य के समाप्त होने पर गाँठ खोल देता है। इस तरह अध्वर्यु-यजमान रोग-ग्रस्त नहीं होवे। कार्य-समाप्ति पर वह यह पढ़कर सदः को छूता है— ऐन्द्रमसि। (य ५.२६) तू इन्द्र का है।क्योंकि सदः इन्द्रका ही है। २५

पिछला हविर्धान देखकर उत्तर की ओर आग्नीध्र शाला बनाता है। इसका आधा, आधे से अधिक या सब वेदि के भीतर ही हो। पूरा होने पर इस मन्त्रांश से उसको छुए— वैश्वदेयमसि। (य ५.३०) [तू सब देवोंका है] क्योंकि इससे पहले विश्वेदेवाः इसीमें वसतीवरी जल के पास बैठते हैं। २६

एक बार यज्ञ करते हुए देव डरे कि असुर-राक्षस आक्रमण न करें। असुरोने दक्षिण से आक्रमण किया और उनको सदः से निकाल दिया और सदन के भीतर के धिष्ण्य (कुण्ड) उलट दिये।२७

पहले ये ऐसे ही जलते थे जैसे आहवनीय गार्हपत्य या आग्नीध्रीय। उलटने पर ये नहीं जलते। इन्होंने इनको आग्नीध्रीय तक रोकदिया उनसे उसका आधा भाग जीत भी लिया. वहीं से देवोंने अमरत्व प्राप्त किया, अतः वह अग्नि सब देवों की हो गई। २८

देवों ने उनको फिर जला लिया क्योंकि उनको वहां रहना था। अतः प्रत्येक सोमयाग में इनको जलाया जाता है, इसलिए जो समृद्ध हो वही आग्नीध्र का काम करे। समृद्ध वह है जो ज्ञानी और वेद-पाठी हो। पहले आग्नीध्र के पास दक्षिणा ले जाते हैं, सब देवोंने यही अमरत्व पाया था। यदि दीक्षितो मे किसी तरह की निर्बलता आ जाय तो अध्वर्यु कहे कि इसको आग्नीध्र के पास ले जाओ। क्योंकि यह दुःखरहित है अतः इसको भी वहाँ दुःख न होगा, यह देवोंका है।२९❀

यह काण्ड ३ के अध्याय ६ का ब्राह्मण १ समाप्त हुआ।

बाल कथामाला

रचयिता— स्वर्गीयः श्री मङ्गलसेनः कविः, बदायूं



७. वायुः सूर्यश्च

प्रवृत्तोऽभूद् विवादोऽयं कदाचिद् वायु-सूर्ययोः ।
आवयोरुभयोर्मध्ये को भवेद् बलवत्तरः ॥ १

पथि कञ्चिन्नरं दृष्ट्वा ताभ्यामेतद् विनिश्चितम् ।
यः शक्त्यास्य तनोर्वस्त्रं पृथक् कुर्यात् स वै बली ॥ २

पूर्णं चचाल वेगेन वायुस्तं यात्रिणम् प्रति ।
यात्रिणाऽऽवेष्टितं वस्त्रं शरीरान्नावतारितम् ॥ ३

पुनः सूर्येण स्वं तेजस् तस्मिन् पान्थे प्रसारितम् ।
तेनाशु व्याकुलीभूय देहाद् वस्त्रं पृथक् कृतम् ॥ ४

स्विन्नगात्रः स तापेन वृक्षच्छायामुपाश्रितः ।
वायुनाऽथ परिज्ञातं रविरेव महाबली ॥ ५

❀

दैनन्दिनी फाल्गुन चैत्र २०४३

तिथि फाल्गुन शुक्ल	२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ८९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पूर्णिमा
वार	र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र
नक्षत्र	पू उ रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु श्ले अ म पू
तारीख मार्च	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
तिथि चैत्रकृष्ण	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ १० ११ १२ १३ १४ १५
वार	सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र
नक्षत्र	उ ह चि स्वा वि अ ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ
तारीख मार्च	१६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०

ऐतरेय, शतपथब्राह्मण २ काण्ड

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ,
प्रकाशक— विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ ६
मार्गशीर्ष पूर्णिमा २०४२ वि०, २७-१२-१९८५ ई० ।
मूल्य ऐतरेय ३०), शतपथ दो काण्ड २०) रुपये । शीघ्र मँगाइये
निवेदक— वीरेन्द्रमुनि अध्यक्ष, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री
विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६

ऋतुअनुकूल हवन-सामग्री

हमनेआर्य यज्ञप्रेमियो के आग्रह पर संस्कार-विधिके अनुसार हवन सामग्रीका निर्माण हिमाचलकी ताजी जड़ी बूटियोंसे आरम्भ किया है उत्तम, कीटाणु-नाशक, सुगन्धित तथा पौष्टिक तत्त्वों से युक्त यह हवन-सामग्री अत्यन्त अल्प मूल्य में प्राप्त है, थोक मूल्य ५) प्रति किलो।
—योगी फार्मेसी, लक्सर रोड, डा० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ.प्र.)

× × × × × × × × × × × × × × × ×

प्रेषक- मुद्रक आदर्श प्रेस — से । मैं संख्या
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ श्री

ती। १

वेद-ज्योति

वर्ष ११ अङ्क ४ मधु (चैत्र) २०४४ वि०, अप्रैल १९८७ ई०

दिनदर्शी चैत्र—वैशाख २०४४ वि०

चैत्रशुक्ल १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ ११ १२ १३ १४ १५ पूर्णिमा

वार सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं

नक्षत्र रे अ भ कृ रो मृ आ आ पू उ श्ले म पू उह चि

तारीख मा ३० ३१ अ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४

तिथि वै.कृ. १ २ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० अमा

वार बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं

नक्षत्र स्वा वि अ ज्ये मू प उ श्र ध श पू उ रे अ

तारीख अ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८

सम्पादक-प्रकाशक-मुद्रक — आचार्य वीरेन्द्रमुनि, सहायक विमला शास्त्री
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१

१— सत्यार्थप्रकाश
२— संस्कृत बाल कथा माला
३— वेदार्थपारिजातखण्डन
४— निघण्टु निरुक्त
५— अष्टाध्यायी
६— शतपथ, यजुर्वेद-भाष्य

शुल्क— आजीवन २००) वार्षिक २०) एक प्रति २)

ऋषिबोध-दिवस शिवरात्रि, २६ फरवरी १९८७ को मनाया गया।

नया वर्ष सब के लिए शुभ हो !

चैत्र शुक्ल १ संवत् २०४४ विक्रम ३०-३-८७

आर्यसमाज-स्थापना-दिवस चैत्र शुक्ल ५, ३-४-८७

आर्यसमाज के संस्थापक, वेदभाष्यकार—
महर्षि दयानन्द सरस्वती



मेष-संक्रान्ति वैशाखी १३-४-८७

मानव-वेद-सृष्टि-संवत्- १९६०८५३०८८

श्री राम-नवमी ७-४-१९८७

सत्यार्थ शंका समाधान

श्री ठाकुरराम शास्त्री यमुनानगर द्वारा भेजे गये प्रश्न—

मुनिसमाज गोरखपुर के श्री शिवमुनि ने 'परमार्थप्रकाश' में लिखा है कि सत्यार्थप्रकाश का हवन हवन नहीं है। उनका यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि हु धातु के दान अर्थ से अग्नि में आहुति का बोध होता है। इस का दूसरा अर्थ आदान है। वह इन्हें लेकर सबमें सूक्ष्म करके बाँट देता है। हवन का अर्थ जलाना समझना मूर्खता है।

ओहाक् त्यागे से बना स्वाहा शब्द अच्छे अच्छे मन्त्रों के साथ आहुति का ही बोधक है; जलने का नहीं।

श्री शिवमुनि को घी की आहुति तो व्यर्थ लगती है, घी में पकी हुई पूड़ियाँ खाना अच्छा लगता है। महर्षि दयानन्द ने इसका उत्तर दिया है— परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्ष-द्विषः (शतपथ १४.६.११.२)

अर्थात् देव (विद्वान् साइन्टिस्ट) प्रत्यक्ष की अपेक्षा परोक्ष को अधिक चाहते हैं। पूड़ी आदि बनाना घी का प्रत्यक्ष उपयोग है और घी को अग्नि में आहुति देकर उसे छिन्नभिन्न कर परमाणु रूप में दूर तक पहुँचाकर लाभदायक बनाना परोक्ष रूप से उपकार है जो विज्ञान-सम्मत है,

वेद-मन्त्रों— घृतं तीव्रं जुहोतन, अस्मिन् हव्या जुहोतन, घृतेन वर्धयामसि आदि में घी तथा हव्यों की आहुति, और उनसे वृद्धि का लाभ, चर्ष्ट्य चाहमान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन अन्नाद्येन आदि में बताया गया है।

आचमन मन्त्रों में जल के लाभ और ईश्वर-स्तुति के साथ स्वाहा का अर्थ सुवचन है।

यूरोप आदि के मनुष्य पौष्टिक भोजन के कारण अधिक स्वस्थ और दीर्घायु हैं जिससे भारतीय वञ्चित हैं, किन्तु वहाँ वायु-प्रदूषण अधिक है। भारत में भी हवन अधिक हो तो अधिक लाभ हो।

हवन के अधिक प्रचलन होने पर गौ-रक्षा, गोवंश-वृद्धि, घी की उपलब्धि भी होने लगेगी और मंहगाई दूर होगी, अतः शासन और जनता का कर्तव्य है। कि डालडा आदि की फैक्ट्रियाँ बन्द कर गोरक्षा तथा घी की अधिक उपलब्धि का प्रयत्न करें।

२— यह भी आक्षेप है कि दयानन्द ने मङ्गलाचरण का निषेध कर स्वयं मङ्गलाचरण किया। इसका उत्तर यह होगा कि ऋषि ने पौराणिक ... का निषेध किया, ईश्वर-प्रार्थना का नहीं। ओ३म् सच्चि- ... ईश्वर के लिए नमन, और अन्त में तो ईश्वर के ... असत्य और विरोध नहीं।

वेद -कर्मकाण्ड विषय विचार

[आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ]

(द = महर्षि दयानन्द सरस्वती, क = हरिहरानन्द करपात्री)

१६— द द्वारा कर्मकाण्ड के वर्णन में कर्म के पहले भेद 'ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासनाज्ञापालन-धर्मानुष्ठान-ज्ञानेन' के प्रयोग पर क को आपत्ति है कि सब के साथ ज्ञान का सम्बन्ध नहीं हो सकता, द्वन्द्व मानने पर ज्ञानैः बहुवचन होना चाहिये।' (वेदा० पृ,५५८)

क की सभी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं यदि द के इस शब्द का अर्थ 'ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, और आज्ञापालन तथा धर्मानुष्ठान और उनके ज्ञान से मोक्ष होना माना जाय। सभी उपाय सम्मिलित रूप से मोक्ष के साधन हैं। इनमें 'ज्ञान' के भी आजाने से 'तमेव विदित्वा'० और 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः से कोई विरोध नहीं रहेगा।

१७— द द्वारा बताये कर्म के दूसरे भेद (धर्म से अर्थकाम सिद्ध करना) पर भी आपत्ति करते हैं कि इनमें धर्म कर्म से भिन्न है या अभिन्न? उत्तर यह है कि धर्म भिन्न होते हुए भी कर्म का साधक है अतः उसमें तृतीया है। धर्म धारणार्थक और कर्म करणार्थक है।

१८— क पूछते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति रूपी फल संयोग है या ज्ञान? उत्तर यह है कि परमात्मा का ज्ञान कर्म का फल है और मोक्ष का साधन है। इस प्रकार तमेव विदित्वा ० से कोई विरोध नहीं आता कामना से रहित होकर किया गया कर्म 'निष्काम' ही कहाता है।

१९— क ने 'अनन्तसुखेन योगात्' पर आपत्ति की है किन्तु मीमांसा के अनुसार अनन्त का अर्थ 'मोक्षावधि से पूर्व अन्त न होनेवाला होने से क की आपत्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है।

२०— द ने कहीं नहीं कहा कि होम केवल वायुवृष्टि जल का ही शोधक है क ने इसमें 'ही' जोड़कर अनुचित किया है।

कर्मकाण्ड यज्ञकरता को सुखदायक है—इस विषय में द ने ६ प्रमाण दिये है १-२ में मीमासा का 'परार्थत्वात्' आदि (४-३) ३ में जनतायै (ऐतरेय ब्राह्मण १-२) और ४ र्थ में शतपथ(३-५-१७) हैं जिसका समर्थन गीता से भी होता है। अपनी आपत्तियों को व्यर्थ

समझकर क झुंझलाकर बौखला उठते हैं और कहते हैं कि 'यह सब दयानन्द का मत चार्वाक का उच्छिष्ट ही है (पृष्ठ ५६०) इसमें 'सब' और ही सर्वथा असत्य और निराधार हैं, क्योंकि सत्य-धर्म-वेद पर आश्रित उस द का मत नास्तिक वेद विरोधी चार्वाकका जूठा कभी नहीं हो सकता, जिसने चार्वाक के मत का सर्वप्रमुख खण्डन किया, ईश्वर-वेद की सत्ता को प्रमाणों से पुष्ट कर सम्पूर्ण जीवन वेद-प्रचार में लगाया और अपनी स्थापित संस्था आर्यसमाज के दस नियमों में से प्रथम तीन में ईश्वर और वेद की अनिवार्यता प्रतिपादित की! 'नास्तिको वेद-निन्दकः' चार्वाक ने क्या कभी वेद को ईश्वरीय ज्ञान बताया था? उसने तो कहा था—

त्रयो वेदस्य कर्तारो धूर्तभाण्डनिशाचराः।

अर्थात वेद कर्ताके धूर्त भाँड़, और राक्षस हैं। द को ऐसे चार्वाक का उच्छिष्ट बताना सरासर अन्याय और घोर पाप है यह तो द्वेष की परा काष्ठा है। इस बात को कहनेवाला असत्यवादी घोर नरक में पड़ेगा--इसमें कुछ सन्देह नहीं।

पृष्ठ ५६१ पर मीमांसा के प्रमाण पर आपत्ति करते हुए क ने द के सम्बन्ध में ११ बातें कही हैं-बच्चों कीसी बात, नास्तिकता लानेवाला, शास्त्रों की अनभिज्ञता सूचक, सर्वथा असङ्गत, शब्द-न्याय बहिर्भूत कल्पित, बलात्कार, उच्छृंखलता, निर्मूल, अशुद्ध और निराधार। अपना सम्पूर्ण भंडार खोल दिया, कुछ शेष न रखा।

वह प्रश्न करता है कि इन चार प्रकार के यज्ञीय--पदार्थों को मनुष्य बनाकर उनका संस्कार कर सकता है? उसका यह प्रश्न भी उसके उपर्युक्त ११ विशेषणों वाली बात कही जायगी। द ने कभी नहीं कहा कि इन पदार्थों को स्वयं अपनी शक्ति से बनाये हाँ यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है कि मनुष्य पुरुषार्थ से इनको प्राप्त करके संस्कार (शोधन) किया करते हैं, तब उनकी आहुति पृथक्-पृथक या सम्मिश्रण करके देते हैं। केवल घी, दूध, जौ, चावल की आहुति देनेवाला इन पदार्थों की आहुति के वैज्ञानिक रहस्य को क्या समझ पाये? बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।

भोजन सुगन्धित करने के लिये किये जानेवाले सभी कार्य यज्ञीय पदार्थों के भी किये जावें-यह समझना मूर्खता और अद्वेषबुद्धि की पराकाष्ठा है। उपमा एक अंश में होती है।

२१— चम्मच के लिये 'चमस' का प्रयोग द ने जान-बूझ कर

किया है, अज्ञान से नहीं। यह सर्व साधारण के लिए सरल है

२२—प्रमाण संख्या ३भी कर्मकान्ड का साधक है। पौराणिक कहता है कि यदि स्वभावता दुर्गन्ध दूर की जा सकती है तो व्यर्थ में घी-दूध-अन्न-ओषधि के जलाने से क्या लाभ यह उसकी बात तो चार्वाकों की सी हुई क्या उसके माने गये यज्ञ में घी आदि की आहुति नहीं दी जाती? यदि हाँ, तब तो यह उसका अपना ही खण्डन हुआ। द ने 'एवम्' का अर्थ 'अमुना प्रकारेण' किया। उस पर भी क को आपत्ति है कुछ प्रकार तो बताही दिया गया, विस्तार से बताने का अवसर न था। क्या इसीलिए यह शुद्ध अर्थ भी अनर्थक हो गया?

२३— प्रमाण संख्या १ (मीमांसा ४.३) में 'अर्थवाद' के विषय में द ने बताया कि यज्ञ परोपकार के लिए ही है इसलिए फल का सुनना अर्थवाद है जो अनर्थ को दूर करने के लिए होता है क ने इस पर व्यर्थ ही आपत्ति की और प्रश्नों की झडी लगा दी। उनके उत्तर ये हैं। फलों की संख्या गिनने की आवश्यकता नहीं २-उनके सुनने से मनुष्य में सङ्कल्प आशा और उत्साह का संचार होता है ३, अनर्थनिवारण 'अर्थवाद, का अर्थ नहीं. प्रयोजन है। ४ द० ने कभी नहीं कहा कि अर्थवाद से अनर्थ दूर हो जायगा। उसके लिए तो सर्वत्र पुरुषार्थ करना ही आवश्यक बताया है। ५-अनर्थ अनेक प्रकार के बहुत से हो सकते हैं।

२४— प्रमाण सं २ पर क ने मूर्खतापूर्ण प्रश्न किया कि 'क्या पुरुषों का भी संस्कार दालवाले तरीके से ही होता है'? (वेदार्थ० पृष्ठ ५६४) इससे तो वे १६ संस्कारों के सम्बन्ध में अपनी अज्ञता ही प्रकट करते हैं। द्रव्यों के संस्कार के साथ मनुष्यो के 'संस्कार का तात्पर्य ध्वनि और व्यञ्जना से निकलता है। इस पर क ने लिखा है—?"यह सब बाल विडम्बना है जो मूर्खो को ही शोभा देती हैं, आश्चर्य हैं कि ऐसे व्यक्ति भी महर्षि कहे जाते हैं (वेद०पृष्ठ संख्या ५६४)

यह तो असभ्यता और द्वेषबुद्धि की पराकाष्ठा हुई। हमें तो आश्चर्य है कि एक पौराणिक संन्यासी क दूसरे वेदज्ञ सन्यासी द के प्रति ऐसे शब्द लिख रहा है और अपने को स्वामी कहलाता;

क ने लिखा है कि 'यज्ञ परार्थ नहीं है' यह आपत्ति तो पूर्व मीमांसा के कर्ता जैमिनि के प्रति हुई जिसे क ने श्रुति माना है क्या.क

परार्थ शब्द मूल सूत्र में ही है। क को धिक्कार है कि वे ऋत्विजों को दक्षिणा देकर खरीदा हुआ बता रहे हैं और उनके द्वारा कराये गये यज्ञों का फल यजमान के लिए ही मान रहे हैं। दक्षिणा कोई मूल्य या पारिश्रमिक नहीं है। वह तो अपनी श्रद्धा-शक्ति के अनुसार बिना निश्चित किये स्वेच्छा पूर्वक दी जाती है। उस यज्ञ का फल यजमान के अतिरिक्त ऋत्विजों को तथा यज्ञ में सम्मिलित अन्यजनों को भी मिलता है। यदि परार्थ नहीं वो 'इदं न मम' क्यों कहा जाता है ?

२५ — द के 'सुगन्ध' शब्द पर भी क ने आपत्ति की है। किन्तु विदित हो कि विशिष्ट आर्ष प्रयोग पाणिनि पूर्ववर्ती तथा शुद्ध है। ऋषि स्वतन्त्र होते हैं, किसी के गुलाम नहीं।

२६— क ने द के किये मीमांसा सूत्र के अर्थ को सर्वथा अशुद्ध बताया है। ध्यान से देखने पर विदित होगा कि द का किया सूत्रार्थ शाबरभाष्य और पूर्वोत्तर सूत्रों के विरुद्ध नहीं है। क का कथन अयथार्थ और निस्सार है अर्थ की शुद्धता स्पष्ट है और यज्ञ परोपकारार्थ होता है — इस विषय में उपर्युक्त प्रमाण उपयोगी है क ने इन बातों को 'भूमिकाभास' से लिया है जिसका उत्तर उसी समय दे दिया गया था।

२७— द ने यज्ञ की पुष्टि में तीसरा प्रमाण ऐतरेय ब्राह्मण १.२.१ का दिया और इसका शुद्ध अर्थ किया—

यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति।

अर्थात् यज्ञ भी जनता के सुख के लिए होता है, जिसमें होता ऐसा विद्वान होता है।

क कहते हैं कि यहाँ 'जनता' का अर्थ याज्ञिक जनता है, साधारण जनसमूह नहीं। यह अर्थ सङ्कुचित है और द का अर्थ व्यापक है। साधारण जनता भी यज्ञ के चारों ओर रहती है। उसका भी यज्ञ से उपकार होता है— केवल याज्ञिक का ही नहीं। अत, द का अर्थ सर्वथा शुद्ध है। 'तस्यै' से भी द के अर्थ की पुष्टि होती है।

२८— द द्वारा प्रस्तुत चौथे प्रमाण (शतपथ ५.३.५.१७) पर भी क ने आपत्ति की है। किन्तु ध्यान से देखा जाय तो यहाँ पर अग्नि का अर्थ यज्ञाग्नि लेने पर स्पष्ट हो जायगा कि उससे धुआँ (वाष्प) बादल, वृष्टि अन्न आदि जगत के सुख के लिए होते हैं।

निरुक्त अध्याय चौदह

खण्ड १५, मन्त्र ४—

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥

ऋ० ९.९७.३५

वे ही गोएं (दूध देनेवाली रश्मियाँ) सोम को चाहते हुए आदित्य को जाती हैं। इस ही प्रकार से विप्रा रश्मियाँ मतियों से कामना करते हुए आदित्य को जाती हैं। इसी प्रकार निचोड़ा हुआ सोम सेवन किया गया प्राप्त होता है। इसको ही मन्त्र, त्रिष्टुप् सन्नमन करते हैं। यह अधिदैवत पक्ष है।

अध्यात्म अर्थ—इसी तरह सोम की कामना करती हुई इन्द्रियां आत्मा तक जाती हैं। इसी प्रकार विप्र इन्द्रियां मतियों से कामना करती हुई आत्मा तक पहुंचती हैं। इसी प्रकार निचोड़ा और सेवन किया गया सोम इस जीवात्मा तक पहुंचाता है। आत्मा और सात ऋषि झुकते हैं (आत्मा में एक रूप होते हैं) यह मन्त्र आत्म-गति बताता है।

खण्ड १६, मन्त्र २—

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥

ऋ० ९।९७।४०

परम द्यौ में वर्षा के कर्म से प्रजा को उत्पन्न करते हुए सब भुवनों का राजा आदित्य गति करता है। वर्षा करने वाला पवित्र चोटी के ऊपर सोम ऐश्वर्यवाला प्रेरणा करता हुआ बढ़ता है। यह अधिदैवत अर्थ है।

अब अध्यात्म— सुखवर्षक महान परमात्मा आत्मा में ज्ञान कर्म से प्रजा को उत्पन्न करते हुए सबका राजा ईश्वर व्यापक है। यह मंत्र आत्म-गति को बताता है।

खण्ड १७, मन्त्र ६—

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद् गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥

ऋ० ९।९७।४१

अधिदैवत अर्थ—महान सोम महान् कार्यों को करता है।

(नीहारिका में गर्भ रूप से प्राकृतिक शक्तियों को धारण किया है। इन्द्र में अग्नि वाला बल और सूर्य में ज्योति को (इन्द्रः) (आदित्य और परमात्मा) ने उत्पन्न किया।

खण्ड १८, मन्त्र ७

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाऽद्या ममार स ह्यः समान॥

ऋ० १०।५५।५॥

अधिदेवत अर्थ—विशेष गतिवाले दमन शील पूर्ण चन्द्रमा को आदित्य अमावस्या में छिपा लेता है। जो सायं अस्त होता है दूसरे दिन वही उदय होता है।

अध्यात्म अर्थ—विशेष गतिवाले, दमन शील जीवात्मा को परमात्मा आज फिर उत्पन्न करता है जिसे कल मारा था।

खण्ड १९, मन्त्र८—

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः॥

ऋ० १।१६४।१५॥

अधिदेवत अर्थ—साथ उत्पन्न हुए ऋषियों (ऋतुओं) के साथ सातवां आदित्य है। उनके इष्ट चाहे हुए, उल्लंघित माने हुए झुके हुए; गये हुए,) कर्म आप; के साथ आनन्द मनाते हैं। जहाँ ये सात ऋषि रूपी—गतिशील ज्योतियाँ हैं, उससे परे आदित्य हैं वे सब इसमे एक रूप होती हैं।

अध्यात्म अर्थ—साथ उत्पन्न हुई छः इन्द्रियों के साथ सातवाँ जीवात्मा है। उनके इष्ट कर्म अन्नके साथ आनन्द मनाते हैं। जहाँ से सात ऋषि—गतिशील और ज्ञान कराने वाली इन्द्रियाँ हैं। इनस परे आत्मा है वे इसमें एक हो जाती है।

खण्ड२०, मन्त्र९

स्त्रियः सतीस्तां उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः॥
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत्॥

ऋ० १।१६४।१६॥

स्त्रीलिंग में होते हुए उनके समूह को पुलिङ्ग शब्द से कहते हैं। १—किरणों के समूह को आदित्य कहते हैं।२—इन्द्रियाँ शब्द, स्पर्श, गन्ध को धारण करने वाली हैं,। इनका स्वामी प्राण और जीवात्मा है आँखों का (विद्वान्) देवता जानता है और अन्धा (अज्ञानी

नहीं जानता। जो पुत्र भी हो किन्तु ज्ञाता हो वही जानता है वह पिता का भी पिता हो जाता है।

खण्ड २१, मन्त्र १० —

सप्तार्द्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परि भुवः परि भवन्ति विश्वतः॥
ऋ० १। १६४।३६॥

अधिदैवत अर्थ—इन सात प्रकार की किरणों को आदित्य अपने अन्दर धारण करता है। अर्ध का अर्थ मध्य स्थान है। जो जल इसमें ठहरता है, वह तथा अन्य व्यक्ति कर्मों तथा मन से विपर्यय को प्राप्त होते हैं, जल चारों ओर वर्षा से सबसे ऊपर होता है।

अध्यात्म अर्थ—इन सात इन्द्रियों को जीवात्मा धारण करता है। सब इन्द्रियाँ कर्मों और ज्ञान से सर्वोपरि होती हैं। यह मन्त्र आत्मगति को बताता है।

खण्ड २२, मन्त्र ११—

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।
ऋ० १, १६४।३७॥

अधिदैवत—मैं विशेष नहीं जनता कि यह आदित्य और आत्मा क्या है। मनोरूप अन्तः करण से बँधा हुआ है। उसी में छिपा हुआ विचारता हूं।

खण्ड २३, मन्त्र १२—

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥
ऋ० १, १६४।३८॥

अधिदैवत—आदित्य ऊपर-नीचे जाता प्रतीत होता है। स्वय-धारक शक्ति से वह चन्द्रमा के साथ गति करता हुआ उसे नियंत्रण मे रखता है। वह अपने को देखता है, चन्द्रमा को नहीं।

अध्यात्म—यह जीवात्मा अन्न-जल से बने हुए शरीर से बद्ध होकर ऊँची-नीची योनियों में जाता है। वह अमर होकर मरणधर्मा शरीर के साथ संयुक्त होता है। वे दोनों सदा सर्वत्र गतिशील है वह जीवात्मा अपने को अनुभव करता है, मन को नहीं।

खंड २४, मन्त्र १३—

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः॥
ऋ० १०, १२०।१॥

अधिदैवत—वह आदित्य भूतों में बड़ा होता है। इसी से प्रचण्ड दीप्ति उत्पन्न होती है। उससे बल पाकर वह प्रदूषण आदि शत्रुओं को नष्ट करता है। पश्चात् इससे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। रिणाति का अर्थ प्रीति तथा दीप्ति है।

अध्यात्म—वह अव्यक्त परमात्मा सबसे बड़ा है, उससे यह बलशाली ज्ञान उत्पन्न होता है। वह सब दुष्टों को नष्ट करता है। सब प्राणी उसके पीछे चलते हैं।

खण्ड २५ मन्त्र १४—

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात्॥

ऋ० १।८४।१६॥

अधिदैवत— कौन सदा ऋतुके धुरेमे किरणों को जोड़ता है? वह आदित्य है। उसकी किरणे जल देने वाली तथा कठिनता से सही जानेवाली, मुख में और हृदय में बाणों को रखनेवाली, सुख देनेवाली हैं। जो इनको धारण करना जानता है वह जीवित रहता है।

अध्यात्म — कौन इन्द्रियों को शरीर मे जोड़ता है? वह आत्मा है जो कर्मशील, दुराधर्ष इन्द्रियों को गति देता है। ये इन्द्रियां मुख में और अपने अन्दर शक्ति रखतीहुई सुखदायक हैं। जो इनको भरण करना जानता है वह चिरकाल तक जीता है।

खण्ड२६, मन्त्र१५—

क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे को जनाय॥

ऋ० १।८४।१७।

कौन ही जाता है, कौन देता है, कौन डरता है, कौन होते हुए इन्द्र-(सूर्य तथा आत्मा)को पास में जान कर मानता है? कौन अपत्य, के लिए.महान के लिए, दर्शनीय शरीर के लिए बतला सकता है?

खण्ड २७. मन्त्र १६—

को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः।
कस्मै देवा आवहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः॥

ऋ० १।८४।१८।

अधिदैवत- कौन आदित्य और आत्माको हविसे और घृत से पूर्ण करता अथवा पूजता है? स्रुक से नियत ऋतुओं में किसके लिए कौन यज्ञ करे? सारे देव शीघ्र होम के पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। कौन कान्तिहोत्र कल्याणदेव उसे जानता है?

ये ७ धातुएँ अभ्यस्त संज्ञक हों- जक्षति जाग्रति दरिद्रति चकासति शासति दीध्यते वेव्यते ।

७ तुजादीनां दीर्घो ऽभ्यासस्य ॥

तुज आदियों के अभ्यास को दीर्घ हो— तूतुजानः मामहानः स दाधार पृथिवीम् ।

८ लिटि धातोरनभ्यासस्य ॥

लिट् में अनभ्यास धातु के एकाच को द्वित्व हो- पपाठ पोपुनाव। वार्तिक— वेद में विकल्प से हो- यो जागार तमृचः कामयन्ते ।

९ सन्यङोः ॥

सन्नन्त और यङन्त धातु के एकाच को द्वित्व हो—पिपठिषति उन्दिदिषति पापठ्यते अटाट्यते ।

१० श्लौ ॥

श्लु परे हो तो धातु को द्वित्व हो— जुहोति बिभेति ।

११ चङि ॥

चङ् परे हो तो द्वित्व हो— अपीपठन् आचिशत् ।

१२ दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च ॥

ये ३ निपातित हैं। वा०— कृञादि से क परे हो तो द्वित्व हो— चक्रः विक्रमः। चरि चलि पति वदि आदि को द्वित्व हो— चराचर चलाचल पतापत वदावद घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् पाटूपटः ।

१२ [illegible] ॥

तत्पुरुष में पुत्र और पति परे रहते ष्यङ् को संप्रसारण हो- कौमुदगन्धीपुत्रः कौमुदगन्धीपतिः ।

१४. बन्धुनि बहुव्रीहौ ॥

बहुव्रीहि में बन्धु परे रहते भी वही हो— कारीषगन्धीबन्धुः ।

१५ वचि स्वपि यजादीनां किति ॥

इनसे कित् प्रत्यय परे रहते सम्प्रसारण हो— उक्तः उक्तवान् सुप्तः सुप्तवान् इष्टः इष्टवान् हुतः हुतवान् ।

१६ ग्रहि ज्या वयि व्यधि वष्टि विचति वृश्चति पृच्छति भृज्जतीनां ङिति च ।

इन ६ का कित्-ङित् परे रहते सम्प्रसारण हो– गृहीतः गृह्णाति जीनः जिनाति ऊयतुः विद्धः विध्यति उशितः उशन्ति विचितः विचति वृक्णः वृश्चति पृष्टः पृच्छति भृष्टः भृज्जति ।

१७ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ॥

लिट् में कित्-ङित् दोनों के अभ्यास को सम्प्रसारण हो— उवाच उवचिथ सुष्वाप सुष्वपिथ इयाज इयजिथ उवाप उवपिथ जग्राह जग्रहिथ इत्यादि ।

१८. स्वापेश्चङि ।

चङ् परे रहते ण्यन्त स्वप को सम्प्रसारण हो— असूषुपत् ।

१९ स्वपि स्यमि वेञां यङि ॥

इनका यङ् परे रहते सम्प्रसारण हो– सोषुप्यते सेसिम्यते वेवीयते ।

२० न वशः ।

किन्तु वश को न हो– वावश्यते ।

२१.चायः की ।

चय् को की आदेश हो– चेकीयते ।

२२ स्फायः स्फी निष्ठायाम् ।

निष्ठा परे रहते स्फायी को स्फी हो– स्फीतः स्फीतवान् ।

२३. स्त्यः प्रपूर्वस्य ।

प्र पूर्वक स्त्या को सम्प्रसारण हो– प्रस्तीतः प्रस्तीतवान् (८.२.५४से म होने पर) प्रस्तीमः प्रस्तीमवान् ।

२४ द्रवमूर्ति-स्पर्शयोः श्यः ।

द्रव की कठिनता और स्पर्श अर्थो में श्यैङ् को सम्प्रसारण हो – शीनम् शीतः ।

२५ प्रतेश्च ॥

और प्रति पूर्वक श्यै को सम्प्रसारण हो— प्रतिशीनः ।

२६ विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य ॥

अभि, अव पूर्वक श्यै का सम्प्रसारण विकल्प से हो—अभिश्यानम घृतमभिशीनं वा, अवश्यानः अवशीनः वृश्चिकः

२७.शृतं पाके ॥

पाक में श्रा को शृ होता है— शृतं क्षीरम् श्राणा यवागूः ।

२८. प्यायः पी ।

प्यायी को पी विकल्प से हो— पीनम् मुखम् प्यानः स्वेदः ।

२९. लिड्यङोश्च ॥

लिट् और यङ् परे रहते प्यायी को पी हो॰ पिप्ये पेपीयते ।

३०. विभाषा श्वेः ।

श्वि को विकल्प से सम्प्रसारण हो— शुशाव शुश्वाय शोशूयते शेश्वीयते ।

३१ णौ च संश्चङोः ॥

सन्–चङ् परक णि परे रहते सम्प्रसारण विकल्प से हो— शुशावयिषति शिश्वाययिषति अशूशवत् अशिश्वयत् ।

३२ ह्वः सम्प्रसारणम् ॥

ह्वेञ् को सम्प्रसारण हो— जुहावयिषति अजूहवत् ।

३३ अभ्यस्तस्य च ॥

और अभ्यस्त ह्वेञ् को सम्प्रसारण हो- जुहाव जोहूयते हुहूषति ।

३४. बहुलं छन्दसि ॥

वेद में बहुल करके ह्व को सम्प्रसारण हो— इन्द्राग्नी हुवे ह्वयामि मरुतः शिवान् ।

३५ चायः की ॥

वेद में बहुल करके चाय् को की हो—नान्यं चिक्युर्न निचिक्यु- रन्यम् अग्निर्ज्योतिर्निचाय्यः

३६ अपस्पृधेथाम् आनृचुः आनृहुः चिच्युषे तित्याज श्राताः श्रितम् आशीः आशीर्त्ताः।

ये ९ वेद में निपातित हैं।

३७ न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् ।

स० परे हो तो पूर्व यण का स० न हो- व्यध विद्ध, व्येञ्–संवीतः ।

३८. लिटि वयो यः ॥

लिट् में वय के य को सम्प्र० न हो- ऊयतुः ऊयुः ।

३९ वश्चास्यान्यतरस्यां किति ॥

लिट् में कित् परे हो तो वय के य को विकल्प से व हो- ऊवु'

४० वेञः ।

वेञ को स० न हो- ववौ ।

४१ ल्यपि च ।

ल्यप् परे हो तो भी स० न हो- प्रवाय उपवाय ।

४२ ज्यश्च ।

ज्या को भी स० न हो- प्रज्याय उपज्याय ॥

४३ ल्यपि च ॥

ल्यप् परे हो तो व्येञ् का स० न हो— प्रव्याय उपव्याय ।

४४ विभाषा परेः ।

परि पूर्वक से विकल्प से स० हो- परवीय परिव्याय ।

४५ आदेच उपदेशे ऽशिति ॥

उपदेश में शित् भिन्न प्रत्यय परे हो तो एजन्त धातु को आ हो- धेट्- दधौ ग्लै- ग्लाता शो- निशातुम् ।

४६ न व्यो लिटि ॥

लिट् में व्येञ् को आ न हो— विव्याय ।

४७ स्फुरति स्फुलत्योर्घञि ।

घञ् परे हो तो इनके एच् का आ हो— स्फारः स्फालः ।

४८ क्रीङ्जीनां णौ ।

णि परे रहते क्री, इ जि के एच् को आ हो-क्रापयति अध्यापयति जापयति ।

४९ सिध्यतेरपारलौकिके ।

इस लोक की सिद्धि में सिधु के एच् को आ हो- अन्नं साधयति ।

५० मीनाति मिनोति दीङां ल्यपि च ॥

इनके ल्यप् और अशित् परे हो तो एच् को आ हो- प्रमाय प्रमातुम् निमाय निमाता उपदाय उपदातव्यम् ।

५१ विभाषा लीयतेः ।

ली को विकल्प से आ हो- लाता लेता लापयते लेपयते विलाय विलीय ।

५२. खिदेश्छन्दसि ।

वेदमें खिद् के एच् को आ हो- चिखाद चिखेद ।

५३. अपगुरो णमुलि ।

णमुल परे हो तो अप पूर्वक गुरी के एच् को आ विकल्प से हो- अस्यपगारं युध्यन्ते अस्यापगोरं वा ।

५४ चिस्फुरोर्णौ ।

चि और स्फुर को णि परे हो तो आ हो- चापयति चाययति स्फारयति स्फोरयति ।

५५ प्रजने वीयतेः ।

प्रजन में वी के एच् को आ हो- वापयति वाययति वा गाः पुरोवातः ।

धिष्ण्य (कुण्ड) यजमान के विजामान होते हैं। क्योंकि यह समक्ष होते हैं। जो समक्ष हों उनको विजामान कहते हैं। (समक्ष या विजामान वे वस्तुयें होती हैं जिनके अङ्ग एक दूसरे के अनुकूल होते हैं जैसे यदि मनुष्य के सिर और आँखें है तो धिष्ण्य का भी सिर और आँख है। यदि मनुष्य के आँखें है तो धिष्ण्य की भी आँखें हैं। अर्थात् एक-एक अङ्ग के स्थान में दूसरा अङ्ग होता है)। ये अङ्ग उसके धड़ के हैं।१

सोम द्योलोक में था और देव इस लोक में। उन्होंने कामना की कि सोम हमारे पास आ जावे और उस आये हुए सोम के साथ हम यज्ञ करें। उन्होंने दो माया बनाई–सुपर्णी और कद्रू। सुपर्णी वाणी थी और कद्रू यह भूमि। उन्होंने उनके बीच में झगड़ा करा दिया।२

तब वह झगड़ने लगीं–'जो इसमें से सबसे दूर की चीज देख लेगी वही दूसरी पर विजय पायेगी। कद्रू ने कहा, 'अच्छा, देख'।३

सुपर्णी ने कहा, 'इस सलिल के उस पार एक श्वेत घोड़ा एक खम्भे के पास खड़ा है। मैं उसे देख रही हूं। क्या तू भी उसको देखती है'? कद्रू ने कहा, 'मैं देखती हूं। उसकी पूंछ अभी लटक रही थी। मैं देखती हूं कि वायु इस समय उसको हिला रही है'।४

अब जब सुपर्णी ने कहा, 'उस सलिल के उस पार', तो सलिल का अर्थ था वेदि। उससे उसका तात्पर्य वेदि से था। 'खम्भे के पास एक सफेद घोड़ा खड़ा है'। श्वेत घोड़े से तात्पर्य यज्ञ का है और खम्भे से यज्ञ-यूप का। कद्रू ने जो कहा था कि 'इसकी पूंछ अभी लटक रही थी, अब उसे वायु हिला रही है। मैं उसे देख रही हूं' यह केवल रस्सी थी।५

तब सुपर्णी ने कहा–'चलो वहाँ तक उड़ चलें और देखें कि हममें से किसकी जीत हुई, कद्रू ने कहा—'तुम्ही जाओ और बता देना हममें से किसकी विजय हुई'।६

सुपर्णी वहाँ तक उड़ी और कद्रू ने जो कहा था वही ठीक निकला। जब वह वापिस आई तो कद्रू ने उससे पूछा– 'तुम जीती या मैं? उसने कहा 'तुम'। इसको 'सौपर्णी-काद्रव' आख्यान कहते हैं।७

तब कद्रू ने कहा, 'सचमुच मैंने तुमको जीत लिया। द्योलोक में सोम है, उसको देवों के लिये ले आओ और देवों के ऋण से मुक्त

हो। तथास्तु। वह छन्दों को लाई। वह गायत्री द्योलोकसे सोम को ले आई। ८

वह (सोम) दो सोने के प्यालों के बीच में था। आँख झपकते क्षण-क्षण में वे प्याले तेज किनारों द्वारा बन्द हो जाते थे। यह थे दीक्षा और तप. उन पर सोमरक्षक गन्धर्व देखभाल रखते थे। यही धिष्ण्य हैं, यही होता। ९

उसने इसमें से एक प्याले को खोला और देवों को दे दिया। यह दीक्षा थी। इसी से देवों ने अपने को दीक्षित किया। १०

अब उसने दूसरे प्याले को खोला और देवों को दिया। यही 'तप' था। इसमे देवों ने तप किया अर्थात् उपसद क्योंकि उपसद ही तप है। ११

उसने खदिर की लकड़ी से सोम को लिया (आचखाद), इसलिये उनका खदिर नाम पड़ा। और चूंकि उसी के द्वारा उसने सोम को लिया इसलिये यूप और स्फ्य-खदिर की लकड़ी के होते हैं। जब वह अच्छावाक के अधीन था तब वह उसे ले गई। इसीलिये अच्छावाक को सोमपान का अधिकार नहीं। १२

इन्द्र और अग्नि ने प्रजाओं की उत्पत्ति के लिये उसको स्थित रक्खा इसलिये अच्छावाक इन्द्र और अग्नि का होता है। १३

इसीलिये दीक्षित पुरुष ही सोमराजा की रक्षा करते हैं कि गन्धर्व कहीं इसको ले न जायें, इस लिये उचित है कि उसकी भलीभांति रक्षा की जाय। क्योंकि जिस किसी की अधीनता में से वे सोम को ले जायेंगे वही (सोमपान से) बहिष्कृत कर दिया जायगा। १४

इसीलिये ब्रह्मचारी लोग अपने आचार्य. उसके घर तथा पशुओं की रक्षा करते हैं कि कहीं वे उसे ले न जायँ। इसीलिये उस सोम की बड़ी रक्षा करनी चाहिये क्योंकि जिस किसी की देखरेख में से वह ले जायेंगे उसी को (सोमपान से) बहिष्कृत कर दिया जायगा। इसी के द्वारा सुपर्णी ने देवों के ऋण से छुटकारा पाया अतः कहते हैं कि यज्ञ करने वाले पुण्यलोक को प्राप्त होते हैं। १५

पुरुष जब पैदा होता है तभी मृत्यु का ऋणी होता है। और जब वह यज्ञ करता है तो मृत्यु के ऋण से छूटता है। जैसे सुपर्णी देवताओं के ऋण से छूट गई। १६

देवों ने सोम से यज्ञ किया। सोमरक्षक गन्धर्वों ने उसका अनुसरण किया और आकर कहने लगे, 'हमको यज्ञ में भाग दो। हमको

यज्ञ में भाग दो। हमको यज्ञ से बाहर मत करो। यज्ञ में हमारा भी भाग होना चाहिये'। १७

उन्होंने कहा–हमको इसमें क्या लाभ होगा? गन्धर्वों ने उत्तर दिया कि जैसे उस लोक में हम इसके रक्षक रहे उसी तरह इस भूमि पर भी रक्षक रहेंगे। १८

देवों ने कहा —अच्छा। वे कहते हैं यह है सोम की मजदूरी। तं इससे सोम के मोल से तात्पर्य है। फिर उन्होंने कहा–तीसरे सवन मे जो भी घी की आहुति दी जायगी वह तुम्हारी होगी। सोम का पान तुमसे छीन लिया गया हैं। अतः तुम सोम की आहुति के अधिकारी नहीं रहे। इसलिये सायंकाल के तीसरे सवन में कुण्ड में लकड़ियों पर जो घी की आहुति दी जाती है वही इनकी होती है, सोम की आहुति नही १६।

और जो आहुति दी जायगी वह तुमको तृप्त कर देगी। इसलिये जो घी की आहुति दी जाती है वह उनको तृप्त कर देती है। और जो सोम को चमचो मे लिये ऊपर-ऊपर फिरायेगे उनसे तुम्हारी तृप्ति होगी। इसलिये जो सोम को चमचे में भरकर ऊपर-ऊपर फिराते हैं उनसे इनकी तृप्ति होती है। इसलिये अध्वर्यु को चाहिये कि कुण्डों के बीच से न गुजरे क्योंकि यह सोम के लिये होता है। वे(कुण्ड) सोम के लिये मुंह खोले बैठे होते है वह इनके मुंह मे घुस जायगा। इसलिये या तो इसको अग्नि जला देगा या जो देव पशुओं का अधिष्ठाता है वह रुद्र उसको पकड़ लेगा। इसलिये जब कभी अध्वर्यु का यज्ञशाला मे कुछ काम हो तो वह आग्नीध्रीय अग्नि के उत्तर की ओर होकर जावे।२०

ये कुण्ड सोमकी रक्षा के लिये बनाये जाते हैं। आगे आहवानीय, दाईं ओर मार्जालीय, बाईं ओर आग्नीध्रीय और पीछे की ओर सदस्। २१

इनमें से आधे को मिट्टी डालकर ऊँचा करते है और आधे की ओर केवल संकेत करते हैं; उन्हीं का यह आग्रह था कि हम मे से आधों को ऊँचा करो, आधों की ओर संकेत करो। इस प्रकार हम उस द्यौलोकको जान लेंगे जहांसे हम आये हैं। २२

जो ऊंचे किये गये वे इस लोक में प्रत्यक्ष होते हैं, और जिनकी ओर संकेत करते हैं वे उस लोक में प्रत्यक्ष होते हैं। २३

उनके दो नाम होते हैं। वस्तुत: यह उन्हीं का आग्रह था कि हम इन नामों से फलीभूत नहीं हुए क्योंकि हमसे सोम ले लिया गया। अब हम दूसरे नाम रख लें। उन्होंने दूसरा नाम रख लिया। इससे वह सफल हो गये क्योंकि जो सोम से वंचित हो चुके थे उनको यज्ञ में भाग मिल गया। इसलिये दो नाम होते हैं। यदि कोई ब्राह्मण सफल न होता तो दूसरा नाम रख ले। जो इस रहस्य को समझकर दूसरा नाम रख लेता हैं वह फलीभूत हो जाता है। २४

वह देवों के लिये आहुतियाँ देता है, इसी से देव स्थित रहते हैं। जो सदस् में खाते हैं मनुष्यों के प्रति देते है, उससे मनुष्यों की स्थिति है हविर्धानों में जो नाराशंस बैठते हैं, वे पितरों के प्रति होते हैं, उनसे पितरों की स्थिति है। २५

अब जो ऐसी प्रजा बच रही जिसका यज्ञ में कोई भाग ही नहीं है वह तो कहीं की नहीं रही। इसलिये वह इनको यहाँ यज्ञ में भाग देता है। जिससे यह फलीभूत हो जायें। पशु मनुष्यों के पीछे हैं, चिड़ियाँ, ओषधियाँ वनस्पतियाँ देवों के पीछे हैं। इस प्रकार यहाँ जो कुछ है, सभी को यज्ञ में भाग मिलता है। देव और मनुष्य दोनों पितरों के साथ सोम पीते है। पहले यह प्रत्यक्ष रूप से पीते थे अब परोक्ष रूप से पीते हैं। २६

अध्याय ६—ब्राह्मण ३

जो दीक्षा लेता है वह सबको दीक्षित करता है। क्योंकि वह यज्ञ को दीक्षित करता है। यह यज्ञ ही सब कुछ है। जिस यज्ञ के लिये उसने दीक्षा ली थी उसको समाप्त करके मानो वह सबको मुक्त कर देता है। १

वैसर्जिन आहुति इसलिये दी जाती है कि वह इस सबका विसर्जन करता है जिस किसी ने व्रत लिया हो वह पीछे से यजमान को छुये। यदि कहीं जाना हो तो न सही। जब वह आहुति देता है तो सबका विसर्जन करता है। २

वैसर्जिन आहुतियाँ क्यों दी जाती है! यज्ञ विष्णु है। उस विष्णु ने देवों के लिये इस विक्रान्ति को प्राप्त किया, जो इस समय उनको प्राप्त है। पहले पद से इस भूलोक को, दूसरे से अन्तरिक्ष को अन्तिम से द्यौलोक को इसी विक्रान्ति को यज्ञ यजमान को प्राप्त कराता है अत: वैसर्जन आहुतियाँ दी जाती हैं। ३

ईसाई-कपट जाल से सावधान

ईसाइयों द्वारा प्रकाशित मोक्षद्वार शीर्षक नोटिस देखा। इसमें हिन्दू धर्मग्रन्थों में ईसा का वर्णन बताकर भ्रम उत्पन्न किया गया है।

ऋग्वेद आदि चारों वेदों में ईश्वर के अवतार का कहीं कोई वर्णन नहीं है, फिर ईसा के अवतार का वर्णन बताना आँखों में धूल झोंकना है।

उपनिषदों में क्राइस्ट के निष्कलङ्क अवतार का उल्लेख बताना सरासर झूठ है। बृहदारण्यक में वाग्वै ब्रह्म से ईश्वर की वेदवाणी का सङ्केत है न कि क्राइस्ट का ब्रह्मबिन्दु उपनिषद् के शब्दाक्षरं परं ब्रह्म का तात्पर्य वेदों से है न कि क्राइस्ट से।

ऋग्वेद १०.१२५ में क्राइस्ट का सङ्केत भी नहीं है, उसमें ईश्वर तथा राष्ट्र सम्बन्धी वर्णन है, उसको क्राइस्ट का वर्णन बताना अक्षम्य अपराध है। भविष्य पुराण में ईसा का कोई वर्णन नहीं, नोटिस में छपा श्लोक मनगढ़न्त तथा छलपूर्ण अत: अमान्य है।

कुमारी के गर्भ से जन्म लेना ईश्वर तथा सृष्टि नियम के विरुद्ध है, अत: क्राइस्ट कोई अवैध सन्तान थे। उसकी प्रशंसा वेद में नहीं हो सकती क्योंकि वेद तो ईसा से करोड़ों वर्ष पहले का ईश्वरीय ज्ञान है।

क्राइस्ट मुक्तिदाता थे यह किसी धर्म-ग्रन्थ—मुस्लिम यहूदी मत को भी मान्य नहीं। मनुष्य की बनाई होने से बाइबिल परमात्मा का शास्त्र नहीं हो सकती क्योंकि इसमें असत्य और गपड़े भरे पड़े हैं।

क्राइस्ट जग-निर्माता तथा पाप-मोचक तो हो ही नहीं सकता।

❀ ईसाइयों से कुछ प्रश्न ❀

१— मरकुस इंजील के पर्व १६, आयत १७-१८ में लिखा है कि ईसा ने कहा कि विषैले साँपों को उठा लेंगे तो हानि न होगी, बीमार पर हाथ रख देने से अच्छा हो जायगा। क्या कोई ईसाई जहरीला साँप पकड़कर और रोगी को हाथ के स्पर्श से अच्छा करके दिखा सकता है?

२— ईसा गधी चुराने वाले थे यहुन्ना पर्व २१ आ० १-७ में तथा लूका-यूहन्ना-मार्कुस चारों इंजीलों में लिखा है। क्या ऐसे ईसा को महापुरुष माना जा सकता है?

जनता ऐसे ईसा और उसके अनुयायियों से सावधान रहे॥

—वेदप्रिय (रामदुलारे) शर्मा ललिताप्रसाद आर्योपदेशक, आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० लखनऊ

डा० कमला देवी,

आपका वर्ष पूर्ण होगया है, कृपया वार्षिक शुल्क २०) शीघ्र भेजें।

८. उपकारं प्रत्यपकारः

[स्व० श्री मधुसेन, बदायूँ]

एकदा मृगया-श्वानैः काननान्तामनुद्रुता ।
वने वृक्षस्य पत्रेषु प्रच्छन्ना ऽभूदसौ तदा ॥ १

पलाशाच्छादनेन श्वभ्यः साऽन्तर्हिताऽभवत् ।
परं बुभुक्षया छागी तानि पत्राण्यभक्षयत् ॥ २

ततस्तेषामभावेन नष्टमावरणं हि तत् ।
लक्षिता ऽसौ श्वभिः क्रूरैर्भक्षिता चाऽप्यरक्षिता ॥ ३

उपकारिषु यः कश्चिदपकारं करिष्यति ।
एवं हि दुर्दशा तस्य भविष्यति न संशयः ॥४

प्रेषक- आदर्शप्रेस सी-८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०९

ओ३म्

छपिवाप

वर्ष -ज्योति अंक
११ ५

वर्ष ११, अङ्क ५, माघव(वैशाख) २०४४वि०, मई १९८७ ई०
वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०८७, दयानन्दाब्द १६४, वार्षिक शुल्क २०)
सम्पादक- वीरेन्द्रमुनि, सहा. विमलाशास्त्री, सी८१७ महानगर, लखनऊ

❀ इस अङ्क में पठनीय— ❀



श्री आदित्यपाल सिंह आर्य
इञ्जीनियर भोपाल (म०प्र०)

मेरे इन शिष्य ने महर्षि दयानन्द सरस्वती की अज्ञात जीवनी का शुद्ध संस्करण सम्पादित किया, तदर्थ बधाई।

आप ने अथर्व ५.२८.१ के सातवलेकर-भाष्य आदि के आधार से सिद्ध बताया कि मूलशङ्कर को सुवर्ण-यज्ञोपवीत पहनाया गया था।

सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या

ऋषि मङ्कुसक यामायन देवता पितृमेध. छन्द त्रिष्टुप स्वर धैवत

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।

हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥

ऋ १०-१८-८

हे नारि विधवे! तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़के बाकी पुरुषों में से जीते हुए दूसरे पति को प्राप्त हो । और इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करनेवाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिए नियोग होगा, तो यह जना हुआ बालक उसी नियुक्त पति का होगा । और जो तू अपने लिए नियोग करेगी, तो वह सन्तान तेरा होगा । ऐसे निश्चययुक्त हो । और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे । —समुल्लास ४

समाचाराः

—८-२-८७ को स्वामी धर्मानन्द (गुरकुल आमसना) ने १००० ईसाई शुद्ध किये ।

—२०-४-८७ को महात्मा हंसराज-दिवस मनाया गया ।

—सब जगह नव-वर्ष-दिवस, आर्यसमाज-स्थापनादिवस, श्रीरामनवमी पर्व मनाये गये । गुरुकुल कांगड़ी, ज्वालापुर महाविद्यालय और आर्य वानप्रस्थाश्रम वार्षिकोत्सव अप्रैल मे सम्पन्न हुए ।

—मदरसा दारुल उलूम बोंडा के अध्यापक हाफिज मुहम्मद मुस्तकीन अब प० ज्ञानेश्वर भारती बनकर यमुनानगर उत्तराक वि० में रहते हैं ।

—१०-१२-१-८७ को केलिफोर्निया में प्रथम बार हालीवुड लास एंजिलिस मे वैदिक धर्म सम्मेलन श्री सत्यपाल शर्मा वेद-शिरोमणि तथा अमेरिका के आर्यजनों के द्वारा किया गया ।

—शोक है कि ६५ वर्षीया माता प्रियंवदा देवी आर्योपदेशिका हरदोई का २०-२-१९८७ को देहान्त होगया । उनके पुत्र डा० पूर्णदेव सक्सेना तथा पुत्री श्रीमती उषादेवी एवं दौहित्री श्रीमती आभारानी वहीं थीं । अन्त्येष्टि संस्कार पूर्ण वैदिक रीतिसे सम्पन्न किया गया ।

श्री कृष्णनरायन (डी०ए०वी लखनऊ) का देहान्त ९.३.८७को होगया ।

वेद-कर्मकाण्ड विषय विचार

[आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ]

क—करपात्री हरिहरानन्द, द—महर्षि दयानन्द सरस्वती

२९—यज्ञ की पुष्टि में दिये प्रमाण संख्या ५ (तैत्तिरीय उप० ब्रह्मानन्द वल्ली १) को भी क ने प्रकृतपोषक नहीं माना। वे यज्ञ का फल स्वर्ग मानकर आक्षेप करते हैं कि 'वह कपोलकल्पित है कि जनतोपकार यज्ञफल है। वस्तुत: उनके ही मस्तिष्क में कपोल-कल्पित स्वर्ग भरा हुआ है। यह तो प्रमाण स.१ और ३ से पहले ही सिद्ध किया जा चुका है कि यज्ञ का फल परार्थ और जनता का उपकार एवं सुख है। स्वर्ग का भी यहाँ सुख अर्थ मान लेने पर आक्षेप का समाधान हो जाता है और स्वर्गकामो यजेत; इस विधि वाक्य से कोई विरोध नहीं रहता। आक्षेप करने पर भी क ने यज्ञ का वृष्टि आदि आनुषङ्गिक और आंशिक फल तो माना ही! (मुख्य फल स्वर्ग को माना) बात लगभग एक ही है। द ने भी वायु-वृष्टि शुद्धि द्वारा यज्ञ का फल सुख (स्वर्ग) माना है।

३०—एक विचित्र और अयथार्थ बात क ने यह लिखी है कि 'आजकल भारत में सौ भी अग्निहोत्री नहीं। हमारी दृष्टि में अदृश्य महर्षि ऋषि अग्निहोत्र करते हैं।' यह तो असम्भव है। कैसे माना जाय कि अदृश्य ऋषि अग्निहोत्र कर रहे हैं। किन्तु हमारा भी कर्तव्य है कि नहीं कि अग्निहोत्र करके वायुमण्डल को प्रभावित करें। अग्निहोत्री तो अनुमानत: एक लाख से भी अधिक होंगे। सौ से अधिक तो दिल्ली में ही होंगे।

३१—प्रमाण संख्या ६ (तै० उ० भृगुवल्ली अनुवाक २) पर किये गये क के आक्षेप का समाधान यह है कि यह प्रमाण अन्न तक की उत्पत्ति और उससे प्राणियों के जीवन के सम्बन्ध में दिया गया है। उस अन्न की शुद्धि यज्ञ से होने पर जगत् को सुख होता है, और होम न करने से अशुद्ध अन्न उत्पन्न होने से दु:ख होता है, जैसा कि आज-कल प्रत्यक्ष देखा जा रहा है। अत: यह प्रमाण ग्रन्थकार द के समर्थन में है—यह सिद्ध हुआ।

३२—क ने आक्षेप किया कि वेद में यज्ञ करने की आज्ञा उपलब्ध नहीं। समाधान यह है कि यजुर्वेद में अनेक बार 'होतयेज' (हे होता, तू यज्ञ कर) आया है निम्नलिखित अनेक प्रमाण तो क ने कदाचित्

देखे ही नहीं—

(१) यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् (य ३१.१६)

(२) समिधाग्निं दुवस्यत .... (यजु ३-१)

(३) अग्निं दूतं वृणीमहे .... (यजु २२-१७)

(४) सायं सायं गृहपतिर्नो ....(अथर्व १९-७-३-४) इत्यादि

३३—क ने द के द्वारा ऋ. भा. भू. पृष्ठ ५८ पर दिये यज्ञ के रहस्य को भी निरर्थक और पिष्टपेषण बताते हुए लिखा है कि प्राणिनिर्मित दुर्गन्ध कुछ हानि नहीं पहुंचा सकती, पृथिवी भी मनुष्यादि से दूषित नहीं होगी।

क के ये कथन नितान्त असत्य और प्रत्यक्ष के विरुद्ध हैं जिन्हें विद्वान् नहीं मान सकते। मलमूत्रादि, बीड़ी सिग्रेट आदि से, पेट्रोल डीज़ल आदि से; फैक्ट्रियों के धुएँ आदि से गंगा आदि नदियों का जल और पर्यावरण दूषित हो रहा है। उनकी शुद्धि का एकमात्र उपाय देवयज्ञ, होम और अग्निहोत्र आदि ही हो सकते हैं।

क कहता है कि जैसे यज्ञ में डाली कस्तूरी केशर का अत्यन्त विनाश नहीं होता वैसे ही दुर्गन्ध का भी अत्यन्त विनाश नहीं होता (वेदा० पृष्ठ५७५)।

किन्तु दोनों में अन्तर है। दुर्गन्ध तो दबा दी जाती है एक प्रकार से अग्नि द्वारा नष्ट कर दी जाती है, किन्तु कस्तूरी, केशर गिलोय, गूगल आदि औषधियां तो अग्नि द्वारा छिन्न-भिन्न होकर अणुओं परमाणुओं द्वारा वायु-जल शोधन और रोगनाशन आदि कार्य करती ही रहेंगी। वे नष्ट न होकर यज्ञ होम द्वारा सूक्ष्म होकर और हजारगुनी शक्ति पाकर दुर्गन्ध-रोग आदि का अवश्य विनाश करती हैं। मनुष्य ही ईश्वर के बनाये शुद्ध जलवायु आदि को दूषित करता है। अतःएव वह एक प्रकार का पाप करता है, उससे छूटने का उपाय होम अग्निहोत्र ही है। अतः होम न करना भी एक प्रकार से पाप ही है। होम करके ही मनुष्य इस पाप से बचकर धर्मात्मा बन सकता है।

३४—वेदा० के पृष्ठ २७५ पर क का कहना है कि ऋ०भा० भू० के 'पृष्ठ ५८पर दिये द के वाक्य प्रयत्न दो तरह का है आदि असम्बद्ध और अशुद्धि आदि दोषों से दूषित है।' किन्तु यह कथन अयथार्थ और वाग्जालमात्र है। यास्काचार्य ने निरुक्त में ठीक ही लिखा है कि जब अन्धा पेड़ की ठूंठ से टकराकर गिर पड़ता है, तो यह ठूंठ

का नहीं अन्धे का ही अपराध है। समझदार के लिये तो द के वाक्य पूर्णतया शुद्ध, सम्बद्ध संगत और प्रकृतोपयोगी हैं! मूर्खों के लिए नहीं। ईश्वर और जीव के प्रयत्नों में भिन्नता स्पष्ट है। ईश्वर शुद्ध जलवायु देता है, जीव उसे दूषित करता है। इसबात की अग्निहोत्र काण्ड में प्रकृतोपयोगिता स्पष्ट है। कि मनुष्य को अपने द्वारा अशुद्ध की गयी जलवायु को अग्निहोत्र शुद्ध अवश्य करना चाहिये। इस कथन में कुछ भी असङ्गत और व्यर्थ नहीं है। इसमें प्रयुक्त 'सुगन्धयुक्ताद्दिश्च' पद सार्थक और (शुद्ध) है यह पहले ही बताया जा चुका है। 'सुगन्ध-दुर्गन्धाणु संयोगेन' का अर्थ 'सुगन्धित-दुर्गन्धित'अणुओं के संयोग से' करने पर कोई आपत्ति नहीं रहती।

क का कहनाहै कि सुगन्धित-दुर्गन्धित अणु पार्थिव हैं उनसे जलवायु प्रभावित नहीं होंगे किन्तु यह कहना वाग्जालमात्र है। पार्थिव अणु जलवायु में मिलकर उनको प्रभावित करते हैं।

क का कहना है कि अग्निहोत्र आदि कर्म सभी मनुष्यों को करने चाहिये"—यह व्यर्थ की बात है।" तार्किक वैदिक दृष्टिकोण से यह बात व्यर्थ नहीं, सार्थक है और आकांक्षा के विद्यमान होने से निरर्थक भी नहीं। पत्नी के न होने पर भी अग्निहोत्र करने का अधिकार है शूद्र को भी यज्ञोपवीत होकर यज्ञ करने का अधिकार हो जाता है।

क का यह कहना है कि 'मनुष्य के शरीर में परमाणु आदि का संयोग विशेष होने से उसको ज्ञान की उत्पत्ति होती है'—यह निस्सार है।' वस्तुतः—यह कहना ही निस्सार है। क्योंकि यह कार्य ईश्वर द्वारा होता है अत. इसमें चार्वाक मत में प्रवेश की आपत्ति नहीं उठायी जा सकती।

३५—आठ प्रमाण बतलाने वाले न्याय-सूत्रों के अर्थों पर क ने आपत्ति की है कि 'यह सूत्रों के विरुद्ध है औरधृष्टता है' वस्तुतः न यहाँ कोई बात न्यायशास्त्र के विरुद्ध है, न कोई धृष्टता। प्रमाण ४ भी माने जा सकते हैं और आठ भी। छठे सूत्र की व्याख्या द ने पाद टिप्पणी में की है, जो क को दिखायी नहीं दी।

सम्भव प्रमाण में आये हुए सन्तानम् शब्द पर क को आपत्ति है कि इसका नपुंसक लिङ्ग में प्रयोग अशुद्ध है'। किन्तु यह कथन ठीक नहीं', क्योंकि लिंग वक्ता के अधीन है। ऋषि लोग वैयाकरणों के बन्धन में नहीं रहते। अत: ऐसे प्रयोग आर्ष कहलाते हैं।

क ने नाश के लक्षण को भी असंगत बताया, किन्तु यह आपत्ति

अयुक्त है, क्योंकि आकाश का प्रत्यक्ष कर्ण इन्द्रिय से ग्राह्य शब्दगुण के द्वारा प्रत्यक्ष है, और परमाणुओं की स्थिति अनुमान से सिद्ध है। दीवाल से छिपे पदार्थ भी नाश नहीं कहे जायेंगे क्योंकि वे भी प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध हैं।

❀ ३६—होम का विशेष विज्ञान ❀

द ने लिखा है कि परमाणु ही मिलकर स्थूल भाग को प्राप्त होते हैं। इसे नास्तिक मत बताना ठीक नहीं, क्योंकि परमाणुओं को मिलाने वाला तो ईश्वर ही है।

मेले मे होने वाली दुर्गन्ध अधिक होने से छोटे यज्ञ से दूर नहीं होती।

द ने बताया कि अतर आदि की अपेक्षा अग्नि मे छोटे सुगन्धित पदार्थों से अधिक सुगन्ध होती है। इसे असत्य बताना ही असत्य है। इसी तरह से चारों दिशाओं से शुद्ध वायु आने को व्यर्थ बताना भी व्यर्थ है, क्योंकि चारों दिशाओ मे वायु-शुद्धि यज्ञ से होगी. वही उस खाली स्थान मे प्रवेश करेगी जहाँ से अग्नि ने दुर्गन्धित वायु हटायी है।

३७—द ने बताया कि प्रणीता को विशेष प्रकार से रखने मे पुण्य और न रखने मे पाप होता है–यह कल्पना मिथ्या ही है। क इस बात को भी तुच्छ और सारहीन बताते है। किन्तु द की यह बात तुच्छ नहीं, क्योकि पौराणिक मीमासक ही इन छोटी छोटी बातो को पुण्य-पाप बताया करते हैं।

३८—अन्त मे क को मानना पड़ा कि होम से वायु शुद्धि होती ही है। फिर भी वह इसे अग्निहोत्र का विशेष फल नहीं मानता, उसका यह कथन व्यर्थ और निस्सार है, क्योकि भले ही अन्य प्रकार से कुछ अश मे दुर्गन्ध दूर हो जाय किन्तु मुख्यरूप से होम से ही दुर्गन्ध दूर हो सकती है अतः यह होम का ही मुख्य फल हुआ जैसे पूरी भूख दोपहर के भोजन से ही दूर होती है 'प्रातराश' से नहीं।

३६—भट्ट कुमारिल ने लोकायतिक चार्वाकों को मूर्ख बन्दर और पिशाच बतानेवाले जो श्लोक बनाये उन्हे लिखकर क ने लिखा है कि 'लगता है कि दयानन्द आदि आर्यसमाजियो को लक्ष्य करके ही यह सब कहा है।' हम भी कह सकते है कि ये श्लोक कुमारिल के करपात्री और उनके अनुयायियो को लक्ष्य करके ही लिखे है, क्योकि वे जरासा अवसर मिलते ही बात का बतगड़ बनाकर व्यर्थ ही आक्षेप कर दिया करते है।

निरुक्त अध्याय चौदह

खण्ड २८ मन्त्र १७—

त्वमङ्ग प्र शंसिषो देव: शविष्ठ मर्त्यम् ॥
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वच: ॥

ऋ० १।८४।१६।

मे बलिष्ठ आदित्य तथा आत्मा! तू देव होकर मर्त्य की प्रशंसा करता है। तुझसे अन्य कोई रक्षक अथवा पालक जीतनेवाला अथवा, सुख देनेवाला नहीं है। हे ऐश्वर्यवान् और तेरे लिए स्तुति-युक्त वचन कहता हूं।

खण्ड २९, मन्त्र १८——

हंस: शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥

ऋ० ४।४०,५, ऐ०ब्रा० ४,३,५।

हंस-(परमात्मा अथवा आदित्य) परम ज्योति रूप अथवा शुचि अग्नि के स्थान वाला, वसुरूप अन्तरिक्ष स्थान वाला, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का होता, वेदि स्थानवाला, पूजायोग्य ब्रह्माण्ड में स्थानवाला व्यापक, मनुष्यों में रहने वाला, अन्तर्यामी श्रेष्ठों मे रहने वाला, जल में रहने वाला, व्योम स्थान वाला, आप. मे प्रकट होने वाला, रश्मियों में प्रकट होने वाला, ऋतु में प्रकट होने वाला, अद्रि में जन्मा (ऋतम्) ऋत रूप है।

खण्ड ३०, मन्त्र — १६

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥

ऋ०१।१६४।२०।

अर्थ-दो पक्षी (ईश्वर और जीव) सदा साथ रहनेवाले सखा रूप हैं। दोनों एक समान वृक्ष (प्रकृति) को आलिङ्गन करते हैं। उन दोनों में से (अन्य) एक (जीवात्मास्वादु) फल को खाता है, न खाता हुआ दूसरा (ईश्वर) सब ओर देखता है। यह मंत्र आत्मगति को बताता है।

खण्ड ३१, मन्त्र २०—

आ याहीन्द्र पथिभिरीळितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व।
तृप्तां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामिव ॥

ऋ० खिल ७।५५।८।

अर्थ—हे इन्द्र, स्तुति-योग्य मार्ग से आओ (प्रकाशित हो ओ) इस यज्ञ को हमारे भागधेय- अंश को सेवन करो। मामा की कन्या के समान और बुआ की कन्या के समान तृप्त की गई अग्नि में होम करो यह तेरा भाग है।

खण्ड ३२ मन्त्र २१

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये।

अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥ ऋ० ८। १११६।

अर्थ— हम मेधावी लोग रक्षा और साहाय्य के लिए मेधावी देव अग्नि और ईश्वर को स्तुति से बुलाते हैं।

खण्ड३३. मन्त्र२२—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।

स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धु दुरितात्यग्निः ॥

ऋ० १।६६।१॥

अर्थ—हम जातवेदस(अग्नि,आदित्य और ब्रह्म)के लिए सोम को, परमार्थ में आत्मा के सम्पूर्ण प्रेम को निचोड़ते हैं वह हवियों के दान के अभिप्राय से, नष्ट पापी का धन व ज्ञान सर्वथा नष्ट करता है। वह हमें दुर्गम स्थानों से पार करे जिस प्रकार नाव और जहाज समुद्र वा महानद को पार करा देते हैं, वैसे आदित्य और परब्रह्म इस मर्त्य लोक से हमें पार कराता है

जीवात्मा—आदित्य से पार होकर अपर लोकों को जाता है। परब्रह्म की कृपा से इस भवसिन्धु को तरता है।३२

खण्ड३४, मन्त्र २३—

इदं तेऽन्याभिरसमानद्भिर्याः काश्च सिन्धुं प्रवहन्ति नद्यः।

सर्पो जीर्णामिव त्वचं जहाति पाप सशिरस्कोऽभ्युपेत्य ॥ (अज्ञात)

अर्थ— हे परमात्मा मैं तेरी ओर वैसे ही आता हूं जैसे नदियां, दूसरी अन्य प्रकार की नदियों के साथ है जो कोई भी समुद्रको बहती हुई जाती हैं जैसे सिर के साथ सर्प जीर्ण हुई त्वचा को त्यागता है वैसे ही मैं तुझे पाकर पाप को त्यागता हूं।

खंड३५,मन्त्र२४—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ऋ० ७:५९।१२

अग्नि और परब्रह्म त्र्यम्बक रुद्र हैं, हम उस सुन्दर गन्ध वाले और पुष्टि कारक रुद्र का यजन करते हैं। खरबूजा और फूट ककड़ी

के फल, बन्धन से जैसे सरलता से पृथक होते हैं, वैसे रुद्र मुझे मृत्यु के पाश से छुड़ाये, अमृत मोक्ष से न छुड़ावे।

खण्ड३६, मन्त्र२५--

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेम पुनर्दुः॥

ऋ०१०,१६१।४॥

अर्थ—हे मनुष्यों, तुम सौ शरद्, सौ हेमन्त, और सौ वसन्त ऋतुएं बढ़ते हुए जियो। इन्द्राग्नी, सविता, बृहस्पति सौ वर्ष की आयु से हवि के द्वारा इस मनुष्य की आयु को बढ़ायें। प्राण इस आयु को बढ़ाते हैं।

खण्ड ३७, मन्त्र २६—

मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन्।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ॥

ऋ० १,८४।२०।

मन्त्र २७- देवानां नु वयं जाना। ऋ० १०। ७२।१॥
मन्त्र २८- नासदासीन्नो सदासीत् तदानीम्। ऋ० १०।१२९। १॥

अर्थ—हे आदित्य अथवा परमात्मन् तेरे धन और जाने के मार्ग हमारे कभी भी धोखा न दें, व हानि न पहुँचाएं। और सब धन हमें सब ओर से समीप करो। हे मनुष्य के हितकारक आदित्य और हे परमात्मा, आप सम्पूर्ण धन मनुष्यों के लिए दें।

अब इस महान् आत्मा की ऋचाओं के समूह से यह वह गुरु प्रवचन करता है, विश्वकर्मा के अर्थ के लिए अगले दो मन्त्र हैं वह यह आत्मजिज्ञासा है। वह यह सर्वभूत-जिज्ञासा है। ब्रह्म के सामीप्य सरूपता, सलोकता को पहुँचता है, जो इस प्रकार जानता है।

ब्रह्म के लिए, महाभूत आत्मा-महत् तत्त्व के लिए, यास्क और पारस्कर के लिए नमस्कार हो॥

इति निरुक्तं समाप्तम्

सूची १ — चौदह निरुक्तकार

(नामों के आगे संख्यायें पृष्ठों की है)

सूची २ — अन्य द्रष्टव्य नाम

५६ बिभतेर्हेतुभये ॥

हेतु भय अर्थ में, भी से विकल्प से आ हो — मुण्डो भापयते, भीषयते ।

५७. नित्यं स्मयतेः ॥

स्मयति के एच् को नित्य आ हो — जटिलो विस्मापयते ।

५८ सृजिदृशोर्झल्यमकिति ॥

झलादि कित् भिन्न प्रत्यय परे हों तो सृज और दृश् को अम् आगम हो — स्रष्टा स्रष्टुम् स्रष्टव्यम् द्रष्टा द्रष्टुम् द्रष्टव्यम्

५९ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ॥

और अनुदात्त ऋदुपध धातु से विकल्प से अम् हो — स्रप्ता सर्प्ता स्रप्स्यति सर्प्स्यति ।

६०. शीर्षंश्छन्दसि ॥

वेद में शिर. के स्थान में शीर्षन् हो — शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।

६१. ये च तद्धिते ॥

और यादि तद्धित परे रहते शीर्षन् हो — शीर्षण्यः । वार्तिक — केशों में वि० से — शीर्षण्याः शिरस्याः वा केशाः । अजादितद्धित परे रहते शीर्ष हो — स्थौलशीर्षम्

६२ . पद् दन् नो. मास् हृन् निशसन् यूषन् दोषन् यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ।

शस् आदि प्रत्यय परे हो तो पाद आदि १३ को क्रमशः सूत्रोक्त १३ पद् दन् नस् मास् हृन् निश् असन् यूषन् दोशन् यकन् शकन् उदन् आसन् आदेश हों ।

६३ धात्वादेः षः सः ॥

धातु के आदि ष के स्थान में स हो — षह् — सहते, षिच् — सिञ्चति ।

६४ णो नः ॥

धातु के आदि ण के स्थान में न हो — णीञ् — नयति, णम् — नमति ।

६५ लोपो व्योर्वलि ॥

वल प्रत्याहार परे हो तो व और य का लोप हो — युवजानिः ।

वार्तिक — जीवेरदानुक् — जीरदानुः ।

६६ वेरपृक्तस्य ॥

अपृक्त वि का लोप हो — ब्रह्महा घृतस्पृक् (क्विप् के वि का लोप हुआ)

६७ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् ॥

हलन्त, ङ्यन्त और आबन्त दीर्घ से परे सु, ति और सि के अपृक्त का लोप हो— राजा कुमारी यशोदा अबिभर्भवान् अभिनोऽत्र।

६८ एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ॥

ए ओ, ह्रस्व अन्त वाले प्रातिपदिक से परे सम्बुद्धि का हल् लुप्त हो– मुने ! प्रभो ! देवदत्त ! देवि ! वधु !

६९ शेश्छन्दसि बहुलम् ॥

वेदमें बहुलता से शि का लोप हो– या क्षेत्रा या वना यानि क्षेत्राणि यानि वनानि।

७० ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ॥

पित् कृत परे हो तो ह्रस्व को तुगागम हो– सोमसुत् प्रकृत्य उपस्तुत्य।

७१ संहितायाम्।

यह अधिकार है। १५८ सूत्र तक बताये कार्य सन्धि में हों।

७२ छे च ॥

और छ परे रहते तुगागम हो– इच्छति गच्छति स्वच्छाया।

७३ आङ्माङोश्च।

और छ परे रहते इन्हें तुगागम हो— आच्छादयति माच्छिदत्।

[illegible]

दीर्घ से छ परे रहते तुगागम हो – म्लेच्छति चेच्छिद्यते।

७५ पदान्ताद्वा ॥

दीर्घ पदान्त से तुगागम विकल्प से हो— कुटीच्छाया कुटीछाया।
वार्तिक— वेदमें विश्वजन आदि से विकल्प से तुगागम हो— विश्वजनच्छत्रम् विश्वजनछत्रम्।

७६ इको यणचि।

इक के स्थान में यण् हो अच परे रहते—पत्यालयः कुमर्य्युपदेशः साध्वाशा वध्वाज्ञा मात्रनुज्ञा लनादरः, वार्तिक— प्लुतपूर्व इक को यण हो– अग्ना३इ इन्द्रम् अग्ना३यिन्द्रम् पटा३उउदकम् पटा३वुदकम्।

७८ एचोऽयवायावः ॥

एच के स्थान में क्रमशः अय् अव् आय् आव् आदेश हों— चयनम् लवनम् चायक, लावकः।

७८ वान्तो यि प्रत्यये ॥

यादि प्रत्यय परे रहते ओ औ के स्थान में अव् आव् हों— गव्यम् नाव्यम्।

वार्तिक— वेद में अल्पपरिमाण में भव्यूनेव च।।

७९. धातोस्तन्निमित्तस्यैव ॥

धातु के उसी निमित्त से हुए एच् को वान्त अ देश हो— [illegible]

पव्यम् अवश्यलाव्यम् अवश्यपाव्यम्।

८०. क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे ॥

शक्य अर्थ में क्षय्य तथा जय्य निपातित हैं।

८१. क्रय्यस्तदर्थे ॥

उसी खरीदने अर्थ में क्रय्य निपातन हो।

८२ भय्य प्रवय्ये च छन्दसि ॥

वेद में भय्य और प्रवय्य निपातन हों। वार्तिक-हृद्या आपः भी हो।

८३. एकः पूर्वपरयोः।

यह ६.१.११२ तक अधिकार है। पूर्व-पर के स्थान में एकादेश हो।

८४. अन्तादिवच्च।

यह एकादेश पूर्व को अन्तवत् और पर को आदिवत माना जाय- शिवेहि।

८५ षत्वतुकोरसिद्धः ॥

षत्व और तुक विधान में यह नियम असिद्ध समझा जाय।

८६. आद्गुणः ॥

अ से अच परे रहते गुण हो- पुरुषेन्द्रः आयेशः गङ्गोदकम् ब्रह्मर्षिः तवल्कारः।

८७. वृद्धिरेचि।

अ से एच परे रहते वृद्धि हो— नरैन. पष्ठिनौकः आत्यैश्वर्याम् गैधौषधम्।

८८ एत्येधत्यूठ्सु।

एति एधति और ऊठ् परे रहते वृद्धि हो- सत्यमुपैमि प्रैधते प्रष्ठौहः

वार्तिक- अक्ष से ऊहिनी में वृद्धि हो- अक्षौहिणी सेना. स्व से ईर इर का वृद्धि हो— स्वैरम् स्वैरी स्वैरिणी। प्र से ऊह आदि परे हों तो हो— प्रौहः प्रौढः प्रौढिः प्रैषः प्रैष्यः। तृतीया-समास में ऋत परे हों तो—,सुखार्तः। ऋण परे हों तो इनसे वृद्धि हो-:प्रार्णम् वत्सतरार्णम् कम्बलार्णम वसनार्णम् ऋणार्णम् दशार्णम्।

८९ आटश्च ॥

और आट् से परे वृद्धि हो- ऐक्षिष्ट ऐक्षत ऐक्षिष्यत।

९० उपसर्गादृति धातौ ।

अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु परे होतो वृद्धि हो- उपार्च्छति प्रार्च्छति ।

९१ वा सुप्यापिशलेः ॥

आपिशलि के मतमें सुब्धातु परे रहते विकल्प से वृद्धि हो- प्रार्षभीयति प्रर्षभीयति ।

९२ औतोऽम्शसोः ।

ओ से अम और शस् परे रहते विकल्प से आ हो- गां गाः वा पश्य, द्यां द्याः वा पश्य ।

९३ एङि पररूपम् ॥

उपसर्ग से एङादि धातु पर रहते पररूप हो- प्रेजते उपोषति उपेडकीयति उपैडकीयति अपोदनीयति उपौदनीयति । शकन्धु आदिमें पररूप हो- शकन्धु कुलटा । १९४ वा० [illegible] शकन्धु कर्कन्धु कुलटा ।

९४. ओमाङोश्च ॥

अ से ओम और आङ् परे रहते पररूप हो - [illegible]

अद्योढा कदोढा ।

९५. उस्यपदान्तात् ॥

अपदान्त अ से उस् परे रहते पररूप हो- भिन्द्युः छिन्द्युः अद्युः

९६. अतो गुणे ।

अपदान्त अ से गुण परे हो तो पररूप हो- यजन्ति पचन्ति ।

९७ अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ ।

अव्यक्त के अनुकरण के अ से इति परे रहते पररूप हो- पटिति घटिति छटिति ।

९८ नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा ।

आम्रेडित को पररूप न हो, अन्त्य के त को विकल्प से पररूप हो पटत्पटेति पटत्पटदिति ।

९९ अकः सवर्णे दीर्घः ।

अक् से सवर्ण परे रहते दीर्घ हो- आर्याज्ञा श्रीशः भानूदयः वधूह ।

वार्तिक- सवर्ण ऋ ऌ परे रहते विकल्प से ऋ ऌ हो- होतृकारः होतृकारः होतॄलृकारः होतृ कारः ।

१०० प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ।

प्रथमा-द्वितीय में अच् परे रहते पूर्व-सवर्ण दीर्घ हो- वायू वृक्षाः अग्नी वृक्षान् ।

तीसरे पहर वेदि में कुश रखकर, व्रत के दूध का आधा भाग यजमान और उसकी स्त्री को देकर शाला में आते हैं . समिधा को रखते हैं और उपयमनी को बनाते हैं। अध्वर्यु घी गार्हपत्य अग्निपर रखता है। स्रुव को मांजता है। यजमान सोमराजा को अपनी गोद में लेता है। तदनु सोम-गौ के पद की धूल गार्हपत्य के पीछे फेंकता है . . . । से उसको प्रतिष्ठा हो क्योंकि . . . से ही तो प्रतिष्ठा होती है।४

कुछ लोग इस धूल के चार भाग करते हैं। चौथाई भाग को उस उपयमनी में रखते हैं जहाँ से आहवनीय लेते हैं। चौथाई भाग अन्त में लगाते हैं। चौथाई भाग को आग्नीध्रीय अग्नि की उपयमनी पर रखते हैं और एक चौथाई को गार्हपत्य के पीछे फेंकते हैं। ५

परन्तु ऐसा नहीं करना चाहिये। सब को निष्कृत गार्हपत्य के पीछे ही फेंकना चाहिये। घी को साफ करके जुहू और उपभृत में चार चमचे लेता है। पृषदाज्य(जमे हुए घी)के ५ चमचे इस मन्त्र से --

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां समित्' [यजु ५ ३५]

तू विश्वरूप ज्योति है, सब देवताओं को समिधा या ज्वाला।
क्योंकि पृषदाज्य सब देवों का है। जब ईंधन प्रदीप्त हो जाता है स्रुचों को रखते हैं। ६

अब वह आहुति देता है—

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्यो ऽन्यकृतेभ्य उरु यन्तासि वरूथं स्वाहा।

हे सोम! तू शरीरों को कष्ट देनेवाले दूसरों द्वारा किये हुए द्वेषों से बचानेवाला महान् नियन्ता है, हमारे यज्ञ रूपी घर की रक्षा कर।
इस प्रकार वह इस पृथ्वीपर प्रतिष्ठा और इस लोकको पाता है।७
अब वह अप्तु (तीव्र सोम) के लिए दूसरी आहुति देता है—

जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा॥ (य ५.३५)

तेज सोम हमारे घी को स्वीकार करे।

सोम ने ही तो कहा था कि मुझे राक्षसों से भय लगता है कि कहीं वे मुझे मार्ग मे हानि न पहुँचायें अतः बूँद के रूप मे छोटा करके ले चलो कि मैं उनके वध के लिए अतिसूक्ष्म हो जाऊं; इसलिए वह बूँद रूप होता है। अतः वह अप्तु के लिए दूसरी आहुति देता है। ८

वे जलती समिधा उठाकर उपयमनी पर रखते हैं। वह होता से कहता है— ले जाए जाते हुए सोम और अग्नि के लिए मन्त्र बोलो। किन्तु अग्नि के लिए मन्त्र बोलो यही कहना चाहिए। ९

अब २ सोम कुचलनेके पत्थर, द्रोण-कलश, वायव्य(लकड़ीकोकुंडी), समिधा, काश्मर्य लकड़ों की परिधि, अश्ववाल घास के प्रस्तर, इस को विधृतियां को लाते हैं कुश उसमें बांधकर दो वपा-श्रपणी, दो रस्सी दो अरणी, अधिमन्थन-लकड़ी, दो वृषण लेकर वे आगे आते हैं। इस प्रकार यज्ञ ऊँचा उठता है। १०

जब वे आगे चलते हैं तो वह यजमान से यह कहलाता है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
-युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥
(य ५.३६ ऋ १-१९९-१)

हे अग्नि ईश्वर, तू सब कर्मों को जानता है, हमको ऐश्वर्य के लिए अच्छे मार्ग पर चला। हमको बहकानेवाले पाप से बचा। हम आपको बहुत प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार वह अग्निको आगे करता है, वही राक्षसों को मारती है। वे उसे भय-हानि-रहित मार्ग से ले जाते हैं। वे आग्नीध्र तक पहुंचकर आग्नीध्र-कुण्ड मे अग्नि रख देते हैं। ११

अब यह इस मंत्र मे आहुति देता है—

अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयं शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥
य ५.३७

यह अग्नि हमारे लिए श्रेष्ठ मार्ग बनाये, संग्रामों को भेदता आगे बढ़े, अन्न-संग्रह मे अन्नों को जीते और वेग से आगे बढ़कर शत्रुओंको जीते। इसके द्वारा वह अन्तरिक्षमे प्रतिष्ठा व उस लोक को पाता है।१२

वे पत्थर, द्रोणकलश, वायव्य वहीं रखकर अन्य वस्तुएँ लकर आगे चलकर आहवनीय के उत्तर में रख देते है। १३

अध्वर्यु प्रोक्षणी लेकर समिधाओं तथा वेदि पर जल छिड़कता है। तब वे उसे कुश देते हैं जिन्हें वह पूर्वाग्र पकड़ता है, उन पर जल छिड़कता है, बचा जल जड़ो मे डालकर गाँठ खोलकर अश्ववाल घास के प्रस्तर को कुश से बाँधकर कुश को एक तह बिछाता है तथा काश्मर्य-परिधियां तथा समिधाएँ आग पर रखता है। १४

फिर इस य ५.३८ से आहुति देता है—

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर ॥

हे विष्णु, फैलकर पग रख, हमारे घर के लिये विस्तृत स्थान कर,

तू घी की योनि, तू घी पी, यज्ञपति को आगे बढ़ा। इस प्रकार वह द्यौ लोक मे प्रतिष्ठा तथा उस लोक को पा लेता है। १५

विष्णु के मन्त्रसे आहुति का अर्थ है कि इसप्रकार उन्होंने सोमको इतना सूक्ष्म कर लिया कि आक्रमणों से बचा सके तथा बूंद के रूप में ले गये क्योंकि वह अग्र होती है। रक्षा के पश्चात् उसको यज्ञ-सम्बन्धी नाता है क्योंकि विष्णु ही यज्ञ है अतः विष्णु-मन्त्रसे आहुति है।१६

वे सब रख कर जल-स्पर्शकर सोम का प्रवेश कराते हैं क्योंकि घी न अ तथा सोम वीर्य है कहीं उसे हानि न पहुंचे। १७

दक्षिण हविर्धान के नीड मे चर्म बिछाकर उसपर सोम रखता है

देव सवितरेष ते सोमस्तं रक्षस्व मा त्वा दमन्। (य ५ ३१)

हे सविता देव! यह तेरा सोन है इसको रक्षा कर। कोई तुझे हानि न पहुँचाये। इस प्रकार सोम को रक्षार्थ सविताके लिऐ सौंपता है। १८

अब उसे हाथ स छोड़कर इस मन्त्र से उपासना करता है—

ऐतत् त्वं देव सोम देवो देवाँ उपागा इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण। य ५.३१

हे देव सोम! तू देव होकर अन्य देवोंसे मिला और मैं ऐश्वर्य-पुष्टि के साथ मनुष्यों से मिलूँ। दीक्षत को देव अपने संरक्षण में रखते हैं, दीक्षा-आहुति अग्नि-विष्णु की हैं, इस तरह उन्होने उसे अग्नि के सरक्षणमें लिया, विष्णु सोम हो हैं दीक्षित देवों की हवि है, एत० त्वं० स आहुति देकर वह मानों सोम से मुक्त होगा, रायस्पोष का अर्थ है धन की अधिकता। १९

अब वह यह मन्त्रांश पढ़कर हविर्धान से निकल आता है—

स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये (य ५.३९)[मैं वरुणके पाशसे छूटता हूं]

जो दूसरेके अधीन है वह मानो वरुणके पाशमें है,अतः यह कहा।२०

अब वह इस मन्त्र से आहवनीय में समिधा रखता है—

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियं सा मयि। यथायथं नो व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमंस्तानु तपस्तपस्पतिः॥ (य ५.४०

इस तरह वह अग्निसे मुक्त होकर अपनी ही सत्ता से यज्ञ करताहै: अब वे उसका अन्न खाते हैं और नाम लेते हैं क्योंकि अब वह मनुष्य हैं। पहले नहीं खाते क्योंकि जब तक आहुति न पड़ जाय तब तक हवि का भाग न खाये। अब वह अंगुलियाँ ढ़ीली कर देता है ॐ

शतपथ का. ३ अ, ६ ब्राह्मण ४

यूप काटने के समय विष्णु सम्बन्धी ऋचासे आहुति देता है क्योंकि यूप विष्णुका है।१

अथवा यज्ञ ही विष्णु है, इसके द्वारा ही वह यज्ञ तक पहुंचताहै अतः विष्णु की ऋचा से आहुति देता है। २

वह यदि स्रुव से आहुति दे तो ४ चमचे घी लेकर, यदि स्रुक् से दे तो उसमें ही घी भर कर उरु विष्णो० य ५.४१ मन्त्र से आहुति दे।३

वह बचा हुआ घी, और बढ़ई अपने औजार लेकर चलते हैं। यूप की लकडी छूकर-४

उसके पीछे पूर्वाभिमुख यह मन्त्र जपता और अभिमन्त्रणा करताहै-

अत्यन्याँ अगा नान्याँ उपागाम्। (य ५.४२)

[मैं दूसरों को छोड आया, मैं दूसरों के पास नहीं गया।] वस्तुतः वह दूसरों को छोड जाता है और उनके पास तक नहीं जाता। ५।

अर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदम् परोऽवरेभ्यः। (य ५.४२)

वस्तुतः जब वह यूप काटकर गिराता है तब दूरवालों के पास और निकट वालों के दूर गिराता है। अतः वह कहता है। ६

बाल कथामाला

रचयिता— स्वर्गीयः श्री मङ्गलसेनः कविः, बदायूँ



९. मूर्खोपदेशः।

देवे वर्षति वृक्षाग्रे केचित् कीशाश्चकम्पिरे ।
नीडस्थाः पक्षिणो दृष्ट्वा तानूचुः करुणापराः ॥ १

अस्माभि निर्मिता नीडाश्चञ्चुमात्राहृतैस्तृणैः ।
हस्तपादादि संयुक्ता यूय किमिति सीदथ ? २

श्रुत्वेदं चिन्तितं कीशैर्यदेते क्षुद्रपक्षिणः ।
निबोधयन्ति ना दर्पात् सुख नीडेष्ववस्थिताः ॥ ३

भवतूपशमो वृष्टेः शीतं चापि निवर्त्तताम् ।
प्रहासं कुर्वतामेषां कर्त्तव्यं स्यात् प्रताडनम् ॥ ४

एव वृष्ट्यां प्रशान्तायां मर्कटै दुष्टभावनैः ।
वृक्षमारुह्य नीडानि नाशितानि द्विजन्मनाम् ॥ ५

वराका अण्डजाः सर्वे बभूवुर्निर्निकेतनाः ।
अतो हितोपदेशेऽपि कथितं विष्णुशर्मणा ॥ ६

विद्वानेवोपदेष्टव्यो नाविद्वांस्तु कदाचन ।
वानरानुपदिश्याथ स्थानभ्रष्टाः ययुः खगाः ॥ ७

❀

वर्ष ११ अङ्क ५ मई

नमस्ते! आपका वर्ष पूर्ण होगया, कृपया वार्षिक शुल्क २०) शीघ्र भेजें।

दैनन्दिनी वैशाख-ज्येष्ठ २०४४

तिथि वैशाख शुक्ल	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पूर्णिमा
वार	बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो म बु
नक्षत्र	भ कृ रो मृ आ पु पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि
तारीख अ	२९ ३० म १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३

तिथि ज्येष्ठ कृष्ण	१ २ ३ ४ ५ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० अमा
वार	गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु
नक्षत्र	अ ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे अ भ कृ
तारीख मई	१५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७

ऐतरेय, शतपथ, निरुक्त सम्पूर्ण

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

प्रकाशक— विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ ६

फाल्गुन पूर्णिमा २०४३ वि० १५-३-१९८७ ई० ।

मूल्य ऐतरेय ३०), शतपथ दो खण्ड २०), निरुक्त ३०), शीघ्र मँगाइये

निवेदक— वीरेन्द्रमुनि अध्यक्ष, ओ३मित्र शास्त्री मन्त्री

विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६

ऋत्वनुकूल हवन-सामग्री

हमने आर्य यज्ञप्रेमियो के आग्रह पर संस्कार-विधिके अनुसार हवन सामग्रीका निर्माण हिमालयकी ताजी जड़ी बूटियोंसे आरम्भ किया है. उत्तम कोटि, सुगन्धित, पुष्टिकारक, पौष्टिक तत्वों से युक्त यह हवन-सामग्री अत्यन्त अल्प मूल्य में प्राप्त है. थोक मूल्य ५) प्रति किलो ।

—योगी फार्मेसी, लक्सर रोड, डा० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ.प्र.)

ओ३म् × × × × × × × × × × × × × × × × × × ————

प्रेषक- मुद्रक आर्ष प्रेस

सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६

सेवा में संख्या १३२८

श्री पुस्तकालयाध्यक्ष

गुरुकुल कांगड़ी

हरिद्वार

ओ३म्

वेद-ज्योति

वर्ष ११ अंक ६ जून १९८७ ई.

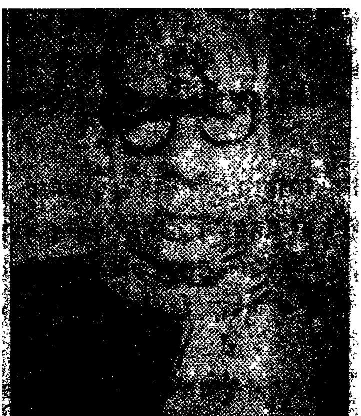
शुक्र, ज्येष्ठ २०४४ वि०, वेदसृष्टिसंवत् १९६०८५३०८७, दयानन्दाब्द १६४

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— श्री आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम०ए०

सहायक— विमला शास्त्री, सुधीन्द्रनाथ शास्त्री, ओमप्रकाश शास्त्री

विश्व [illegible] लखनऊ [illegible] दूरभाष [illegible]

वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), एक प्रति २)



श्री विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड, देहरादून

[illegible] ने इन्हें २१०००) का [illegible] पुरस्कार दिया

सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या

मन्त्र १४ ऋषि सूर्या देवता, दम्पती. छन्द, त्रिष्टुप, स्वर धैवत

अदेवृघ्नी अपतिघ्नी, एधि शिवा, पशुभ्य, सुमना, सुवर्चा ॥

प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥

अथर्व १४।२।१८

अर्थ— हे पति और देवर को दुःख न देने वाली स्त्री [तू इस गृह आश्रम में पशुओं के लिये कल्याण करने वाली, अच्छे प्रकार धर्म-नियम में चलने वाली रूप और सर्वशास्त्र-विद्यायुक्त, उत्तम पुत्र-पौत्रादि के सहित, शूरवीर पुत्रों वाली- देवर की कामना करनेवाली और सुख देनेवाली पति वा देवर को प्राप्त होके इस गृहस्थ-सम्बन्धी अग्निहोत्र को सेवन किया कर।

—समुल्लास ४

संस्कृत को अनिवार्य स्थान दें।

श्री राम दुलारे शर्मा, मन्त्री विश्व वेद परिषद्

त्रिभाषा फार्मूले के अन्तर्गत नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे छात्र संस्कृत शिक्षा मे दूसरी अथवा तीसरी भाषा के रूप में पढ़ने से वंचित कर दिये जायेगे। विकल्प मे उर्दू, कशमीरी, पंजाबी आदि में लेना होगा।

भारतवर्ष का प्राचीन साहित्य तथा वैदिक वाङ्मय संस्कृत भाषा मे सुरक्षित है। वैदिक-दर्शन जो ब्रह्मा से जैमिनि पर्यन्त जाज्वल्यमान रूप मे सूर्यवत् विद्यमान है, उसे विदेशी शासन योजना बद्ध रूप से निरन्तर नष्ट करने मे लगे हैं। आज की तुच्छ स्वार्थ और लोभ तथा वोट की राजनीति के अधिकांश राजनेता भी इस कार्य में लगे हुए हैं जिस से उत्पन्न हो गये हैं गौ के उदर से वृश्चिक। एक महान् त्रुटि यह है कि यहां के लोग स्वयं भस्मासुर बनकर वैदिक-दर्शन - और वेदांग आधार भूत संस्कृत भाषा को ही समाप्त करने का [illegible] तथा विदेशी मान्यताओं से प्रभावित होकर कर रहे हैं।

अतः संस्कृत भाषा को नई शिक्षा नीति में अष्टाध्यायी महाभाष्य पर आधारित करके संस्कृत को अनिवार्य स्थान दें।

❀ ओ३म् ❀

महर्षि यास्काचार्य प्रणीत

वेदांग निघण्टु निरुक्त कोश

सम्पूर्ण, सरल हिन्दी अर्थ सहित

सम्पादक—

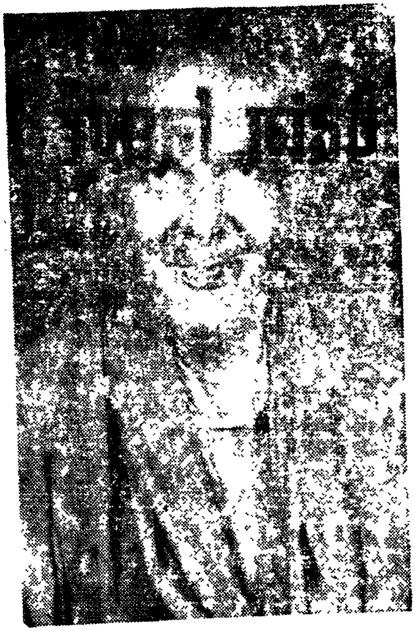
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए० काव्यतीर्थ,

अध्यक्ष विश्व वेद परिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ

❀ ज्येष्ठ पूर्णिमा २०४४ वि० ❀ मूल्य १०)

समर्पण

स्व० स्वामी धर्मानन्द सरस्वती , प्रथम अध्यक्ष विश्व वेद परिषद्





प० वीरसेन वेदश्रमी, द्वितीय अध्यक्ष विश्व वेद परिषद्

--विनीत वीरेन्द्र मुनि

सम्पादक का परिचय



जन्मस्थान—हाथरस (उ०प्र०)

माता—श्रीमती वसन्ती देवी,

पिता-श्री हरिशङ्कर अग्निहोत्री।

जन्म-तिथि—आषाढ़ शुक्ल ५, १९७२ वि०, १-७-१९१५ ई०।

शिक्षा—स्थान-बरेली। १२ वर्ष की आयु मे अष्टाध्यायी कण्ठस्थ, १५ की आयु में शास्त्री, यजुर्वेद कण्ठस्थ। २१ मे आचार्य, २२-२४ की आयु में एम०ए० संस्कृत-हिन्दी।

गुरु—श्री रामचन्द्र सिद्धान्तालङ्कार, बिहारीलाल शास्त्री।

सेवा—स.रजिस्ट्रार ग०सं०का० परीक्षा, स० निरीक्षक सं. पा. उ प्र. च र ग्रनी [illegible] कालेज, जिला विद्यालय निरीक्षक।

साहित्यिक कार्य—सम्पादक 'संघ' बरेली, वेदवाणी एवं देववाणी वाराणसी तथा वेदज्योति लखनऊ, सामवेद हिन्दी अनुवाद, यजुर्वेद पुरुषसूक्त ईशोपनिषद् की व्याख्या, भारतवर्षस्य भूगोलशास्त्रम्, ऐतरेय शतपथ का हिन्दी अनुवाद, योगदर्शन व्याख्या, धर्मशिक्षा ५ भाग, स्वास्थ्य-शिक्षा, संस्कृत-वाक्य-प्रबोध, संस्कृत-बोध-कलिका विकास, वेदाङ्ग शिक्षा, वेदाङ्ग छन्दः शास्त्रम्, सत्यार्थसार, दीपावली-पर्व-परिचय, यज्ञ की सामान्य विधि, अष्टाध्यायी हिन्दी अनुवाद।

अथर्ववेद-यजुर्वेद-ऋग्वेद हिन्दी अनुवाद, ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका-महाभाष्य, वेद-विषय-विचार, वेदार्थपारिजात-खण्डनम् अप्रकाशित हैं।

सामाजिक कार्य—सौ से अधिक वेद पारायण-यज्ञ, दर्श-पूर्णमास-आग्रयणेष्टि का सम्पादन, वेद-प्रवचन वेदकथा शास्त्रार्थ वेद-संस्कृत-योग-शिविरों तथा वेद-सम्मेलनों का आयोजन, वेद-परीक्षाओं का संचालन, सार्वदेशिक विद्यार्य-सभा का मन्त्रित्व तथा विश्व-वेद-परिषद् की अध्यक्षता।

—वीरेन्द्र मुनि

❀ निघण्टु-निरुक्त-पद-सूची ❀

इस सूची में निघण्टु के प्रथम चार अध्यायों के समस्त शब्दों की सूची है। ... के बाद निघण्टु के अध्याय, खण्ड की संख्या है।

अ   अंसत्र ४.३ धनुष कवच   अघशंस ३.२४
अंहुर ४.३ पापी   अकूपार ४.१ पालक   अक्तु १.७ रात्रि
अक्र ४-३ प्राकार दुर्ग प्रभूत आदित्य समुद्र कूर्म
अक्षर १.११,१२ वाणी   अक्षाः ४.२ अश्नुते क्षरति   अक्षित १,१२ उदक
उदक   क्षियति   अगन् २.१ गति
अग्रिया ४.३ अग्रगत्या   अग्र १-१३,२.१ नदी अंगुलि   अघ्न्या २,११ गौ
अग्रसम्पादिनः श्रेष्ठ   अच्छ ४-२ अभि आप्तुम्   अचद्म ३.११ अपश्याम
अजगन् २-१४ गतिकर्मा   अजाः १-१५ अश्वा   अजिर २-१५ क्षिप्र
अजिरा १-१३ नदी   (पूष्णः) अजना:   अजीपः ४-३ भजति
अज्म २-१७, ३-४ संग्राम   अजु २-१५ क्षिप्र   अण्वी २.५ अंगुलि
गृह मार्ग   अतति २.१४ गच्छति   अत्य १.१४ अश्व
अथर्यु ४.३ सततगतिवाला   अथर्यः २.५ अंगुलयः   अदिति १,१, ११ २.११
अदिती ३.३० द्यावापृथिव्यौ श्रद्धा ३.१० अस्क पृथ्वी वाक् गौ ४-१ पर-
अद्भुवाति ३.१५ मेधावी   अद्भुत ३.३ महत् मात्मा अदीन अविनाशी
अद्मसत् ४-१ गृहपत्नी भविष्यत् आश्चर्य अद्रि १.१० मेघ पर्वत वज्र
अध्रिगु ४.२ वेदमन्त्र शा-   अध्वरम् १.३ अन्तरिक्ष   ... ...
सक अनष्टगति अनथक   अध्वरः यज्ञ   अध्वन् १-३ अन्तरिक्ष
परिश्रमी अज्ञेयगति   अनभिशस्त्य ३.८ अनर्वा ४-३ स्वतन्त्र स्वाश्रय
अनर्शराति ४.३ पुण्यदाता   प्रशस्य   अनेवद्य ३-८ प्रशस्य
अनानत ४.३ ... न   अनु २-३ मनुष्य   अनवाय ४-३ सम्पूर्ण
बालने वाला   अनिति २.१४ गच्छति   सज्जनानुमोदित
अनुष्टुप् १-११ वाक   अनेद्य .अनेमन् ३-८   अन्तम २.१६ अन्तिकतम
अन्तरिक्ष १-तीन   प्रशस्य   अन्धस् २-७ ४-२ अन्न
अन्न १-१२ उदक अन्न अपत्य २-२ सन्तान   तम अन्धा
अपारे ३-३० द्यावापृथ्वी   अपीच्य ३-२ अनिर्णीत   अपस् १-१२, २-१
अप्नः ३-७ रूप   अन्तर्हित अपचित   अप्नवाना २-४ बाहु
अप्नस् २.१,२ कर्म अपत्य रूप   अपगत अपहित   अप्रतिष्कुत ४-३ जो
अप्रायु ४-१ अप्रमादी   अप्वा ४.३ व्याधि भय   कभी स्खलित न हो

अष्टाध्यायी अध्याय ६ पाद एक

१०१ तस्माच्छसो नः पुंसि ॥

पुल्लिङ्ग में पूर्वसवर्ण दीर्घ से परे शस् के स को न हो— पुरुषान् कवीन् प्रभून् कर्तॄन् ॥

१०२ नादिचि

अ से इच् परे हो तो पूर्वसवर्ण दीर्घ न हो— नरौ यशोदे कुण्डे ।

१०३ दीर्घाज्जसि च ॥

और दीर्घ से परे जस् में भी न हो— कुमार्यौ कुमार्यः वध्वौ वध्वः ।

१०४ वा छन्दसि ॥

वेद में विकल्प से पूर्वसवर्ण दीर्घ हो— वाराही वाराह्यौ मारुतीश्चतस्र मारुत्यश्चतस्रः ।

१०५ अमि पूर्वः ।

अम् परे रहते पूर्वरूप हो— पुरुषम् कान्तम् वायुम् । वार्तिक— वेद में विकल्प से हो— शमीं शम्यन् गौरीं गौर्यं च ।

१०६ सम्प्रसारणाच्च ॥

और सम्प्रसारण से अच् परे हो तो पूर्वरूप हो— इष्टम् उप्तम् गृहीतम् ।

१०७ एङः पदान्तादति ॥

पदान्त एङ् से अ परे हो तो पूर्वरूप हो— कवेऽत्र प्रभोऽत्र ।

१०८ ङसिङसोश्च ।

और एङ् से ङसि-ङस् का अ परे रहते पूर्वरूप हो-अग्नेः वायोः ।

१०९ ऋत उत् ॥

ऋकारान्त से उनका अ परे रहते उ हो— कर्तुः पातुः ।

११० ख्यत्यात्परस्य ॥

कृत-यणादेश ख्य-त्य से परे अ के स्थान में उ हो— सख्युः पत्युः क्विबन्त सखीः और लूनीः स भी सख्युः और लून्युः बनेंगे ।

१११ अतो रोरप्लुतादप्लुते ॥

अप्लुत अ से अप्लुत अ परे रहते रु के स्थान में उ हो— पुरुषोऽत्र ।

११२ हशि च ॥

और हश् परे रहते रु को उ हो— पुरुषो वदति वालो हसति ।

११३ प्रकृत्याऽन्तः पादमव्यपरे ।

वेद में व य जिससे न परे हो ऐसा अ परे रहते पाद के मध्य का ए वैसा ही रहे— सुजाते अश्व सूनृते; उप प्रयन्तो अध्वरम् ।

११४ अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च ॥

इन ७ के परे रहते वेद में पाद के मध्य का एङ् प्रकृति से रहें— वसुभिर्नो अव्यात मित्रमहो अवद्यात मा शिवासो अवक्रमुः तेनो अव्रत शतधारो अयं मणिः ते नो अवन्तु कुशिकासो अवस्यवः ।

११५. यजुष्युरः ॥

यजुर्वेद में उरो प्रकृति से रहे— उरो अन्तरिक्षम् ।

११६ आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठे अम्बे अम्बिके अम्बालिके पूर्वे ॥

अ परे हो तो ये प्रकृति से रहें— आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु जुषाणो अग्निराज्यस्य वृष्णो अंशुभ्याम् वर्षिष्ठे अधिनाके अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मा न ति कश्चन (य, २३.१८) ,

११७ अङ्ग इत्यादौ च ॥

अंगे का ए तथा उसके पूर्व शब्द का ओ प्रकृति से हों— प्राणो अंगे अगे द ठ्यत् ।

११८ अनुदात्ते च कुधपरे ॥

कवर्ग तथा ध जिससे परे हों ऐसे अनुदात्त के परे एङ् प्रकृति से हो— अयं सो अग्निः अयं सो अध्वरः ।

११९ अवपथासि च ॥

अवपथाः रहते एङ् प्रकृति से हों— नी रुद्रेभ्यो अवपथाः ।

१२० सर्वत्र विभाषा गोः ॥

लोक तथा वेद में विकल्प से गो प्रकृति से हो– गोअग्रम् गोऽग्रम् ।

१२१ अवङ् स्फोटायनस्य ॥

स्फोटायन के मत में ओ को अवङ् हो... गवाग्रम् गोऽग्रम् ।

१२२. इन्द्रे च ॥

तथा इन्द्र परे रहते भी हो— गवेन्द्रः ।

१२३ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ॥

प्लुत तथा प्रगृह्य स्वर परे रहते नित्य प्रकृति से हों— धर्मदत्त३ एहि कवी इमौ ।

१२४. आङो ऽनुनासिकश्छन्दसि ॥

वेद मे आङ् को अनुनासिक हो, वह प्रकृति से रहे– अभ्र आँ अपः ।

१२५ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ॥

सवर्णभिन्न स्वर परे रहते शाकल्य के मत में इक प्रकृति से रहे तथा ह्रस्व भी हो— चक्री अत्र चक्रि अत्र चक्रयत्र ।

१२३. ऋत्यकः ॥

ऋ परे रहते अक् प्रकृति से तथा ह्रस्व भी हो- ब्रह्म ऋषि ब्रह्मर्षि ।

१२७ अप्लुतवदुपस्थिते ॥

अनार्ष इति परे रहते प्लुत अप्लुतवत् हो- सुश्लोक ३ इति

१२८ ई३ चाक्रवर्मणस्य ॥

चाक्रवर्मण के मत में ई३ अप्लुत हो-- चिनुहि ३ इदम् चिनुहीदम् जुहुधि३ इति जुहुधीति ।

१२९ दिव उत् ॥

पदान्त में दिव् को उ हो— सुद्युभिः ।

१३० एतत्तदोः,सुलोपो ऽकोरनञ्समासे हलि ॥

क-रहित एतद् तथा तद् के सु का लोप हो हल् परे रहते नञ्समास छोड़कर-- एष यज्ञदत्तः स रुद्रदत्तः ।

१३१ स्यश्छन्दसि बहुलम् ॥

वेद में स्य के सु का लोप बहुल करके हो- एषस्य भानुः ।

१३२ सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ॥

अच् परे रहते सु-लोप हो यदि पाद पूर्ण होता हो- सेमामविड्ढि [illegible] य ईशिषे । सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः सैष-कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः ॥

१३३, सुट् कात्पूर्वः ॥

क से पूर्व सुडागम हो— यह ६-१-१५४ तक अधिकार-सूत्र है ।

१३४ सम्परिउपेभ्यः करोतौ भूषणे ॥

सम्-परि-उप से कृ परे रहते भूषण अर्थ में सुट् हो- संस्कर्ता परिष्कर्ता उपस्कर्ता ।

१३५ समवाये च ।

तथा समुदाय में भी सुट् हो-- तत्र नः संस्कृतम्-परिष्कृतम् ।

१३६ उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु ॥

उक्त अर्थों मे उप से कृ परे रहते सुट् हो— उपस्कृता कन्या एधोदकस्य उपस्कुरुते, उपस्कृतं भुंक्ते उपस्कृतं ब्रूते ।

१३७ किरतौ लवने ॥

छेदन में किरति परे रहते सुट् हो- उपस्किरति ।

१३८ हिंसायां प्रतेश्च ॥

तथा हिंसा में प्रति से भी सुट् हो- प्रतिस्किरति ।

१३९ अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ॥

चौपायों-पक्षियों के आलेखन में अप से सुट् हो- अपस्किरते ।

१४० कुस्तुम्बुरूणि जातिः ॥

जाति में कुस्तुम्बुरूणि निपातन है ।

१४१ अपरस्पराः क्रियासातत्ये ॥

क्रिया के लगातार होने में अपरस्पराः निपातन है ।

१४२ गोष्पदं सेविताऽसेवित प्रमाणेषु ॥

सेवित, असेवित तथा प्रमाण अर्थों में गोष्पदम् निपातन है ।

१४३ आस्पदं प्रतिष्ठायाम् ॥

प्रतिष्ठा में आस्पदं निपातन है ।

१४४ आश्चर्यमनित्ये ॥

अनित्य में आश्चर्यम् निपातन है ।

१४५ वर्चस्के ऽवस्करः ॥

निन्दित वर्च मे अवस्कर निपातन है– अवस्करः अन्नमलम् ।

१४६ अपस्करो रथाङ्गम् ॥

रथ का अवयव अपस्कर निपातन है ।

१४७ विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा ॥

पक्षी वाच्य में सुट् विकल्प से निपातन होकर विष्किर, विकिर हों ।

१४८ ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे ॥

मन्त्र में ह्रस्व से चन्द्र उत्तर में हो तो सुट् हो– हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ।

१४९ प्रतिष्कशश्च कशेः ॥

कश से प्रतिष्कश निपातन है, यह सहायक या पुरोयायी होता है ।

१५० प्रस्कण्व हरिश्चन्द्रावृषी ॥

ऋषि वाच्य में ये दोनों निपातन हैं ।

१५१ मस्कर मस्करिणौ वेणु–परिव्राजकयोः ।

वेणु के लिए मस्कर तथा सन्यासी के लिए मस्करी निपातन हों ।

१५२ कास्तीराजस्तुन्दे नगरे ।

नगर के नाम में कास्तीर तथा अजस्तुन्द निपातन हों ।

१५३ पारस्कर प्रभृतीनि च संज्ञायाम् ।

संज्ञा मे पारस्कर आदि निपातन हों । पारस्कर देश, कारस्कर वृक्ष ।

१९५ वाँ गण– पारस्कर कारस्कर रथस्या नदी किष्कु प्रमाण किष्किन्धा गुहा, तस्कर चोर, बृहस्पति देवता पृष्तुम्पाति गौः प्रायश्चित्त प्रायश्चित्ति । यह आकृतिगण है ।

१५४ अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ।

पद मे एक उदात्त या स्वरित को छोड़कर शेष स्वर अनुदात्त हों– गोपायति ।

त त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै । [य ५-४२)

हे वनस्पति ! देवयज्ञ के लिए हम तुझे प्रयुक्त करते हैं। जैसे अच्छे कार्य के लिए बहुतों में एक को छाँटते हैं वैसे ही इसे छाँटते हैं और यह काटने-योग्य होता है। ७

देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्ताम् । (य ५-४२)

देव तुझे देवयज्ञ के लिए सेवन करें। जिसे देव शुभ कार्य के लिए सेवन करते हैं वह अवश्य अच्छा होता है, इसलिए यह कहा। ८

अब वह स्रुवा से उसे लेता है-

विष्णवे त्वा (य ५-४२) तुझे विष्णु के लिए। उसका यूप है, वह यज्ञ है उसके लिये ही उसे काटता है, अतः यह कहता है। ९

अब वह बीच में रखता तथा परशु चलाता है-

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः । (य ५-४२)

इस तरह वह वज्र परशु उसे हानि नहीं पहुँचाता १०

वह पहला टुकड़ा काटकर अलग रखता है। इस तरह काटे कि धुरा न टूटे क्योंकि वे उसे गाड़ी मे लजाते है अतः रुकावट नहीं होती।११

उसे पूर्व मे गिराये क्योकि वह देवों की दिशा है, या उत्तर में जो मनुष्यों की है, या पश्चिममे, दक्षिण में गिरने से बचाये क्यों कि वह पितरों की दिशा है। १२

गिरते हुए वृक्ष के सम्बन्ध मै कहे—

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या सम्भव । (य ५-४३)

वह वृक्ष वज्र हो जाता है जिसे यूप के लिए काटते है, इससे ये लोक काँपते है, इससे इसे शान्त करता है, अतः वह हानि नहीं करता। १३

अर्थ- द्यौ तथा अन्तरिक्ष को हानि न पहुंचा, पृथ्वी के अनुकूल हो।

अयं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। (य ५-४३)

[इस तेज परशु ने बड़े सौभाग्य के लिए तुझे आगे बढ़ाया है।]

यहाँ आगे बढ़ाता है। १४

अब ठूंठ पर आहुति देता है कि कहीं वहाँ से दुष्ट राक्षस (कीड़े) न निकल पड़े। घी वज्र है इससे उन्हें रोकता है, अथवा घी वीर्य है, वह इसे वनस्पतियों में रखता है जिससे वृक्ष पैदा होते हैं। १५

अब इस (य ५-४३) से आहुति देता है—

अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।

हे वनस्पति! तू इससे सौ अङ्कुरवाला होकर निकल तथा हम हजार अङ्कुर वाले होकर बढ़ें। इसमें सब सरल है। १६

अब वह उसे काटता है जितना पहले कटे उतना ही रहने दे। १७

५ हाथ भर काटे यज्ञ पांक्त है ५ भागोंवाला है, वर्ष में ५ ऋतु होती हैं अत, ५ हाथभर काटे।१८

या ६ हाथभर काटे। वर्षमें ६ ऋतुएँ होती हैं। वह-यूप वज्र है। या ६ हाथ भर काटे। १९

या ८ हाथभर काटे, ८ अक्षर का गायत्री-पाद होता है। गायत्री यज्ञ का पूर्वार्ध है अतः ८ हाथभर यूप काटे। २०

या ९ हाथभर काटे। यज्ञ तीन अंगवाला होता है तथा नौ तीन अंगोंवाला है अतः नो हाथ का काटे। २१

या ११ हाथ का यूप काटे। त्रिष्टुप् मे ११ अक्षर होते हैं, वह वज्र है अतः ११ हाथ का काटे। २२

या बारह हाथभर यूप काटे, वर्षरूपी वज्र में बारह मास होते हैं अतः १२ हाथभर काटे।२३

या तेरह हाथ का काटे, वर्ष में तेरह भी मास होते हैं, वह और वज्र हैं, अतः तेरह हाथभर काटे। २४

या १५ हाथ का काटे, १५ और यूप वज्र है अतः १५ हाथ का काटे। २५

वाजपेय यज्ञ का यूप १७ हाथ का होना है, या यह अपरिमित होता है, इसी से देवों ने अपरिमित को जीता। वैसे ही अपरिमित से यह अपरिमित को जीतता है, अतः वह अपरिमित भी हो सकता है। २६

यह ८ कोण का होता है। गायत्री के पाद में ८ अक्षर होते हैं, वह यज्ञ का पूर्वार्ध है। इसलिए इसे ८ कोण का होना चाहिए। २७

यह काण्ड ३ का अध्याय ६ समाप्त,

—※—

अध्याय ७ ब्राह्मणएक

नीचे लिखा मन्त्रांश पढ़कर अभ्रि (खुरपी) लेता है --

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे नार्यसि। (य ६·१)

[सविता देव के उत्पादन में मैं अश्विनों की बाहों तथा पूषा के हाथों से तुझे लेता हूं, तू नारी है] यह पहले भी आचुका है। स्त्री लिंग होने से अभ्रि नारी है १

यह पढ़कर गड्ढा खोदता है —

इदमहं रक्षसां ग्रीवा अपिकृन्तामि। य ६·१)

[मैं राक्षसों कि गरदन काटता हूं] यहकहकर कीड़े मारताहै। २

गड्ढा खोदता है. मिट्टी पूर्व की तरफ खोदता है, इतना कि जिसमें यूप का नीचे का भाग समा सके। इस तरह रखता है कि पूर्व का सिरा रहे। इतने ही कुश ऊपर रखता है। ऊपर यूप रखता है। पास में चषाल (जो यूप पर सिर के समान रक्खा जाता है)रखता है। जौ के युक्त प्रोक्षणियाँ रक्खी जाती हैं।३

यह यह पढ़कर जौ बोता है -

यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीः। (य ६,१)

[तू यव है हमसे द्वेष तथा शत्रुओं को दूर कर] जौ पर [illegible] छिड़कता है इससे उसे यज्ञ के लिए पवित्र करता है। ४

इस मन्त्रसे जल सींचता है—

दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा। ([illegible])

[द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथिवी के लिए तुझको] तात्पर्य यह है कि इन लोकों की रक्षार्थ तुझको जल से सींचता हूं। ५

प्रोक्षणी-पात्र मे बचा जल यह मन्त्र पढ़कर गड्ढे मे डालता है—

शुन्धन्तां लोकाः पितृषदनाः। (य ६-१)

[पितरों के रहने के लोक शुद्ध हों] जो कुआँ पितृदेवत्य खोदा था उसे शुद्ध करता है।६

अब कुश पूर्व तथा उत्तर को सिरा करके इस मन्त्र से रखता है—

पितृषदनमसि। (य ६-१)[तू पितृ-सदन है] वह वृक्ष के समान गाड़ दिया गया। ७

अब वह यूप को गड्ढे में डालता है। छाल वृक्ष का तेज है, उसे जो छील देते हैं वे मानो तेज सुखाते है। अतः छाल-सहित गाड़ता है। यजुःमन्त्र से शुद्ध किये हुए को ही गाड़ता है, अन्य को नहीं। ८

यह पढ़कर डालता है—

अग्रेणीरसि स्वावेश उन्नेतॄणाम् एतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति।
(य ६-२)

तू अगुआ है, उन्नेताओं को सरलतासे मिलने योग्य।वह तुझपर रहेगा' यह आगे से छीला गया है, वस्तुतः यह उसीपर खड़ा होगा।६

अब स्रुवा से घी लेकर आहुति देते हैं कि कहीं दुष्ट कीड़े उसे न सतायें। घी वज्र होता है, इससे क्रिमि नीचे से नहीं उठते। अब वह परिक्रमा करकेआगे की ओर उत्तराभिमुख बैठकर यूप पर घी लगाता है तथा होता से कहता हैं— घी-युक्त यूप के लिए मन्त्र पढ़; १०

वह यह मन्त्रांश य ६-२ पढ़कर घी लगाता है—

देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु [सविता देव तुझको मधु से युक्त करे] सविता देवं का प्रेरक है, यह यूप यजमान है, वहाँ जो कुछ है सब मधु है। इस तरह उसे इस सत्र के साथ सम्बन्धित करता है, तथा सविता प्रेरणा करता है।११

अब चषालको दोनों ओर घी लगाकर यूपपर यह पढ़कर रखता है—

सुपिप्पला भ्यस्त्वौषधीभ्यः।(य ६-२)[अच्छे फलवाली ओषधियों के लिए] यह उसका फल ही है जो बीच में सिकुड़ा-सा रहता है। वृक्ष में फल जुड़ा होता है, डंठल तथा फल के बीच का भाग सिकुड़ा होता है। १२

यूपका आगके सामनेका भाग यजमान है, इसपर घीरूपी रस ऊपर से नीचे तक लगाता है, मन्त्र-पाठ का आदेश देकर यूप उठाता है।१३

पुस्तक समीक्षा

यज्ञ मह्मा विज्ञान—लेखक श्री वीरसेन वेदश्रमी वेदविज्ञानाचार्य वेदसदन महारानी पथ इन्दौर (म०प्र०)। मूल्य २५. रु०

इस पुस्तक में सर्व साधारण की सुगमता से जानकारी के लिये अग्निहोत्र का अवलम्बन करके यज्ञ-विज्ञान के सभी पहलुओं पर बड़े सरल रूप में प्रकाश डाला है। जहाँ तक सम्भव हुआ है सर्व साधारण की जिज्ञासा के सभी रूपों का इसमें समावेश किया गया है।

मुनि गुरुदत्त—लेखावली। मूल्य १५ रु०

६० वर्ष बाद पुनः यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। शीघ्र मगाये।

पता—[illegible]

श्रीमद्भागवत पुराणमे व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ। मूल्य ५ रु०)

आचार्य [illegible] और स्वामी [illegible] का [illegible] भाष्य' का आलोचनात्मक अध्ययन। मूल्य २ रु०। इसमें डा० [illegible] मित्र शास्त्री द्वारा महर्षि दयानन्द वेद-भाष्य पर लगाए गये आक्षेपों का सप्रमाण उत्तर दिया गया है। दोनो पुस्तकों के लेखक डा० शिवपूजनसिंह कुशवाह शास्त्री एम० ए०। प्रकाशक दयानन्द वैदिक शोध संस्थान, ज्वालापुर, उ०प०। १ प्रति मंगानेवाले १ रु० धनादेश द्वारा भेज दें

वर्ष ११ अङ्क ६ जून १९८७ ❀ [illegible] ❀ ६०२१। ६२ शाक १०२

नमस्ते ! आपका वर्ष पूर्ण हो गया, कृपया वार्षिक शुल्क २०) शीघ्र भेजें।

दैनन्दिनी आषाढ़ २०४४

तिथि कृष्ण	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	३० अमा	
वार		शु	श	र	सो	मं	बु	गु	शु	श	र	सो	मं	बु	गु	शु
नक्षत्र		उ	मू	पू	श्र	ध	श	पू	उ	रे	अ	भ	कृ	रो	मृ	आ
तारीख जून	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	

तिथि शुक्ल	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५ पू	
वार		श	र	सो	मं	बु	गु	शु	श	र	सो	मं	बु	गु	शु	श
नक्षत्र		पुन	पुन	पु	श्ले	म	पू	उ	ह	चि	स्वा	वि	अ	ज्ये	मू	पू
तारीख जून	२७	२८	२९	३० जुला	१	२	३	४	५	६	७	८		१०	११	

ऐतरेय, शतपथ, निरुक्त सम्पूर्ण

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

प्रकाशक— विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ ६

ज्येष्ठ पूर्णिमा २०४४ वि०, ११-६-१९८७ ई० ।

मूल्य ऐतरेय ३०), शतपथ दोकाण्ड २०), निरुक्त ३०), शीघ्र मँगाइये

निवेदक— वीरेन्द्रमुनि अध्यक्ष, ओमप्रकाश शास्त्री मन्त्री

विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६

अनुकूल हवन-सामग्री

हमने आर्य यज्ञप्रेमियों के आग्रह पर संस्कार-विधि के अनुसार हवन सामग्री का निर्माण हिमालय की ताजी जड़ी बूटियों से आरम्भ किया है, उत्तम कीटाणु-नाशक, सुगन्धित तथा पौष्टिक तत्वों से युक्त यह हवन-सामग्री अत्यन्त अल्प मूल्य में प्राप्त है, सौ० मूल्य से पूर्ति कीजिये।
—योगी फार्मेसी, लक्सर रोड, डा० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ.प्र.)

××××××××××××××××××—

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस सेवा में संख्या

सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ श्री

वेद-ज्योति

वर्ष ११ अंक ७ जुलाई १९८७ ई.

शुचि, आषाढ २०४४ वि०, वेदसृष्टिसंवत् १९६०८५३०८८, दयानन्दाब्द १६४

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम०ए०

सहायक— विमला शास्त्री, सुधीन्द्रनाथ शास्त्री, ओजोमित्र शास्त्री,

विश्व वेदपरिषद् सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ दूरभाष ७३५०१

वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), एक प्रति २)

❀ उद्बोधन गीतिका ❀

[गिरिमोहन गुरु, होशंगाबाद म.प्र.]

भृगु ! उठो अंगिराओ ! उठो वेद की सब ऋचाओ ! उठो ।
कर्म का सोम तय्यार है इन्द्र ! भग ! देवताओ ! उठो ।
सरस्वती सिन्धु के तीर से साथ ले सब को आर्यो! उठो ।
गौ चुराने लगा पणि-तिमिर वज्र को आजमाओ उठो ।
देश धन-धान्य से पूर्ण हो सूक्त ऐसे सुनाओ, उठो ॥

❀ वेद-पथ पर हम बढ़ें फिर ❀

[श्री राधेश्यामआर्य, मुसाफिरखाना]

व्याप्त महि-मण्डल तिमिर जो नष्ट होवे मूल से ।
वेद का ध्वज लहलहाये अवनि-अम्बर-कूल से ॥
वेद-पथ पर हम बढ़ें फिर सत्य से अनुरक्ति हो ।
प्राण पण से प्रिय भरत भू से सतत नव भक्ति हो ।
दे सकें हम प्राण अपने दिव्य वैदिक धर्म पर ।
कर सकें सर्वस्व अर्पित दिव्य वैदिक धर्म पर ॥

सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या

क्रम १८, ऋषि सूर्या सावित्री, देवता सूर्या, छन्द अनुष्टुप्, स्वर गान्धार

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस् तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥(ऋ १०.४५.४०)

हे स्त्रि! जो तेरा पहिला विवाहित पति तुझको प्राप्त होता है, उस का नाम सुकुमारतादि गुणयुक्त होने से 'सोम', जो दूसरा नियोग से प्राप्त होता वह एक स्त्री से सम्भोग करने से 'गन्धर्व', जो दूसरे के पश्चात् तीसरा पति होता है, वह अत्युष्णतायुक्त होने से 'अग्नि'संज्ञक, और जो तेरे चौथे से लेके ग्यारहवें तक नियोग से पति होते हैं, वे 'मनुष्य' नाम से कहाते हैं ॥ समुल्लास ४

श्री जयदेवशर्मा कृत अर्थ- सोम प्रजा को उत्पादन करने का सामर्थ्य सबसे प्रथम कन्या को प्राप्त हो उसके अनन्तर गन्धर्व युक्त अंश रजोभाव प्राप्त होता है। हे कन्ये! तीसरे नम्बर पर अग्निके तुल्य उष्णताप्रधान तत्त्व तेरा पालक है। चौथा तेरा पालक तेरा पति होता है जो कि मनुष्य की सन्तान है।

श्री वैद्यनाथ शास्त्री कृत अर्थ — विवाहके योग्य वधू को सोमशक्ति पहली प्राप्त करती है, गृहस्थाश्रम वाली शक्ति रजो-दर्शन दूसरा प्राप्त करता है, ऊष्मा इसका तृतीय पालक है, इसका चतुर्थ पालक मनुष्य से उत्पन्न हुआ होता है।

❀ समाचार ❀

—आर्यसमाज [illegible] ने [illegible] को ११०००) पुरस्कार दिया।

– तेरह मईको हुई वि०वे०प० प्रबन्धसमिति की बैठक में गत मासों व वर्ष के आय-व्यय की स्वीकृति, रिक्त स्थानों पर श्री [illegible]सिंह, श्री लाड़लीप्रसाद की नियुक्ति और शोक-प्रस्ताव पारित किये गये।

—द०उपदेशक वि० टङ्कारा में प्रवेश पन्द्रह जुलाई तक होता रहेगा।

—आ०प्र० सभा हरयाणा की शताब्दी सफलता पूर्वक मनायी गयी।

—स्वा.सत्यपति के दर्शन-प्रशिक्षण-शिविर रोजड़ में ब्रह्मचारी प्रविष्ट हों।

--आगे लिखे व्यक्तियों के देहावसान पर हार्दिक शोक व्यक्त किया जाता है-

सर्वश्री चौधरी चरणसिंह, गिरिराजशरण रस्तोगी, श्यामलाल पांडेय, श्रीरकारा, श्रीकरणशारदा, जगन्नाथ प्र.केसरवानी, कोहली, बोंवती।

वेदाङ्ग निघण्टु निरुक्त कोश

अप्स ३,७ रूप अभक्ष्य

अभिख्या १,६ प्रज्ञा व्यापक

अभिचेतन ४-३ अभिधावत

अभीक २.१७ संग्राम समीप

अभीशु १.५ २.५ रश्मि अंगुलि लगाम

अभीशू २-४ बाहें

अभ्यर्द्ध यज्वा ४.३ प्रवृद्ध यज्ञकर्ता प्रवृद्ध दाता

अभ्यर्ध १.२१ अन्वेषण-कर्मा

अभ्र १ ११ मेघ

अम्भ १.१२ उदक

अमति ३.७ ४.३ रूप स्वयंसर्वज्ञता

अमत्र ४-३ महान् दुराधर्ष बड़ा पात्र

अमवान् ४-३ अमात्यवान् रोगयुत भृत्यों-सहित

अमा ३-४ गृह आत्मा अमित

अमिन, ४.३ महान् दुराधर्ष

अमीवा ४३ रोगोत्पादक क्रिमि

अर्भक। अर्भकम् ३.२, २६ ह्रस्व

अमूर ४-३ अमूढ़

अमृत १.२, १२ हिरण्य जल ज्ञान्

अम्ब १,३ २,१६ अन्तरिक्ष अन्तिक

अम्बु १.१२ जल

अम्भसी द्यावा-पृथिव्यौ

अम्भृण ३-३ महान्

अम्भस् १-१२ जल

अवत ३-२३ कूप आधार

अप्यय ४-३ आत्मविद्या

अयते २.१४ गच्छति

अया ३-२६ अनया

अययु २-१४ गतिकर्मा

अयस् १.२ हिरण्य

अरविन्द १.१२ जल

अरुण्यो गाव: १-१५ उषा के अश्व

अरुषति २-१४ गच्छति

अरुषी १.२ उषा

अरुष १.७ रूप १-१४ अश्व

अर्क २.७,२० ४.२ अन्न वज्र पूज्यदेव मंत्र अर्कवृक्ष

अर्चति ३-१४ पूजाकर्मा

अर्चिष् १-१७ ज्योति

अर्जुनी १.८ उषा

अर्जुन ३-७ रूप शुक्ल

अर्णस् १.१२ जल

अर्णा १.१३ नदी

अर्दति २.१४ गच्छति

अर्दयति २.१९ हन्ति

अर्य २.२२ ईश्वर

अर्वान १-१४ अश्व प्रेरक

अर्वाक् २.१६ अन्तिक

अलातृण ४.३ पूर्ण परिपक्व मेघ

अल्प ३.२ ह्रस्व

अवचाकशत् ३.११ द्रष्टा पश्यति

अवति २-१४ गच्छति

अवतिरति २-१९ हन्ति

अवनि १-१,११ २-५ पृथ्वी नदी अंगुलि

अवम अन्तमीके २-१६ समीप

अवस् १-७ अन्न

अविष्यन् २-८ [illegible]

अहि १-१०,१२ मेघ जल मार्ग

अव्यथि १-१४ अश्व

अरातु अश्नुते आनट् २-१८ व्याप्ति

अश्न अश्मन् १-१० मेघ पर्वत

अश्व १-१४ घोड़ा वीर्य

असक्रा ४-३ विमुक्त न होनेवाली

असश्चन्ती ४-२८ संभूत मिश्रित असमग्न संयुक्त

असामि ४-३ अनन्त प्रचुर

असिक्नी १-७ रात्रि

[illegible] ४-३ न जाने दूर

असुर १-१० मेघ दुष्ट जन

असु -१ प्रज्ञा

असूर्त ४-३ वातसमीरित मेघ

अस्कृधोयु ४-३ दीर्घायु अविनाशी

अस्त ३-४ गृह

अस्मे ४-३ हम हमें हमसे हमारे लिए हमारा हममें

आष्टे आपानः २- व्याप्ति

आपान्तमन्यु ४-२ मन्युयुक्त

आपः १-३, १२ जल अन्तरिक्ष समुद्र चन्द्रकिरण

आयु २-३ मनुष्य वायु

आयुष् २-७ अन्न

आरे ३-२६

आवयति २-८ खाता है

आशिर् ४-३ दूध

अस्तु [illegible] ४-१ [illegible]

अस्नेमन् ३-८ प्रशंस्य

अहना १-८ उषा

अही २-११ ३-३० गौ द्यावापृथिवी

अह्नाय ३-७ पुरातन

अह्याण ४-२ श्रेष्ठकर्मी

आ इ [illegible] ४-२ उपमार्थाची इव

आकाश १-३ अन्तरिक्ष

आकीम् आकृतम् ३-१२ सद

आके २-१६ अन्तिके दूरे

आकेनिप ३-१५ मेधावी

आक्रन्द आजि आणि २-१७ संग्राम

आघ्नाण: आनशे २-१८ आश्नुवानः

आखण्डल आनिरन २-१६ यज्ञकर्मी

आगनीगन्ति २-१४ भृशं गच्छति

आघृणि ४-२ क्रोधयुक्त दीप्तियुक्त

आङ्गूष ४-२ वेद

आचके २-६ चाहता

आताः आष्ठाः आशा १६ दिशाएं

आधव ४-३ प्रेरक

आनुषक् ४-३ निरन्तर नियमपूर्वक

आसात् २-१६ समीप से

आहनः ४-२ असभ्यभाषिणी

आहनस् ४-१ उपदेष्टा

आयती २-४ बाहु

आयुध आक्या: १.१२ जल

आरित ४,२ वेदानुसार चलनेवाला

आर्ति २-१४ गच्छति

आशिष् ३-२ प्रार्थना

आशु २-१५ क्षिप्र अश्व

आशुशुक्षणि ४.३ शीघ्रातिशीघ्र [illegible] ४-१२ सर्व

नाशकर्ता, दीप्ति से नाशकर्ता,प्रकाश से देनेवाला,पूर्दीप्ति-इच्छुक।

इ—ई

इत्था ३.१० ४.२ सत्य ऊप तरह | इरा इरावती ३-२२ नूतन
इम इंदु इस प्रकार यहाँपर | इदंयु इन्दु १-१२, ३.१७ जल यज्ञ
इदवु ४.३ इसकी कामनावाला | इन दो-बाइस ईश्वर बली गम्भीर
इन्द्रिय २-१० धन | इन्वति इयक्षति इयर्ति २.१४ गच्छति
इरज्यति दो.११,३.५ ईष्टे परिचरति | इरा दो-७ अन्न
इरावती १-१३ नदी | इरीरिरा ३.३ भूमिके अन्दर वासी
इव ३ १३ उपमावाची पदपूरक | इषति ईङ्खते ईर्ते ईषति ईहते २ १४ जाना
इषिर ४.१ गयाहुआ कामनायुक्त | इषुध्यति ईमहे तीन-१९ याचनी
इष् दो-७ अन्न | ईळे ४-तीन ईशिषे
इष्टि तीन-१७ यज्ञ | ईम् १.११ ४-दो जल वीर्य एनम्
इष्मिन् ४.१ क्रियाशील आप्तकामा | ईर्मान्त ४-१ विस्तृतान्त
इळा १-१, ११ दो. ,११ पृथ्वी वाणी अन्न गौ

उ

उक्थ्य तीन-८ प्रशस्य | उक्ष उक्षित तीन-तीन महान
उत्स तीन-२३ कूप मेघ | उदक १-बारह जल चन्द्र
उपजिह्विका तीन-२९ दीमक | उपब्दि १-११ वाणी
उपमे उपाके दो-१६ समीपे | उपर उपल १-१० मेघ यूप-भाग
उपरा १-६ दिशा | उपलप्रक्षिणी ४-तीन भड़भूजी
उपसि ४-तीन समीप स्थान में | उराण ४-तीन बहुकर्मा
उरु तीन-१ बहुत | उर्वशी ४—दो विद्युत् स्त्री
उर्वी १-१, १३ ६-१३ पृथिवी | उल्ब ४-तीन आवरण
नदी द्यावापृथिव्यौ | उशिक् दो.६ ३.१५ कामनावान् मेधावी
उश्मसि दो—६ कामयामहे | उस्रा उस्रिया १-५ दो.११ रश्मि गौ

ऊ

ऊति ४.२ रक्षा गति शोभा मार्ग | ऊधस् ऊर्म्या १—७ रात्रि
ऊर्ज् दो—७ अन्न | ऊर्जस्वती उर्वी १-तेरह नदी
ऊर्दर तीन—२९ धान्यकोष्ठ

ऋ

ऋच् १—११ वाणी मन्त्र स्तुति | ऋक्षी तीन—२९ नक्षत्र
ऋ तीन ३.३ ऋतुथ अर्थपूरक ऋग्मी ऋचीष ... ४.१२ ...

ऋजुनीतो ४-२ सत्यनीत्या ऋणत्ति दो-१५ मारता है
ऋ धुवि ऋण्नोति ३-५ परिचरति ऋतं १-१२ दो-१० ३-१० उदक सत्य
ऋतस्य योनि: १-१२ जल धन वीर्य यज्ञ धाम शकट
ऋदूदर ऋदूप ४-३ सोम आदि ऋधक ४-१ पृथक समृद्धि समृद्धियुक्त
हल्के भोज्य पदार्थ ऋबीस ४-१ पृथिवी
ऋभु तीन-१५ मेधावी ऋभुक्षा: ऋष्व तीन-तीन महान्
ऋश्यद् तीन-तेइस कूप ऋहम् तीन-दो ह्रस्व

ए

एजति एति दो-तेरह गच्छति एतश एतग्व १-१४ अश्व
एनम् एनान् ४-दो इसको एना एनेन तीन-२६ इससे
एनी १-१३ नदी एरिरे ४-१ प्राप्त करते है
एह दो-तेरह क्रोध

ओ

ओजस् १—१२ क्रोध बल ओण्यौ तीन—तीस द्यावापृथिव्यौ
ओवती १-८ उषा ओदन १—१० मेघ
ओम ओमना ४-३ अवनाय ओष दो—पन्द्रह शीघ्र

औ

औच्चै:श्रवस १—१४ अश्व

क

ककुभ् एक—६ दिशा ककुह तीन—तीन महान्
कक्ष्या दो.५ अङ्गुलि अश्वरज्जु कण्टति दो—चौदह गच्छति
कण्व तीन-१५ मेधावी कत्पय ४.३ सुखकारी जल वाला
कनक एक—दो हिरण्य कनति दो-६ कामयते
कपन ४-तीन क्रिमि कम् तीन.६ सुख १-१२ जल अन्न
कम्पते दो—बारह क्रुध्यति करण करन्ती करस् करिक्रत् करुण
करस्नौ दो —४ बाहू कर्तवे कर्तो: कर्त्वं कर्वर दो १ कर्म
करूलती ४-तीन अहिंसक बाल्व कर्त काट कातु कारोतर ३.२३ कूप
कल्मलीकिन् एक-सत्रह ज्योति कवते कसति कालयति दो-१४ गच्छति
कबन्ध कश एक—बारह जल कवि तीन—१५ मेधावी
कशा काकुत् एक—११ वाणी काकुद ४—दो तालु
काञ्चन एक-दो हिरण्य काणुका ४.दो पदीप्त प्राप्त निर्गत आदि
कानिषत् दो-६ कान्तिकर्मा कायमान ४,१ देखता हुआ चाहता हुआ

वेद-विषय विचार

[आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ]

क—करपात्री हरिहरानन्द, द—महर्षि दयानन्द सरस्वती

४०— द ने अग्निर्देवता० काठ यजु १४ २० के प्रमाण के द्वारा बताया कि इन देवता की अनयुक्त छन्द तथा मन्त्र देवता कहे जाते हैं। इसको क ने मन्द-बेकार-निर्मूल बताया। यथार्थ में क ही का कथन बेकार तथा निर्मूल है। मन्त्रार्थ बिलकुल ठीक तथा उपयुक्त प्रमाण है।

द के वचन कुछ भी भ्रान्ति-जनक नहीं। इसका महीधर का अर्थ याज्ञिक है कि इसको पढ़ कर वेदि में १२ ईंटें चुने —यह विनियोग परवर्ती है। आदि सृष्टि में मिले वेद के इस मन्त्र का सत्यार्थ महीधर तथा उनके अनुयायी क को भी नहीं सूझा।

निरुक्त के देवता-सम्बन्धी प्रमाण को भी असम्भव बताते हुए क ने लिखा— मुखमस्तीति वक्तव्य दशहस्ता हरीतकी। हम भी क की बात असम्भव बताते हुए कहते हैं— तुम्हारे मुख है इसलिए तुम हरड़ को दस हाथ लम्बी बता सकते हो।

द के दिये निरुक्त के दूसरे प्रमाण को भी क ने असम्भव बताया है जो ठीक नहीं। उसमें कहा गया कि 'कर्मों की सम्पत्ति (सम्पन्नता) मोक्ष है और उसे बताने वाला मन्त्र वेद में है।' इसलिए उस मन्त्र को देवता कह सकते हैं— यह प्रमाण द के कथन का पोषक है।

४१—भू० के पृष्ठ ६८ पर लिखे प्रकरण को क ने परस्पर-विरुद्ध, हेय बताया जो दुर्ग-भाष्य के अन्धानुकरण के कारण है। निरुक्त के उनके अर्थ को हेय क्यों नहीं बताया? द के हो अर्थ को अशुद्ध बताना द्वेष-बुद्धि ही है।

४२— क ने सूर्य तथा आदित्य को एक ही मानकर आक्षेप किया, किन्तु ये दोनों शब्द तथा उनके अर्थ (सूरज तथा १२ मास) भिन्न हैं अतः आक्षेप रद्द।

४३— द ने लिखा— स कामदेवता भवति अर्थात् कामना भी एक देवता है। क ने इस अर्थ को गलत बताया। वस्तुतः अर्थ ठीक है जो क की समझ से बाहर रहा।

४४— निरुक्त के प्रमाण में यज्ञ को भी देवता बताया गया है। क ने मूल के विरुद्ध और असंगत बताया किन्तु उनका कथन ठीक नहीं। एक अर्थ यज्ञ भी मानने में आपत्ति क्यों?

४५– क ने देवताके 'मन्त्र-ईश्वर' अर्थों को द की नवीन आविष्कार बताया (पृष्ठ ५९३), किन्तु यह नवीन नहीं, क्योंकि भास्कराचार्य ने भी ये अर्थ किये हैं। क का प्रश्न कि 'ये मन्त्र किसके देवता हैं' बड़ा अटपटा तथा व्यर्थ है। मन्त्र तो स्वयं देवता हैं, किसके ? यह प्रश्न ही निरर्थक है ।

४६– क ने आपत्ति की कि नाराशंस का अर्थ 'मनुष्यों का प्रतिपादन करनेवाले' ठीक नहीं, क्योंकि मनुष्य अल्पबुद्धि होने से दुरूह मन्त्रों को समझ नहीं सकता। किन्तु उनकी आपत्ति व्यर्थ है, इस तरह तो सभी मन्त्र दुरूह हो जायेंगे तथा किसी का अर्थ समझा न जा सकेगा ।

नाराशंस के कल्क के दो अर्थों (अग्नि-आत्मा) के साथ द का तीसरा अर्थ (विशिष्ट मनुष्यों के प्रशंसक मन्त्र) भी शुद्ध है। इससे वेद में इतिहास न समझना चाहिए, सामान्य की प्रशंसा है व्यक्तिविशेष की नहीं ।

४७– द ने लिखा कि 'दान शब्द से ईश्वर और विद्वान् की देवता संज्ञा है।' इसे क ने तोड़-मरोड़कर कर दिया कि ईश्वर विद्वान् देवता कहलाते हैं ।

४८– द के किये पुरस्थान के अर्थ पर क को आपत्ति है (पृष्ठ ६००) द ने ४ अर्थ बताये— किरण-आदित्यरश्मि-प्राण-सूर्य क ने केवल यज्ञाग्नि, किन्तु इसे सिद्ध न कर सके ।

४९— न तत्र ० (कठोपनिषद् ५.१५) में द ने ईश्वर का ही वर्णन बताया किन्तु देषबुद्धि क ने इसे भी ठीक नहीं बताया और नेदं यदिदमुपासते (केन) से इसका विरोध बताया किन्तु वस्तुत: उसकी समझ का फेर है, विरोध कुछ भी नहीं, क्योंकि केन में इदम् से तात्पर्य इस भौतिक जगत से है ।

५०— यजुः ४०.४ में आये अर्षद् शब्द पर क ने आपत्ति की कि यह काण्व शाखा का है जिसे द मूलवेद नहीं मानते. किन्तु यह व्यर्थ है. मूल न मानने पर भी शाखा वेद तो मानते ही है। यह भी सम्भव है कि द ने अर्षद् बोला हो किन्तु लेखक ने उसे अर्शद् लिख दिया हो ।

५१— द ने स्तुति का अर्थ गुण-दोष-कीर्तन किया जिस पर क ने आक्षेप किया कि केवल गुणों का ही वर्णन स्तुति है दोषों का नहीं । यह आक्षेप ठीक नहीं क्योंकि स्तु का अर्थ वर्णन करना है। ईश्वर में दोष नहीं अत: केवल गुण-वर्णन उसकी स्तुति है, अन्य सांसारिक पदार्थों में दोष भी होते हैं अत: उनका भी वर्णन स्तुति में आ सकता है। इस तरह द का किया अर्थ ठीक है ।

५२— निरुक्त ७.४ की द की व्याख्या को क ने सब असङ्गत कहा (पृष्ठ ६०४) उसने पुरुष-सम्बद्ध दुर्ग-व्याख्या ठीक बताई। समीक्षा से विदित होता है कि दुर्ग-व्याख्या दूषित तथा द की व्याख्या सार्वभौम-व्यावहारिक एवं तर्क-संगत है। दुर्ग ने देवतात्मा को प्रकृति-विकृति भेद से बहुधा वर्णित बताया, किन्तु अखण्ड परमात्मा के दो भेद तथा विकार नहीं हो सकते, प्रकृति उससे भिन्न नित्य है। अतः द की ही व्याख्या ठीक है।

५३— द ने तेंतीस देवताओं के समर्थन में निम्नाङ्कित मन्त्र दिया—

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्।
विदन्नह द्वितासनन्॥ [ऋ ८.२८.१]

इसका अर्थ द ने नहीं दिया। क ने सायण का अर्थ दिया है कि तेंतीस देव आसन पर आकर बैठे, यह अर्थ अशुद्ध है क्योंकि पृथ्वी वायु आदि न कभी आसन पर बैठते और न बैठ सकते हैं। बर्हि का अर्थ निघण्टु १.३ में आकाश है जहाँ सब देव स्थित हैं।

५४— तेंतीस देवों के समर्थन में द ने यजुर्वेद १४,३१ का प्रमाण दिया जिसमें क ने देवों के स्थान पर यज्ञ की ईंटों का वर्णन माना। इसकी शतपथ द्वारा की गयी व्याख्या क नहीं समझे क्योंकि वहां १४.६.९.३-५ में तेंतीस देव स्पष्ट गिनाये हैं जिन्हें बताने के लिए ही यज्ञ की तेंतीस ईंटें बताई गई हैं जो प्रजापति का रूपक अलङ्कार में वर्णन है—

दस पादाङ्गुलियां = ८ वसु और आद्यन्त के २ आदित्य (चैत्र फाल्गुन)
दस हस्ताङ्गुलियाँ = शेष बचे दस आदित्य।
दस प्राण और एक आत्मा = ग्यारह रुद्र।
२ प्रतिष्ठा (पैर) = इन्द्र और प्रजापति (यज्ञ)

इस तरह 'शतपथ-वचन तो सर्वथा आपके प्रतिकूल है'— यह क की बात खण्डित हुई।

५५— तेंतीसवें देव प्रजापति का अर्थ द ने शतपथ के अनुसार यज्ञ (और उसका अर्थ पशु) बताया जिसपर क ने आपत्ति की जो निराधार है, पशु और यज्ञ जनता के रक्षक हैं अतः प्रजापति हैं।

५६ — शतपथ में दो देव (प्राण-अन्न) तथा एक ब्रह्म भी बताया, उनके मध्य वायु को अध्यर्ध बताया जिसके दो अर्थ है—डेढ़ तथा समृद्धिकर्ता. द ने केवल दूसरा ही माना जिसे शतपथ ने भी माना; किन्तु

क को इसपर भी आपत्ति है जो तुच्छ और व्यर्थ है।

५७— द के द्वारा स्वद् से एक ब्रह्म बताने पर क ने दोष बताया, जो ठीक नहीं क्योंकि ब्रह्म को ही प्राण (एक वचन) कहा है— प्राणाय नमः; ...(अथर्व ११.४.१)। अब पहले रुद्रों में दस प्राण गिना दिये तो यहाँ एक प्राण ब्रह्म ही सिद्ध हुआ।'

❀ उपासना—विषय ❀

५८— द ने पूछा कि क्या वे सभी उपास्य हैं, इसपर क ने आपत्ति की कि यह प्रश्न अप्रकृत है और द की व्याख्या में दोष है। (पृष्ठ ६१५) किन्तु यहाँ कोई दोष नहीं क्योंकि यज्ञका अर्थ देवपूजा है इसलिए यह विषय इसी क्रममें है, कर्मके बाद उपासनाका उल्लेख होना ही चाहिए व्यर्थ आक्षेप करना तो द्वेषी क के स्वभाव में ही है।

५९— निरुक्त ९.२८ की द की व्याख्या को क ने उच्छृंखल बताया (पृष्ठ ६१६) किन्तु यह तो क की ही उच्छृंखलता है। शतपथ के साथ निरुक्त में बताये तीन लोक भी सम्बद्ध हैं।

६०— 'अत......मन्यते' (पृष्ठ ७८) ये प्रश्नोत्तर क को बहुत खटके शायद इसलिए कि ये उन जैसे जड़पूजकों से सम्बद्ध हैं। क ने इसीसे इन्हें असम्बद्ध बताया जो उचित नहीं क्योंकि पूर्वापर की संबद्धता बराबर बनीहुई है। क का यह कहना भी असत्य है कि वेदमें एकेश्वरोपासना का विधान नहीं। उदाहरणार्थ ये दो मन्त्र देखें—

कस्मै देवाय हविषा विधेम [ऋ १.१६४.४६, य ३ .६]

यस्व विश्व उपासते [य २५.१३]

६१- वेदा० के पृष्ठ ६२१ पर क ने लिखा है कि अग्नि भी जो इष्टोपयोगी है अतः उपास्य है; किन्तु वे समझे नहीं। अग्नि व्यवहार्य भी है, ईश्वर व्यवहार्य नहीं' केवल इष्ट और उपयोगी है।

इस स्थल पर तो क ने अनौचित्य की पराकाष्ठा करदी जब उनने लिखा— 'वास्तवमें तो स्वामी दयानन्द बायबिल, कुरान आदि अनार्य ग्रन्थों से प्रभावित होने के कारण ही यह मानने लगे हैं कि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई उपास्य नहीं' है'। जब वेद में एकेश्वरोपासना के प्रतिपादक बहुत मन्त्र हैं तब अनार्य ग्रन्थों के खण्डन-कर्ता को ऐसा बताना घोर अपराध है। द ने वेदों के सोलह तथा उपनिषदों के दस प्रमाण दिये हैं यहाँ केवल तीन दिये जाते हैं—

य एक इत्तमु ष्टुहि '[ऋ ६.४५.१६]

स एष एकवृदेक एव।[अथर्व १३.४.१२]

पतिरेक आसीत्। [ऋ १०.१२.१ य २३.१]

१५५ कर्षात्वतो घञो ऽन्त उदात्त ।

कर्ष और आ वाले घञन्त धातु को अन्तोदात्त हो-कर्ष पाकस्याग ।

१५६.उञ्छादीना च ।

उञ्छ आदि को अन्तोदात्त हो— उञ्छः । १९६ वा बहु-

खञ्छ म्लेञ्छ जञ्ज जल्प गर परिष्टृत संयुत परिश्रुव उत्तम आदि

१५७ अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ।

जहां उदात्त का लोप हो उस अनुदात्त को उदात्त हो – कुमारी ।

१५८ धातोः ।

धातु को अन्तोदात्त हो— पठति पचति ।

१५९ चितः ।

चित् को अन्तोदात्त हो— भंगुरम् भासुरम् मेदुरम् ।

१६०.तद्धितस्य ।

तद्धित चित् अन्तोदात्त हो— कौञ्जायनाः ।

१६१ कितः ।

तद्धित के कित् को उदात्त हो— नाडायनः चारायणः ।

१६२ तिसृभ्यो जसः ॥

तिसृ से परे जस् उदात्त हो— तिस्रस्तिष्ठन्ति ।

१६३.चतुरः शसि ।

शस् परे हो तो चतुर् को उदात्त हो- चतुरः पश्य ।

१६४ सावेकाचस् तृतीयादिर्विभक्तिः ॥

सु में एकाच से परे तृतीयादि विभक्ति उदात्त हो- वाचा वाग्भ्याम् ।

१६५ अन्तोदात्तादुत्तरपदादन्यतरस्यामनित्यसमासे ।

नित्य समास छोड़कर अन्तोदात्त उत्तरपद से तृतीयादि विभक्ति विकल्प से उदात्त हो— परमवाचा ।

१६६ अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम् ॥

वेद में अञ्च् से परे सर्वनामस्थान से भिन्न विभक्ति उदात्त हो- इन्द्रो दधीचो अस्थभिः ।

१६७ ऊडिदम्पदाद्यप्पुम्रैद्युभ्यः ।

इनसे परे सर्वनामस्थान से भिन्न विभक्ति उदात्त हो— प्रष्ठौहः एभिः । पदादि से पद्दन्नोमासहृन्निश् ये ६ लिये जाते हैं- निपदश्चतुरो जहि या दतो धावति ग्रीवायां बद्धोऽपि कक्ष आसनि मर्त्यं न

दीन उदनि च्चियन्तम् । अप: पश्य पुम्स्नाम् राय; पश्य दिव; पश्य ।
१६८ अष्टनो दीर्घात् ।
दीर्घ अष्टन् से परे सर्वनामस्थान-भिन्न विभक्ति उदात्त हो— अष्टाभि: ।
१६९ शतुरनुमो नद्यजादी ॥
तुदभि: । शतृ से परे सर्वनामस्थान-भिन्न नदी-अजादि विभक्ति उदात्त हो— तुदती तुदतो तुदता तुदता ।
१७० उदात्तयणो हल्पूर्वात् ॥
हल्पूर्व उदात्त यण से परे नदी-अजादि सर्वनामस्थान-भिन्न विभक्ति उदात्त हो— चोदयत्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । कर्त्री कृत्र' ।
१७१.नोङ् धात्वो:
ऊङ् तथा धातु के यण से परे उदात्त न हो— ब्रह्मबन्ध्वै मकल्लवे ।
१७२ ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् ॥
ह्रस्व तथा नुट् से परे मतुप् उदात्त हो— वायुमान् गीर्वत्ता ।
१७३.नामन्यतरस्याम् ।
नाम विकल्प से उदात्त हो— वायूनाम ।
१७४ ङ-याश्छन्दसि बहुलम ।
वेदमें बहुलता से ङ-प्रत्यय से नाम् उदात्त हो— भक्तीनाम् ।
१७५ षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादि: ।
षट् , त्रि और चतुर् से परे हलादि विभक्ति उदात्त हो— षण्णाम् षड्भि; षड्भ्य: पञ्चानाम् दशानाम् त्रिभि त्रिभ्य: त्रयाणाम् चतुर्णाम् चतुर्भ्यः ।
१७६ झल्युपोत्तमम् ।
उक्त से परे झलादि विभक्ति में उपोत्तम उदात्त हो— पञ्चभिस्तपस्तपति सप्तभि: त्रिशता चतुर्भि: ।
१७७ विभाषा भाषायाम् ॥
यह लौकिक भाषा में विकल्प से हो— त्रिभि: पञ्च चतुर्भि: ।
१७८ न गोश्वन् साववर्ण राडङ् क्रुङ् कृद्भ्य: ॥
इन ६ से परे उक्त न हो— गवा सुशुना शुना । सु परे रहते जो अवर्णान्त— येभ्य: तेभ्य: तेभ्य: । राजा प्राङ्चा क्रुञ्चा कृता ।
१७९ दिवो झल् ।
दिव् के परे झलादि विभक्ति उदात्त न हो— द्युभ्याम् द्युभि: ।
१८० नृ चान्यतरस्याम ॥
नृ से परे झलादि विकल्प से उ० हो— नृभि: '

१८१. तित्स्वरितम् ॥

तित् प्रत्यय स्वरित हो— चिकीर्ष्यम् जिहीर्ष्यम् कार्यम् हार्यम् ।

१८२ तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः

ह्नुङ् और इङ् वर्जित तासि अनुदात्तेत ङित् तिङ् और अनुपदेश धातुओं के परे ल सार्वधातुक प्रत्यय अनुदात्त हो- कर्ता आस्ते शेते सूत पठतः पठन्ति ।

१८३ आदिः सिचोऽन्यतरस्याम् ॥

सिच का आदि विकल्प से उदात्त हो— माहि काष्टाम् ।

१८४ स्वपादिहिंसामच्यनिटि ॥

अजादि अनिट् परे रहते स्वपादि और हिंस का आदि विकल्प से उदात्त हो — स्वपन्ति हिंसन्ति।

८५ अभ्यस्तानामादिः ।

अभ्यस्तों का आदि उदात्त हो- ददति दधतु जाग्रति ।

१८६. अनुदात्ते च ।

और उदात्तरहित परे रहते भ उदात्त हो— दधासि जिम्भाते ।

१८७ सर्वस्य सुपि ।

सुप् परे हो तो सर्व का आदि उदात्त हो— सर्वः स र्वौ सर्वे ।

१८८ भीह्रीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरां प्रत्ययात् पूर्वं पिति ॥

भी आदिको प्रत्यय से पूर्व उदात्त हो— बिभेति जिह्रेति बिभर्ति। जुहोति ममत्तु नःपरिज्मा अजनदिन्द्रम् दधनत् दरिद्राति जागर्ति

१८९ लिति ॥

लित् परे हो तो पूर्व उदात्त हो- चिकीर्षकः जिहीर्षकः ।

१९० आदिर्णमुल्यन्यतरस्याम् ॥

णमुल परे हो तो अभ्यस्तों का आदि विकल्प से उदात्त हो— लोलूयंतोलूयम् ।

१९१. अचः कर्तृयकि ।

कर्ता में यक परे हो तो अजन्त धातु का आदि विकल्प से उ० हो— लूयते केदारः स्वयमेव ।

१९२ थलि च सेटीडन्तो वा ॥

सेट् थल परे हो तो इट् उदात्त हो, अन्त-आदि विकल्प से उदात्त हो— लुलविथ ।

१९३ ञ्नित्यादिर्नित्यम् ॥

ञित्-नित् परे हो तो आदि सदा उदात्त हो—गार्ग्य वत्स्य वासुदेवकः अजनकः ।

१९४ आमन्त्रितस्य च ।

और आमन्त्रित का आदि उदात्त हो — देवदत्त ।।

१९५ पथिमथोः सर्वनामस्थाने ।।

पथिन् और मथिन् का आदि उदात्त हो— पन्थाः मन्थाः ।

१९६ अन्तश्च तवै युगपत् ।।

तवै प्रत्ययान्त का आद्यन्त एक-साथ उदात्त हों— कर्त्तवै हर्त्तवै ।

१९७. क्षयो निवासे ।

निवास अर्थ में क्षय आद्युदात्त हो— क्षये जागृहि प्रपश्यन् ।

१९८. जयः करणम् ।

करणवाची जय आद्युदात्त हो - जयोऽश्वः ।

१९९. वृषादीनां च ।

और वृष आदियों का आद्युदात्त हो— १९७ वाँ गण—

वृष जन ज्वर ग्रह हय गय नय तय पय वेद अंश दस सूद गुहा— भिदादि शम रण मन्त्र शान्ति काम याम आरा धारा कारा वह कल्प पाद । यह आकृतिगण है ।

२०० सञ्ज्ञायामुपमानम् ।

संज्ञा में उपमान आद्युदात्त हो— चञ्चा । दद्रुभिका ।

२०१ निष्ठा च द्व्यजनात् ।

निष्ठान्त द्व्यच का आदि उदात्त हो अ को छोड़कर— गुप्त बुद्ध ।

२०२. शुष्कधृष्टौ ।

ये दोनों आद्युदात्त हों ।

२०३. आशितः कर्ता ।

कर्तृवाची आशित आद्युदात्त हो— आशितो देवदत्तः ।

२०४. रिक्ते विभाषा ।

रिक्त में विकल्प से आद्युदात्त हो— रिक्तः ।

२०५. जुष्टार्पिते च च्छन्दसि ।

छन्द में जुष्ट और अर्पित विकल्प से आद्युदात्त हों ।

२०६. नित्यं मन्त्रे ।

ये मन्त्र में नित्य आद्युदात्त हों— जुष्टं देवानामर्पितं पितॄणाम् ।

२०७ युष्मदस्मदोर्ङसि ।

ङस् परे हो तो युष्मद्-अस्मद् का आद्युदात्त हो— तव मम स्वम् ।

शतपथ का ३अ, ७ब्राह्मण एक

अध्वर्यु इस मन्त्र को पढ़कर यूप उठाता है–

द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृंहीः । य ६.२

[तूने अग्रभाग से द्यौ को छुआ, मध्य से अन्तरिक्ष को, नीचे से पृथ्वी दृढ़ की।] १४

अब वह यह मन्त्र (य ६.३ पढ़कर) उसे गाड़ता है–

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि ॥

[हम तेरे उन धामों में जाना चाहते हैं जहाँ बहुत सींगों वाली सूर्य-किरणें रहती हैं, वहाँ वस्तुतः विशाल विष्णु के परम पद की ज्योति बहुत चमकती है] इस त्रिष्टुप् से गाड़ता है जो और यूप वज्र हैं ।१५

अब सामने का भाग अग्नि की ओर कर देता है क्योंकि यजमान उस के सन्मुख होता है। यदि उसे न फेरा जाय तो यजमान का मुख फिर जाय अतः उसका मुख अग्नि की ओर कर देता है। अब उसके चारों ओर मिट्टी डालता है जिसे दबा दबाकर उसपर जल डालता है ।१६

अब इसे छूकर यजमान से कहलाता है–

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ (य ६.४, ऋ १.२२.१६)

[विष्णु के कर्मों को देखो जिससे नियम बँधे हैं, जो इन्द्र (जीवात्मा और बिजली) का योग्य सखा है] इन्द्र यज्ञ का है, विष्णु यूप का है. उसे इन्द्र-सहित करता है। १७

अब यह पढ़कर चषाल को देखता है—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ (य ६.५, ऋ १.२२.२०)

[विष्णु के उस परम पद को विद्वान् सदा देखते हैं जैसे विकसित द्यौ में] जिसने यूप-वज्र लगाया वह मानो कहता है विष्णु की विजय को देखो ।१८

अब वह यूप पर उसकी नग्नता दूर करने के लिए कुश की रस्सी को बांधता है जैसे कमर में धोती बाँधते हैं ।१९

वह तीन लपेटें लगाता है। बच्चे भी तीन प्रकार होते हैं– पशु, माता-पिता, तीसरा जो उत्पन्न होता है (बालक), अतः तीन लपेटें देता है २०।

वह यह य ६.६ -पढ़कर छोन लपेटे छुवाता है।

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानं रायो मनुष्याणाम् ।

[तू लिपटा है, दिव्य जन तुझे लिपटें, मनुष्योंका धन इस यजमान के लिपटे] यह कहकर मानों यजमान को आशीर्वाद देता है ।२१

अब वह यह पढ़कर यूपशकल को प्रवेश कराता है—

दिवः सूनुरसि । (य ६.६) [तू द्यौ लोक का पुत्र है] वस्तुतः वह उसकी पूजा है, अतः यदि ग्यारह यूप हों तो प्रत्येक में उसीका टुकड़ा लगाये जिससे उसकी सन्तान मुख्य तथा अप्रतीत न हो, ऐसा न करनेसे वैसी ही होजाती है अतः उसी उसी के शकल को लगाये। २२

यह स्वर्गकी सीढ़ी है- क्रमशः रस्सी—शकल—चषाल—स्वर्ग । २३

इसका स्वरु नाम है क्योंकि यह स्व का क्षत (घाव) होता है। २४

उसके गड़े भागसे पितृलोक को, रस्सी तक के से मनुष्यलोक को, चषाल तक के से देवलोक को, ऊपर के दो-तीन अंगुल भाग से साध्य देवों के लोक को जीतता है । जो यह समझ लेता है वह साध्यों के साथ सलोक होजाता है ।२५

वह यूप को वेदि के पूर्वार्ध में लगाता है। यूप-दण्ड वज्र हैं, इन्हें पूर्वाग्र में पकड़कर प्रहार करते हैं, अतः इसे पूर्वार्ध में लगाते हैं । २६

यज्ञ से ही देव जीते, वे बोले- यह जय मनुष्यों से अप्राप्य किस तरह हो । मधुमक्खियों के समान वे यज्ञ-रस चूसकर और यज्ञको बखेरकर छिप गये । इससे यूप नाम पड़ा । बुद्धि और मनोवेग अग्रभाग में होता है, अतः पूर्वार्ध में रखता है । २७

वह अष्टकोण होता है। अष्टाक्षरा गायत्री यज्ञ का पूर्वार्ध है, अतः अष्टकोण है ।२८

एक बार देवों ने इसे पीछे से फेंका था, इनका अनुसरण कर ये भी पीछे से फेंकते हैं । अतः राक्षसों ने यज्ञ को देवों के पीछे पिया । २९

देव अध्वर्यु से बोले- केवल शकल की आहुति दो, इससे यज्ञ सफल होगा । यूप-वज्र को सामने खड़ा देखकर राक्षस इसमें न आयेंगे । ३०

तब उसने ऐसाही किया; यज्ञ सफल हुआ, राक्षस सोम न पीसके ।३१

वह भी ऐसाही करताहै, यज्ञ सफल होताहै, राक्षस नहीं पी पाते।

अब वह इस मन्त्रसे आहुति देता है—

दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा ।।(य ६.२१)

तेरा धुआँ द्यौ तक, ज्योति स्वर्लोक तक जाय, पृथ्वीको भस्मसे भरदे ।३२

यह काण्ड ३ के अध्याय ७ का ब्राह्मण १ समाप्त हुआ ।

अध्याय ७ ब्राह्मण २

जितनी वेदि होती है उतनी पृथिवी। यूप वज्र होते हैं, इन्हीं से वह पृथिवी पर स्वत्व करके शत्रुओं को जीत लेता है। वे ग्यारह होते हैं तथा बारहवाँ छिला पड़ा रहता है जिसे वेदि के दक्षिण में डालता है।१

यज्ञकर्ता देव राक्षसों के आक्रमण से डर गये। ग्यारह खड़े यूप उन बाणों और दण्डों के समान थे जो छोड़ तो दिये चाहे लगे हों या नहीं। पड़ा बारहवाँ उस बाण के समान था जो खींचा तो गया किन्तु छोड़ा नहीं। दक्षिण में रक्खा यूप-वज्र दुष्ट राक्षसों को मारने के लिए पड़ा हुआ था।२

वह इस यूप को इस मन्त्र से रखता है—

एष ते पृथिव्यां लोक आरण्यस्ते पशुः। य ६.६

[यह तेरा भूमि पर स्थान है जंगली पशु तेरे हैं] पशु यूपसे बँधते हैं यहाँ जंगलों का निर्देश किया जिससे यह पशुमान होता है। दो ढंग हैं कल के सोमयाग के लिए कुछ सबको एकसाथ लगाते है, कुछ एक-एक करके सुत्यानुसार।३

किन्तु ऐसा न करे, केवल अग्नि के सम्मुख एक लगाये जिसे अध्वर्यु नहीं छोड़ता जबतक नहीं लपेटता। दूसरे तो रातभर अपरिवीत रहते हैं यह दोष होगा। यह कल पशुबन्धनार्थ है अतः प्रातः ही गाड़े।४

फिर क्रमशः उत्तर, दक्षिण फिर उत्तर अन्तिम दक्षिण की ओर।५

कुछ इसके विपरीत कहते हैं- पहले अग्निके सामनेके यूपके दक्षिण फिर उत्तर फिर दक्षिण, अन्तिम उत्तर की ओर। इस तरह उसका उत्तर का कर्म समाप्त हो जाता है। ६

दक्षिण की ओर बड़ा फिर क्रमशः छोटे हों, पंक्ति उदीची हो। ७

तब पत्नी के लिए पत्नी-यूप गाड़ते हैं, यह सम्पूर्णताके लिए है, यहाँ त्वष्टा के पशु को लाते हैं जो सिक्त वीर्य का पोषक है। यदि अण्ड-कोषों वाला है तो न बाँधे अग्नि के चारों ओर घुमाकर छोड़ दे, यदि बाँधेगा तो सन्तान का अन्त होगा, इस प्रकार वह सन्तान का उत्सर्ग करता है, अतः न बांधे. पर्यग्नि करके छोड़ दे। ८

यह काण्ड ३ के अध्याय ७ का ब्राह्मण २ समाप्त हुआ।

अध्याय ७ ब्राह्मण ३

पशु और यूप का साथ है; इसके विना वह नहीं बाँधा जा सकता। पहले उसने दूध और अन्न (हल में जुतकर) देना स्वीकार नहीं किया जैसा कि अब करते हैं। मनुष्यों के समान वे भी दो पैरों पर खड़े होकर चलते थे। १

तब देवों ने इस यूप-वज्र को देखा और स्थापित किया जिसके भय से सिकुड़ गये और चौपाये होकर आजकलके समान इसके लिए अन्न देने लगे। अतः यूप (खूंटे) पर ही इसे बाँधते हैं उसके विना नहीं। २

…से लाकर, अग्नि मथकर बाँधते हैं, पहले उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि आजकल के समान हवि देनेवाले बन जायें, उन्हें देवोंने वशमें किया, तब भी वे न मा… । ३

आषाढ़ी गुरु-पूर्णिमा व्यास-जयन्ती ग्यारह जुलाई को सम्पन्न करें, प्रत्येक अपना वेदज्ञ गुरु बनाकर वेद और संस्कृत अवश्य पढ़ा करे।

बालकथामाला

दशमकथा हस्तिसौचिकयोः

रचयिता— स्वर्गीय, श्री मंगलसेनः कविः, बदायूँ



कस्मिंश्चिन्नगरे आसीत् सौचिकानां निकेतनम् ।
सीव्यन्ति ते वस्त्राणि यत्र वसन्ति च दिवानिशम् ॥
तस्मिन्नभूल्लघु द्वारं वायोरागमनाय च ।
तत्समीपे करी कश्चित्सरः स्नातुं प्रगच्छति ।
तद् द्वारा सौचिकः कोऽपि तस्मै यच्छति रोटिकाम् ।
शुण्डामुत्थाप्य हस्ती तां प्रीत्या गृह्णाति नित्यशः ॥
कदाचित्तु स्वभावेन सूच्या तुन्नः करे करी ।
शान्त्या सहित्वा तदा तोदं तूष्णीं भूय विनिःसृतः ।
यदा स्नात्वाऽऽगतो हस्ती स्वहस्ते पङ्कमानयत् ।
तद्द्वारेणाक्षिपद् गेहे वैरनिर्यातनाय तम् ॥
सर्वं दूषयित्वैवं वस्त्रजातं गजो ययौ ।
दुःखनीयो न कोऽपीह सर्वानित्युपादिशत् ॥

नमस्ते ! आपका वर्ष पूर्ण होगया, कृपया वार्षिक शुल्क २०) शीघ्र भेजें।

दैनन्दिनी श्रावण २०४४

तिथि कृष्ण	१ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
वार	र सो मं बु गु शु श र सो मं बु मं गु
नक्षत्र	उ श्र ध श पू उ श्र भ
तारीख जुला	१२ १३ १४ १५ १६ १८ १९ २० २१
तिथि शुक्ल	१ २ ३ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १ ५ पू
वार	र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु श र
नक्षत्र	पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि अ ज्ये मू पू उ श्र
तारीख जुला	२६ २७ २८ २९ ३० ३१ अग १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

ऐतरेय, शतपथ, निरुक्त सम्पूर्ण

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

प्रकाशक— विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ ६

ज्येष्ठ पूर्णिमा २०४४ वि०, ११-६-१९८७ ई० ।

मूल्य ऐतरेय ३०) शतपथ दोकाण्ड २०), निरुक्त ३०) शीघ्र मँगाइये

निवेदक— वीरेन्द्रमुनि अध्यक्ष, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री

विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६

ऋतवनकुल हवन-सामग्री

हमने आर्य यज्ञप्रेमियो के आग्रह पर संस्कार-विधि के अनुसार हवन सामग्री का निर्माण हिमाचल की ताजी जड़ी बूटियों से आरम्भ किया है। उत्तम, कीटाणु–नाशक, सुगन्धित तथा पौष्टिक तत्त्वों से युक्त यह हवन-सामग्री अत्यन्त अल्प मूल्य में प्राप्त है, थोक मूल्य ५) प्रति किलो।

—योगी फार्मेसी, लक्सर रोड, डा० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ.प्र.)

× × × × × × × × × × × × × × × × ×

प्रेषक- मुद्रक आदर्श प्रेस

सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६

सेवा में संख्या 137

श्री पातिकालाम्याच्य

ओ३म्

वेद-ज्योति

वर्ष ११ अंक ८ अगस्त १९८७ ई.

नम.. [illegible] [illegible], वेद [illegible] [illegible], [illegible]

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक — आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०

सहायक— [illegible] शास्त्री, श्री सुधीन्द्रनाथ [illegible], श्री ओ३मीमित्र शास्त्री,

विश्व वेद परिषद् [illegible] महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३१०१

वार्षिक मूल्य ३०), आजीवन २००), एक प्रति ३)

दैनन्दिनी भाद्रपद २०४४

तिथि कृष्ण [illegible] १२-१३ [illegible]

वार सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो

नक्षत्र [illegible]

तारीख [illegible]

तिथि शुक्ल [illegible] ७ ८ [illegible] १४ १५ पू

वार [illegible] मं बु गु शु [illegible] र सो

नक्षत्र पू उ ह चि स्वा वि अ ज्ये मू पू अ ध श

तारीख [illegible] १ २ ३ ४ ५ ६ ७

सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या

[illegible] विहार, [illegible] पंजाब

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥

ऋ० १०-१०-१०, अथर्व १८.१.११

भौतिक अर्थ (केवल नीचे पादका)- जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे, तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री ! तू मुझसे दूसरे पति की इच्छा कर। क्योंकि अब मुझसे सन्तानोत्पत्ति की आशा मत करे। परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहे। वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे, तब अपने पति को आज्ञा देवे कि— 'हे स्वामी ! आप सन्तानोत्पत्ति की इच्छा मुझसे छोड़कर किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिये'।

—समुल्लास ४

श्री क्षेमकरण दास त्रिवेदी— वे अगले युग निःसन्देह आवें जिनमें कुल-स्त्रियाँ अपने अयोग्य काम करने लगें, तू श्रेष्ठ वर के लिए भुजा आगे बढ़ा, हे सुभगे! मुझसे दूसरे पति को ढूंढ़।

श्री जयदेवशर्मा— [illegible] कन्याएं, बहुएं [illegible] सन्तान [illegible] करें।

श्री वैद्यनाथ शास्त्री— समर्थ स्त्रियां नियोग कर्म से सन्तान उत्पन्न करती हैं,

श्री विश्वनाथ विद्यालङ्कार— स्त्रियां वे काम करेंगी जो नहीं करने चाहिए,

दैविक अर्थ, यास्काचार्य, (तदनुसार श्री [illegible] वैद्यनाथ शास्त्री)— यमी (रात्रि, अग्नि) यम (आदित्य) से मिलने की कामना करती है, किन्तु यम निषेध करता है। (प्रलय में ही मिलेंगे)

आध्यात्मिक अर्थ— यमी प्रकृति यम परमात्मा से मिलने की कामना करती है किन्तु वह कहता है कि मुझसे अन्य (जीवात्मा) की इच्छा कर।

❀ समाचार ❀

निम्नाङ्कित के देहान्त पर हार्दिक शोक व्यक्त किया जाता है—

पं० श्री चारुदेव शास्त्री दिल्ली (६-४), वेदानन्द वेदवागीश गुरुकुल झज्जर (१-६), [illegible] (बरेली) [illegible], [illegible] आर्योपदेशक दिल्ली, रामदत्त पाण्डेय ताडीखेत (४-६), जगन्नाथ रंगीला [illegible] २०-४, विष्णुदेव पोद्दार आगरा (६.६) मृत्यु से पूर्व आपने १० हजार रु. दान किये। माता [illegible] देवी देहली (४-६-१९८७)

वेदाङ्ग निघण्टु निरुक्त कोश

कार कीरि कुरयेषु १.१६ स्तोता कर्ता
कालय क्षिय क्षुम्पति २.१४ गच्छति
काष्ठा १.६ दिशा उपदिशा सूर्यसं-
ग्राम-भूमि स्थावर अस्थावर जल
कियेधा ४.३ अनेक गुणोंका धारक
कीकटाः ४.३ अनार्य देश लोग
कीस्त कीनिप ३-१५ मेधावी
कुणारु ४-३ गर्जनशील मेघ
कुरु ३-१८ ऋत्विज कूर
कुलिश २-२० वज्र
कुविन ३-१ बहुत
कृत्ति ३,४ गृह यश अन्न गुदड़ी चर्म
कृदर ३-२६ धान्यकोष्ठ
कृणयति कृणाति ३.१४ अर्चति
कृपीट वन घास रूप और छोद
१-१२ जल दूध अन्न धन
केत केतु ३-६ प्रज्ञा
कोश १-१० मेघ डाल खजाना
क्रतु २.१, ३.९ कर्म प्रज्ञा अपत्य
क्रिवि ३-२३ कूप
क्षपा १-७ रात्रि
क्षयति २-२१ ईष्टे
क्षिपस्ती २-४ बाहू
क्षुम्प ४-२ खुम्ब
क्षोणी ३.३० पृथ्वी द्यावापृथिवी

कारोतर कुशय कूप केवट ३-२३ कूप
काबि ४-१ मुष्टि
किः ४.३ कर्ता
किमीदिन् ४-३ कमीना
किरण १-५ रश्मि लगाम
कीलाल क्षु २-७ अन्न
कृत ४-२ किया हुआ कर्म
कुत्स २-२० वज्र ऋषि किसान
कुरुतम ४-१ कुरुत
कुल्या १.१३ नदी
कृण्वति कृणत्ति कृन्तति २.१९ हन्ति
कृत्वी २.१ करके
कृधु क्षुल्लक ३-२ ह्रस्व
कृपा ४-३ कर्मणा सामर्थ्येन
कृशन १.२ हिरण्य रूप
कृष्टि २.३ मनुष्य
केपय ४.२ नीच
कोत्याण ४-२ गति देने वाला
क्राणाः ४.१ कुर्वाणाः
क्रिविर्दती ४.३ काटनेवाले दाँतोंसे युक्त
क्ष्मा ज्मा क्षिति क्षोणी क्ष्मा १.१ पृथ्वी
क्षिति २.३ मनुष्य
क्षिप २.५ अंगुलि
क्षोण ४.३ आवास

ख

खल खज २.१७ संग्राम खनयार
खादो अर्णाः खा १-१३ नदी
खात ३.२३ कूप
खेदाः १-१५ रश्मि लगाम

ग

गए' ग ीगं गम्भीरा गल्दा१.११वाणी गांश्रता ४-२ मिलो हुई
गध्य ४-२ ग्राह्य गन्ति गमति गवते २.१४ गच्छति
गभस्ति १-५ रश्मि अंगुलि गभस्ती २.४ बाहू
गभीर गम्भर गहन १-१२ जल गभीरे ३-३० द्यावा-पृथिवी
गय २-२,१० अपत्य धन गृह गत ३.४ गृह
गल्दा४.३आस्वादन नाड़ी ज्ञानतन्तु गाति २-१४ गच्छति
गातु गोत्रा ग्मा १.१ ४.१ पृथिवी गाथा गान्धर्वी गिरगौरी१.११वाणी
गायति गूर्धयति गृणाति३.१४अर्चति गि रि गोत्रग्रावन् १.१० मेघ पर्वत
गिर्वणस ४-३ पूज्य देव गृत्स ३-१५ मेधावी गृत्समद
गो १.१ पृथिवी १,४ सूर्य द्युलोक १.५ रश्मि १.११ वाणी ३.१६ स्तोता
४.१सुषुम्णा-रश्मि गाय दूध अधिषवण-चर्म सरेस तांत ज्या मेघ-
गर्जना विद्युत् लगाम धन बल मेघ सोम उषा ।

घ

घर्म घृण कंस १.६ दिन बल घृणि १.१७ २.१३ दिन ज्योति क्रोध
घृत १—१२ जल घृतवती ३-३० द्यावापृथिवी
घृताची १-१० रात्रि घोष १-ग्यारह वाणी

च

चकमान: चाकनत् २.६ कामयमान: चक्रत् चकृत्य ३.एक कर्तव्य कर्म
चतति २-चौदह गच्छति चनस् ५-३ अन्न
चना चष्टे चिकयत् तीन.ग्यारह दर्शन चन्द्र एक.१ हिरण्य
चमस चरु एक-दस मेघ पर्वत चम्वौ तीन-तीस द्यावा-पृथिव्यौ
चयसे ४-एक नाशयसि चर्षणि २-तीन मनुष्य ४.२ द्रष्टा
चाकन् ४-तीन कामयनाम; पश्यन् चित तीन-तेरह ४.२ पूजा निन्दा
चित्त चेतस् तीन-९ प्रज्ञा उपमा चेतनावान मर्गशि
चोष्कूयतु ४-तीन नाश करता है चित्रामघा एक-८ उषा
चोष्कूयमाणः ४-तीन दाता च्यवते २-चौदह गच्छति
च्यवन च्यवान ५-एक मन्त्रद्रष्टा च्यवाना २.४ बाहू
च्यौत्न २.९ बल

छ

छदयते छन्दति।तीन.चौदह अर्चति छदि छर्दि छाया तीन-४ गृह
छन्त्सत् तीन-४ कामयते छन्द तीन-सोलह स्तोता

ज

जगती २—११ गाय जगत् जन्तु २—३ मनुष्य

जगायात् जञ्जन्ति जमति जवति जज्झती:४-३ जल

-ज्रयति जयति जायति जिगाति अज्जनाभवन् जमन् १.१७ ज्योति

जिन्वति जेहते २-१४ गच्छति जठर ४.१ उदर

जन्मन् जन जनाथ जनु १-१२ जल जबारु ४—३ ऊर्ध्वरेता आदित्य

जरते जर जरय जल्प ३,१४ अर्चति जरिता ३—१६ स्तोता

जरूथ ४—३ स्तुति स्तोत्र जसुरि ४—१ मुक्त

जहा ४—१ जघान जल्हव: ४—३ अग्निहोत्र से हीन

जा २—१ अपत्य जातरूप १—२ हिरण्य

जामि १-१२ जन २-८ मनुजि ४.१ जारयायि ४—३ उत्पन्न हुआ

अतिरेक मूर्ख ज्ञाति अहित जिह्वा १—११ वाणी

प्रयोजनरहित दोषयुक्त प्रवृद्ध जीर २—१५ आशुकारी

पुनरुक्ति स्वदेशी-विदेशी-शत्रु जुषते २—६ कामयते

भगिनी याज्या अनुज्ञा आसन्न जुहुरे ४—१ जुह्विरे

जूर्णि २-१३,१५ ४,३ क्रोध शीघ्र जूर्णाति १-१८ हन्ति

सेना शस्त्र आदि जोषवाक ४,३ अज्ञातवचन अथ जपकर्ता

ज्मा ज्मया: १-१ पृथिवी ज्योतते १-१६ ज्वलति

ड

डीयते २-१४ गच्छति

त

तक्ति तुरीयति २.चौदह गच्छति तकम तनय तुक् तोकम् तोकम २.२अ.त्य

तस्या तस्कर तायु तृपु तीन.२४स्तेन ततनुष्टि ४.तीन भोगी धर्म-रहित

तथा तीन-तेरह उपमा तना १.१० धनेन

तपुषी त्यज २-तेरह क्रोध तपस् एक-सत्तरह ज्योति

तमस् तमस्वती एक-७ रात अँधेरा तरणि ताजत् तूर्यमान तूतुजान तूतुजि

तरस्वती एक-तेरह नदी तूयम् तूर्णि तृषु तृष्वी २-पन्द्रह शीघ्र

[illegible] -२ हिनस्ति तरस् तव तविषी त्वक्ष २-९ बल

[illegible] तीन-तीन महान् तस्युष तुर्वश २-तीन मनुष्य

तळित् २.१६,१९समीप हन्ता विद्युत् ताम्र तीन-७ रूप

तायु तीन-सोलह स्तोता तार्क्ष्य एक-चौदह अश्व

तादि तृणेढि २-उन्नीस हन्ति तिग्म तुञ्ज दो-बीस वज्र ४-तीन दान

वेद-विषय विचार

[आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ]

क—करपात्री हरिहरानन्द, द—महर्षि दयानन्द सरस्वती

❀ मैक्समूलर के मत का खण्डन ❀

६२-द के द्वारा मैक्समूलर का संस्कृत नाम मोक्षमूलर बतानेपर भी क ने आक्षेप किया है। यदि क को यह अच्छा न लगा तो दूसरा नाम क्यों न बताया? मोक्षस्य मूलं राति, जो मोक्ष के मूल को लेता (मानता) है वह मोक्षमूलर है। इस तरह यह नाम देना कुछ अनुचित नहीं।

❀ ऋषि के अर्थ पर विचार ❀

६३—अग्निः पूर्वेभिः० आदि ऋ १.१.२ के द के किये अर्थपर क का आक्षेप है कि प्राण तथा तर्क पूर्व तथा नूतन कैसे हो सकते हैं और अचेतन होने से उनके द्वारा अग्नि-स्तुति कैसे की जा सकती है?

किन्तु यह आक्षेप स्तुति का अर्थ ठीक से न समझने के कारण है। समष्टि कारण-प्राण पूर्व ऋषि और व्यष्टि कार्य-प्राण नूतन ऋषि हैं, दोनों अग्नि की स्तुति करते अर्थात् महिमा को प्रकट करते हैं। प्राणायाम से गर्मी निकलना अग्नि का वशीकरण और अपनी गुणों का ईश्वर के ओं नाम का जप भी अग्नि की स्तुति है। केवल शब्दों से गुणों का वर्णन ही स्तुति नहीं, प्रत्युत गुणों को समझ कर गुणों का महत्त्व समझना और उनका सदुपयोग भी स्तुति है।

इसी तरह पुराने-नये तर्कों से ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुणों का वर्णन अग्नि स्तुति है।

अन्त में श्री करपात्री को यह मानना पड़ा कि वेदों में पारङ्गत जो कुछ तर्क के साथ कहता है वह ऋषि का ही वचन माना जाता है। तो फिर तर्क तथा प्राण दोनों ऋषि हुए या नहीं?

यह ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदविषयविचार विषय में श्री स्वामी हरिहरानन्द करपात्री की आलोचना का खण्डन समाप्त हुआ।

—❀—

श्री करपात्री की ईश्वर के विषय में

वेद-विरुद्ध मान्यता

—श्री राजवीर शास्त्री, दिल्ली

(१) श्री करपात्री ने पुस्तक के आरम्भ में लिखा है—

अगजा अर्थात् भगवती पार्वती के मुखरूपी कमल को प्रफुल्लित कर देने के लिए जो सूर्य के समान हैं, ऐसे गजानन गणेश को हम स्मरण करते हैं। (पृष्ठ १)

यह गणेश कौन है? क्या ईश्वर का ही नाम है जिसका अर्थ महर्षि दयानन्द ने यह किया है— जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी है, उस ईश्वर को गणेश कहते हैं। किन्तु वह तो पार्वतीका पुत्र तथा गजानन नहीं है। इन गणेश के विशेषणों से स्पष्ट है कि यह पुराणों का शिव-पार्वती-पुत्र है जिसका सिर शिव ने क्रोधमें काटकर हाथीका सिर लगाया था, ऐसा असहाय जिसे स्व-शिर भी नहीं मिला, शिव ने भी उसीका सिर क्यों नहीं लगाया? क्या ऐसा क्रोधी शिव ईश्वर हो सकता है? वे जिसकी स्तुति कर रहे हैं उसका क्या स्वरूप रहा? बेचारा जानवर के समान न कुछ सोच सकता न बौद्धिक कार्य कर सकता। ऐसे के स्तोताओं की बुद्धि का कमाल है कि उसके स्थान में मिट्टी को पूजने लगे। वे समझते हैं कि गजबुद्धि क्या कर सकता है उसके नाम से पत्थर रखो या मिट्टी। ऐसे जड़ोपासकों की बुद्धि का कमाल है कि वे स्तुति में मन्त्र पढ़ते हैं— गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। (यजु० २३।१९) जिसमें गजानन या गणेश का नाम भी नहीं, और जिसका अर्थ इनके माध्य महीधर ने इतना अश्लील किया है कि लिखा नहीं जा सकता। उसने इसे यजमान-पत्नी से गणपति घोड़े का सम्बन्ध कराते हुए कहलाया है, इसका सत्यार्थ महर्षि दयानन्द ने किया।

गणेशको घोड़ा ही बना दिया और उससे पत्नी ऐसा अनुचित कार्य करे, क्या यह निर्लज्जता की पराकाष्ठा नहीं है?

यह है करपात्री और उनके पुराण मत की गणेश-पूजा! इन्हें न तो ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान है और न ही उपासना पद्धति का। एक अन्धा नकटा पन्थ चला रक्खा है जो लोगोंके जीवनसे खिलवाड़ कर रहा है। इसीसे करपात्री महर्षि दयानन्द को गालियाँ देते थे और अन्ध भक्तों से कहते थे कि दयानन्दका सत्यार्थप्रकाश कभी न पढ़ना. वह तो

नास्तिक था। दयानन्द के ग्रन्थ न पढ़ो, उनके बताये योगदर्शनादि ही पढ़ो जहाँ ईश्वर का सच्चा स्वरूप बताया गया है। पर पढ़ें कैसे? मन में तो उलटी बातें भरी हैं, जबतक उन्हें न हटाया जाय तबतक शास्त्र-ज्ञान कैसे समझ में आये? कवि ने सच ही कहा है—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ?
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ?

जैसे अन्धे को दर्पण क्या करेगा वैसे बुद्धिहीन को शास्त्र क्या करेगा?

(२) ईश्वर लौकिक प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। इन्द्र आदि देवता आते हैं, तब भी वे हम लोगों को नहीं दिखाई देते। इस प्रकार से देवताओं के भी देव परमेश्वर का आँखों से न दिखाई देना तो सुतरां सिद्ध हो जायेगा। (वेदा० पृष्ठ १७८)

समीक्षा– ईश्वर को शरीरधारी सिद्ध करने के लिए करपात्री जी ने इन्द्रादि देवों का उदाहरण दिया है उसमें साध्य पक्ष से समानधर्मता होनी आवश्यक है, वह लौकिक तथा परीक्षक सर्वजनसिद्ध हो। जब उसी में सन्देह हो तो वह साध्य होने से साध्य पक्ष को सिद्ध नहीं कर सकता। इन्द्रादि से क्या भाव है? पौराणिक या सूर्य आदि? दोनों से ही ईश्वर की कोई समानधर्मता नहीं, अतः उदाहरण की सिद्धि न होने से ईश्वर शरीर-धारी सिद्ध नहीं हो सकता। पौराणिक देवों की तो बुद्धि के शत्रु, कल्पना में उड़ान भरने वाले तथा सृष्टि-विज्ञान के विरुद्ध लोगों ने वन्ध्या-पुत्र की भाँति कल्पना ही की है, यथार्थ में उनकी कोई सत्ता ही नहीं है। प्रथम तो स्वर्ग नामक लोकविशेष ही, जिसमें इन्द्र देवों का राजा रहता है, सर्वथा मिथ्या बात है; और वे देव शरीरधारी होकर रथ में बैठकर यजमान के पास आयें और दिखायी न दें यह दूसरा महापाप है। उनकी सत्ता मानने में कोई प्रमाण नहीं है। क्या अब वे मर गये जो यजमान की प्रार्थना नहीं सुनते? तथा इन्द्र नाम के कितने देव हैं जो एक साथ अनेक यजमानों की प्रार्थना पर भिन्न भिन्न स्थानों पर उपस्थित हो जाते हैं? क्योंकि एकदेशी का तो एक ही समय में सब स्थानों में जाना सम्भव नहीं। और यदि अनेक हैं तो सब राजा नहीं हो सकते। उनमें राजा बनने के लिए परस्पर कलह भी होती होगी। अतः यह सब पौराणिक गप्पमात्र ही है। और यदि सूर्यादि से तात्पर्य है तो यह कथन मिथ्या है कि उनका लौकिक प्रत्यक्ष नहीं। यह सूर्य तो पृथिवी से लाखों गुना बड़ा अग्नि-पुञ्ज है जो हम

ग्रीष्मकाल में इतनी दूरी से भी अत्यधिक सन्तापन कर देता है, यह तो पृथिवी पर यजमान की प्रार्थना से आ नहीं सकता क्योंकि यह जड़ होने से किसी प्रार्थना के अनुरूप कार्य ही नहीं कर सकता। और यदि दुर्जनतोष न्याय से क्षणमात्र के लिए मान लें कि वह आ जाता है तो करपात्री के पण्डितो ! आप तो कभी आवाहन करना मत, अन्यथा वेदार्थपारिजात की बातों को तो कौन सुनेगा, आपको ही लेने के देने पड़ जायेंगे।

वाह रे बुद्धि के शत्रुओ ! तुम्हें इस वैज्ञानिक युग में अब भी होश नहीं आया जो ऐसी ऐसी असम्भव बातों पर विश्वास करके संसार में भ्रान्ति फैलाते हो। तुम्हारे लोक-परलोक दोनों ही बिगड़ जायेंगे, क्योंकि तुम स्वयं अज्ञानग्रस्त हो, और दूसरे मनुष्यों को अज्ञान-ग्रस्त करने में सहायक बन रहे हो। अतः जब उदाहरण ही ठीक नहीं तब ईश्वर के शरीर की सिद्धि कैसे हो सकती है ?

अकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् (यजु०) यहाँ पर शुद्ध पद कारण शरीर का निषेध करता है, अकाय पद सूक्ष्म शरीर का और अव्रण तथा अस्नाविर पद स्थूल शरीर के निषेधक हैं।

सूक्ष्म शरीर के अभाव में स्थूल देह उत्पन्न ही नहीं हो सकता।

वेदार्थ० पृ १७९-८०

समीक्षा- श्री करपात्री के इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि उन्होंने ईश्वर के यथार्थ निराकार स्वरूप को मानकर भी जो साकार रूप माना है उसमें किसी प्रामाणिक शास्त्र का प्रमाण न दिखाने से उनका साकारवाद धराशायी ही हो गया है, क्योंकि उन्होंने साकारवाद का प्रतिपादन तन्त्र, पुराणादि अप्रामाणिक ग्रन्थों से ही किया है। भले ही वे इनको प्रामाणिक मानते हों किन्तु मान्य वही हो सकता है जिसे विपक्षी भी मानता हो, क्योंकि उसे समझाने के लिए ही तो प्रमाण दिया जाता है। अतः उनके प्रमाण प्रमाणाभास मात्र ही हैं, और उन्हें विरोधाविरोध का भी ज्ञान नहीं है जो एक ईश्वर को शरीर-रहित मानकर भी 'ईश्वर के शरीर को अनित्य बताने वाले अनुमान भी प्रामाणिक नहीं हो सकते (वेदार्थ० पृष्ठ १८२) आदि परस्पर विरोधी मान्यता को भी बार-बार लिख रहे हैं।

'ईश्वर अशरीरी है' (पृ ६) यह स्वीकार कर नैयायिकों के प्रत्यक्ष-लक्षण में दोष दिखाया है तो उसीका विरोध शरीरी मानकर प्रमत्तवत् क्यों किया ? या यहाँ प्रत्यक्ष का खण्डन गलत किया।

अष्टाध्यायी अध्याय छः पाद एक

२०८ ङयि च ॥

और ङयि परे रहते युष्मद्-अस्मद् का आद्युदात्त हो- तुभ्यम् मह्यम्।

दोसौ९. यतोऽनावः।

नौ से भिन्न शब्द परे रहते यत्प्रत्ययान्त को आद्युदात्त हो -- चेयम् जेय कण्ठ्य ओष्ठ्यम्।

दो सौ १० ईड वन्द वृ शंस दुहां ण्यतः ॥

इन ५ के ण्यदन्तों का आद्युदात्त हो- ईड्यः वन्द्यम् वार्यम् शंस्यम् दोह्या धेनुः।

दो सौ ग्यारह. विभाषा वेण्विन्धानयोः ॥

इन दोनों का आदि विकल्प से उदात्त हो — वेणु इन्धान।

दो सौ बारह. त्याग राग हास कुह श्वठ क्रथानाम्॥

सूत्रोक्त ६ शब्दों का आदि उदात्त विकल्प से हो।

दो सौ तेरह. उपोत्तमं रिति ॥

रित्प्रत्ययान्त का उपोत्तम उदात्त हो— करणीय हरणीय पटुजातीय मृदुजातीयः।

दो सौ चौदह. चङ्यन्यतरस्याम् ॥

चङ् परे रहते उपोत्तम विकल्प से उदात्त हो— मा हि चीकरताम्।

दो सौ १५ मतोः पूर्वमात् संज्ञायां स्त्रियाम् ॥

मतु से पूर्व आ उदात्त हो संज्ञा में स्त्रीलिंग में— उदुम्बरावती पुष्करावती।

दोसौ सोलह. अन्तोऽवत्याः ॥

अवती का अन्तोदात्त हो— अजिरवती खदिरवती हंसवती।

दो सौ सत्रह. ईवत्याः।

ईवती का अन्त उदात्त हो— अहीवती मुनीवती।

दोसौअठारह चौ।

लुप्ताकार अञ्चति परे रहते पूर्व को अन्तोदात्त हो— दधीचा।

दोसौउन्नीस. समासस्य।

समास का अन्त उदात्त हो— राजपुरुषः छात्रकम्बलः राजदृषत् ब्राह्मणसमित्।

यह अध्याय ६ का पाद एक समाप्त हुआ।

अ. ६ पाद २

१ बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ॥

बहुव्रीहि में पूर्वपद प्रकृति से हो— सत्यश्रवाश्रवस्तमः ।

२ तत्पुरुषे तुल्यार्थ तृतीया सप्तमी उपमान-अव्यय द्वितीया कृत्याः ॥

तत्पुरुष में सूत्रोक्त ७ पूर्वपद प्रकृति से हों— तुल्यश्वेतः सदृशलोहितः शङ्कुलाखण्डः किरिकाणः अक्षशौण्डः पानशौण्डः शस्त्रीश्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला अब्राह्मणः कुवृषलः पानीयशीतम् भोज्यलवणम् ।

३ वर्णो वर्णेष्वनेते ॥

एतवर्जित वर्ण परे रहते पूर्वपद प्रकृति से हो— कृष्णसारङ्ग लोहितसारङ्गः ।

४ गाधलवणयोः प्रमाणे ॥

प्रमाण में गाध और लवण परे रहते पूर्वपद प्रकृति से हो— अरित्रगाधमुदकम् गोलवणम् ।

५ दायाद्यं दायादे ॥

दायाद परे रहते दायाद्यवाची प्रकृति से हो— विद्यादायाद धनदायाद ।

६ प्रतिबन्धि चिरकृच्छ्रयोः ॥

चिर और कृच्छ्र परे रहते प्रतिबन्धिवाची प्रकृति से हो– गमनचिरम् गमन-कृच्छ्रम् ।

७ पदेऽपदेशे ॥

बहानेवाची पद परे रहते पूर्व पद प्रकृति से हो– मूत्रपदेन प्रस्थितः उच्चारपदेन प्रस्थितः ।

८ निवाते वातत्राणे ॥

वायुरक्षक निवात परे रहते पूर्व पद प्रकृति से हो– कुटीनिवातम् शमीनिवातम् ।

९ शारदेऽनार्तवे ॥

ऋतुभिन्नार्थक शारद परे रहते पूर्व पद प्रकृति से हो– रज्जुशारदमुदकम् दृषच्छारदाः सक्तवः । यहाँ शारद का अर्थ नवीन है ।

१० अध्वर्युकषाययोर्जातौ ॥

जातिमें सूत्रोक्त शब्द परे रहते पूर्व पद प्रकृति से हो– प्राच्याध्वर्युः कलापाध्वर्युः कठाध्वर्युः दौवारिक-कषायम् ।

११ सदृशप्रतिरूपयोः सादृश्ये ॥

सादृश्य में इनको के पर रहते पूर्वपद प्रकृति से हो – पितृसदृशः मातृसदृशः पितृप्रतिरूपः मातृप्रतिरूपः ।

१२ द्विगौ प्रमाणे ॥

प्रमाण में द्विगु परे रहते पूर्वपद प्रकृति से हो– प्राच्यसप्तसमः गान्धारिसप्तसमः ।

१३ गन्तव्यपण्यं वाणिजे ॥

वाणिज्य परे रहते गन्तव्य और पण्यवाची पूर्वपद प्रकृति से हो— मद्रवाणिजः काश्मीरवाणिजः अश्ववाणिजः ।

१४ मात्रोपज्ञोपक्रमच्छाये नपुंसके ॥

नपुंसकवाची तत्पुरुष में सूत्रोक्त पद परे रहते पूर्वपद प्रकृति से हो– भिक्षामात्रं न ददाति याचितः समुद्रमात्रं न सरोऽस्ति किञ्चन । पाणि॰न्युपज्ञम् आढ्योपक्रमं प्रासादः इषुच्छायम् ।

१५ सुखप्रिययोर्हिते ॥

हित में सुख और प्रिय परे हों तो पूर्वपद प्रकृति से हो– गमनसुखम् वचनसुखम् गमनप्रियम् वचनप्रियम् ।

१६ प्रीतौ च ॥

और प्रीति में भी इनके परे रहते पूर्व पद प्रकृति से हो- ब्राह्मणसुखम पायमन ... ।

१७ स्वं स्वामिनि ।

स्वामी परे हो तो स्ववाची पूर्वपद प्रकृतिसे हो- गोस्वामी अश्वस्वामी

१८.पत्यावैश्वर्ये ।

पति परे रहते ऐश्वर्य में पूर्वपद प्रकृति से हो- गृहपति सेनापति ।

१९ न भूवाक्चिद्दिधिषु ॥

पति परे हो तो इन में प्रकृतिस्वर न हो- भूपति वाक्पति चित्पति दिधिषूपतिः ।

२०.वा भुवनम् ।

भुवन में प्रकृतिस्वर विकल्प से हो- भुवनपतिः ।

२१ आशङ्काबाध नेदीयस्सु सम्भावने ॥

सम्भावना में ये शब्द आगे हों तो पूर्व पद प्रकृति से हो- गमनाशङ्कं गमनाबाधम् गमननेदीयः ।

बाईस. पूर्वे भूतपूर्वे ।

भूतपूर्व में पूर्व आगे हो तो पूर्व शब्द प्रकृति से हो- आढ्यपूर्वः

तेईस. सविध सनीड समर्याद सवेश सदेशेषु सामीप्ये ॥

सामीप्य में सूत्रोक्त शब्द आगे हों तो पहला शब्द प्रकृतिसे हो- मद्रसविधम् काश्मीरसनीडम गान्धारिसमर्यादम मद्रसवेशम् काश्मीरसदेशम् ।

चौबीस . विस्पष्टादीनि गुणवचनेषु ॥

गुणवचनों में विस्पष्ट आदि को प्रकृति स्वर हो- विस्पष्टकटुकम ।

१६८ वां गण- विस्पष्ट विचित्र व्यक्त पटु पण्डित कुशल चपल निपुण ।

पच्चीस. श्रज्यावम कन् पापवत्सु भावे कर्मधारये ॥

कर्मधारय में सूत्रोक्त शब्द आगे हों तो भाववाची पहले शब्द को प्रकृतिस्वर हो- गमनश्रेष्ठम् गमनश्रेयः वचनज्येष्ठम् वचनज्यायः गमनावमम गमनकनिष्ठम् गमनपापिष्ठम् गमनपापीयः ।

छब्बीस. कुमारश्च ।

और कुमार शब्द को प्रकृतिस्वर हो- कुमारश्रमणा कुमारतापसी ।

सत्ताईस आदिः प्रत्येनसि ॥

प्रत्येनस उत्तरपद हो तो कुमार आद्युदात्त हो- कुमारप्रत्येनाः ।

अट्ठाईस पूगेष्वन्यतरस्याम् ॥

शतपथ ब्राह्मण ३.७.३

उन्होने कहा — ये इस नियम को नही जानते कि अग्नि में हवि आहुत होती है और न इस प्रतिष्ठा को मानते हैं। जब पशु जाकर आग मथ कर आग में आग का होम करे तब ये हवि का नियम और अग्नि की प्रतिष्ठा और आहुति का ज्ञान लेंगे और मान जायँगे तथा बन्धनार्थ तय्यार होंगे ।४

ऐसा ही करने पर पशु माने और बन्धनार्थ तय्यार हुए। ५

इसी तरह अध्वर्यु करता है और पशु को बांधता है। ६

कहते हैं कि यह कुछ न करे स्वयं ने मोगा लाकर पशु को बांधते किन्तु ऐसा न करे, क्यूंकि अधर्म करता है ऐसा वैसा हो करे। ७

वह तृण लेकर पशु लाता है यह सोचकर कि दूसरे के साथ जाकर ले आऊँगा। साथीवाला वीर्यवान् होता है। ८

वह यह पढ़कर तृण लेता है—

उपावीरसि उप देवान् दैवीर्विश प्रागु। (य ६.७)

पास में दूपक रक्षा करता है उपा वीः कहा। दैवी लोग देवों के पास आये हैं। पशु दैवी हैं। तात्पर्य है कि वह देवों के लिए हित है।६

उशिजो वह्नितमान्(य ६.७)विद्वान् ही देव, मेधावी, वाहक हैं।१०

देव त्वष्टर्वसु रम(य ६,७) हे त्वष्टा देव! वसु(पशु-धन)रमा।११

हव्या ते स्वदन्ताम्(य ६.७)तेरे हव्य स्वादिष्ट हों)इन्होने हव्य होंगे।१२

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि। (य ६.८)

हे रयिवाले पशुओ! रम जाओ, हे बृहस्पति! पशु धन धारण कर। यह कहकर न ठहरे पशुओं को ब्रह्म के साथ ही दूर हटाना है। ठहरे पशु के गले में रस्सा बांधता है, बांधने के विषयमें आगे कहा जायगा।१३

यह अध्याय ७ का ब्राह्मण ३ समाप्त हुआ॥

—❀—

अध्याय ७ ब्राह्मण ४

यजमान रस्सी लेकर पशु के गले में इस मन्त्र से डालता है—

ऋतस्य त्वा देव हवि पाशेन प्रतिमुञ्चामि । (य ६.८)

[हे देव हवि ! तुझे ऋत के पाश से बाँधता हूं] यह रस्सी वरुण की है अतः इसे ऋत के ही पाश से बांधता है अतः वह इसे नहीं सताती।१

धर्षा मानुषः (य ६.८)

[मनुष्य धर्षण-कर्त्ता है] यह इसलिए कहा कि पहले तो उसके पास न जा सकता था, अब इसने उसे ऋत के पाश से बाँध लिया। २

अब वह इससे पशु को यूप से (और छात्र को नियम से) बाँधता है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि । (य ६.९)

(वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार से पशु के समान शिष्य से आचार्य कहता है—) देव सविता की प्रेरणा में तुझे अश्वियों की बाहों से, पूषा के हाथों से [illegible] नियुक्त करता हूं। जैसे एक देवता के लिए हवि लेता हुआ कहता है वैसे ही दो के लिए कहता है। अब जल-सिंचन करता है जिसका तात्पर्य उसे पवित्र करना है। ३

वह इस मन्त्र से जल सींचता है—

अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः । (य ६.९) [हे शिष्य! तुझे जल और ओषधियों के लिए] जिससे इसकी स्थिति है उसी से उसे पवित्र करता है। क्योंकि जल बरसने पर अन्न ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं जिन्हें खाकर और जल पीकर रस बनता है, रस से वीर्य, उस से शरीर। अतः जिस से होता है और उत्पन्न होता है उसी से उसको पवित्र करता है। ४

अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः।
अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ (य ६.९)

[(हे शिष्य!) तेरे माता-पिता-सगा भाई-साथी सखा ये सब तुझे (पढ़ने की) अनुमति दें; मैं अग्नि-सोम से प्रीति-युक्त तेरा प्रोक्षण करता हूं] जिनसे उत्पन्न हुआ और जिनके साथ रहा उनसे अनुमति लेकर उसे पवित्र करता है और जिन दो गुणोंकी प्राप्ति शिष्य करता है उनके लिए उसे योग्य बनाता है। ५

इस मन्त्र से जल पीने और नीचे का शरीर धोनेके लिए लेताहै--
अपां पेरुरसि आपो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः (य ६.१०)

हे शिष्य! तू जल का रक्षक है। मनुष्य तेरे यज्ञ-शोधित सुखदायक जल का और स्वयं गृहीत उत्तम यज्ञ-हवि का आस्वादन किया करें। इससे अन्दर बाहर शुद्ध कर सब ओर से पवित्र करता है। ६

अब होता [illegible] मन्त्र बोल। वह उत्तर आघार आहुति देकर स्रुवों को बिना छुए अपने स्थान पर लौट कर आता है तो जुहू से पशु (शिष्य) के घी लगाता है। उत्तराघार यज्ञ का सिर है यहां पशु यज्ञ है, अतः यज्ञ के सिर में ही घी लगाता है जो जुहू से घी लगाता है। ७

वह इस मन्त्र से उसके ललाट कन्धों और कूल्हों पर घी मलता है--
सं ते प्राणो वातेन गच्छताम् समङ्गानि यजत्रैः
सं यज्ञपतिराशिषा ॥ (य ६.१०)

[हे शिष्य! मेरे आशीर्वाद से तेरा प्राण पवित्र वायु से, अङ्ग यज्ञ-कर्ताओं से मिलें और तू यज्ञ का रक्षक हो] जिस कामना से शिष्य आते, वह पूर्ण हो। ८

सम्यक् ज्ञान पानेवाले शिष्यके प्राणों को प्राणायामसे शुद्ध वायु मिले याज्ञिकों के साथ वह यज्ञ करना सीखे और यजमान आशीर्वाद पाये। अब वह दोनों स्रुवों को रखकर प्रवर के लिए श्रौषट् कहता है। ९

अब वह द्वितीय श्रौषट् कहता है। यहाँ दो होता होते हैं। वह मित्र-वरुण के लिए श्रौषट् कहताहै। यजमानका वरण करता हुआ कहताहै- अग्नि देवो मनुष्यों के आगे चलनेवाला (मुख) है, यह यजमान मनुष्यों का, इन दानोंके गार्हपत्य सौ हेमन्तों तक चमकें, आपत्तिरहित हों। १०

अब कहता है- 'तुम धनों को मिलाओ, शरीरोंको नहीं' यदि मिला देतो अग्नि जला दे। ऋत्विजों का आशीर्वाद यजमानका धन है ॥ ११

❀ यह तीसरे काण्ड का सातवां अध्याय समाप्त हुआ। —❀—

अध्याय ८ ब्राह्मण एक

इस तरह वरण किया गया होता होतृ-सदन में बैठता है, बैठकर अध्वर्यु को प्रेरणा करता है, वह दो स्रुचों को लेता है। १

अब आप्री मन्त्रों से कार्य करते हैं क्योंकि दीक्षित जब मन-आत्मा से यज्ञ की तय्यारी करता है तब उसका आत्मा खाली सा हो जाता है उसका इन से आप्यायन करते हैं अत: इनका आप्री नाम है। २

ये प्रयाज ग्यारह होते हैं— दस प्राण, ग्यारहवां आत्मा, जिसमें ये प्रतिष्ठित हैं. इतना यह पुरुष है, इसी वे आप्यायित करते हैं अतः ग्यारह प्रयाज हैं। ३

वह श्रौषट् कहकर कहता है— समिधाओं को [illegible] (प्रेरित कर)। इस तरह चार-बार कहकर हर चौथी आहुति मे घी को साथ-साथ दस प्रयाज करता है। तब कहता है— शास को लाओ। तलवार को शास कहते हैं। ४

अब वह यूप-शकल लेता है। इन दोनों के [illegible] भागमे जुहू मे से घी लगाकर पशु के ललाट को इस मन्त्र को पढ़कर छूता है—

घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाम्। (य ६.११)

[घी चाहनेवाले स्नेहयुक्त तुम दोनों, रक्षा करने-कराने वालो! पशुओं की रक्षा करो। [illegible] कि दुष्ट राक्षस हिंसा न करे। यूप-शकल छिपाकर शास देते हुए कहता है— यह जानी हुई धार है, और पशुओं को दूध देता है। ५

एकादशी कथा कृपणब्राह्मणः

रचयिता— स्वर्गीयः श्री मङ्गलसेनः कविः, बदायूँ

आसीत् कस्मिश्चन स्थाने ब्राह्मणः कृपणः पुरा ।
तेन भिक्षार्जितैरन्नैर्घट एकः प्रपूरितः ॥ १

नागदन्तेऽवलम्ब्याथ तं घटं स मुहुर्मुहुः ।
रात्रौ विचिन्तयामास खट्वायां संविशन्निदम् ॥ २

अन्नपूर्णो घटोऽयं मे भाग्येन वर्त्ततेऽधुना ।
मुद्राद्वयेन दास्यामि दुर्भिक्षं चेद्भविष्यति ॥ ३

अजाद्वयं ग्रहीतव्यं तन्मूल्येन पुनर्मया ।
अथ काले गते ताभ्यामजायूथं भविष्यति ॥ ४

ताभिः पुनर्ग्रहीष्यामि गामेकां बहुदुग्धदाम् ।
ततः वत्साश्च गावश्च भविष्यन्ति त्वसंख्यकाः ॥ ५

तेषां मूल्यं च सम्प्राप्य क्रेतव्या महिषी मया ।
तस्या बहु महिष्यो मे भविष्यन्ति न संशयः ॥ ६

ततः अश्वा ग्रहीतव्या साप्यश्वान् जनयिष्यति ।
अश्वानां विक्रयेणैवं स्वर्णं बहु भविष्यति ॥ ७

तत्तेन स्वनिवासाय निर्मास्यामि वरं गृहम् ।
ततः कश्चिद्द्विजो मह्यं निजां कन्यां प्रदास्यति ॥ ८

ईश्वरानुग्रहान्नूनं तस्यां पुत्रो जनिष्यते ।
सोमशर्मेति तन्नाम करिष्यामीति निश्चयः ॥ ९

कदाचिदश्वशालायाः पृष्ठदेशं गतः पुनः ।
आसीनः पुस्तकं तत्र पठिष्यामि किमप्यहम् ॥ १०

सोमशर्माऽथ मां दृष्ट्वा जानुभ्यां प्रचलँस्ततः ।
मत्समीपं समागन्तुं मायादश्वखुरान्तिकम् ॥ ११

तदाहं कथयिष्यामि स्वपत्नीं तारं मामकम् ।
गृह्यतां गृह्यतां बालो न गच्छेद्वाजिनः पुरः ॥ १२

गृहकर्मसु लग्ना सा मद्वचो नावधारयति ।
तदाहं तां स्वपादेन ताडयिष्यामि कोपतः ॥ १३

एवं विचार्य विप्रेण ताडिता स्वा स्वकाल्पता ।
तस्य पादाभिघातेन भग्नः सम्पूरितो घटः ॥ १४

अन्नं चिरार्जितं कीर्णं पश्चात्तापं गतो द्विजः ।
नश्यत्युपस्थितोऽप्यर्थो मिथ्याकल्पनया नृणाम् ॥ १५

वर्ष ११ अङ्क ८ अगस्त १९८७ के वेदज्योति के ६०२१ से ६२ तक २०६

नमस्ते ! आप का वर्ष पूर्ण हो गया, कृपया वार्षिक शुल्क २०) बीस भेजें।

विशेष सूचना— भागवत में अशुद्धियाँ ४), महीधर और महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की तुलना २।) मगाने का पता— श्री शिव सिंह कुशवाह शास्त्री, एम०ए०, वेदमन्दिर (गीता आश्रम) सिनेमा के सामने, ज्वालापुर (जिला सहारनपुर उ०प्र०) २४९

· × × × × × × × × × × × × × × × × × ———

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ४१७ महानगर, लखनऊ २२६००६

सेवा में संख्या 1328

श्री पुस्तकालया

ओ३म्

वर्ष ११

अङ्क १

वेद-ज्योति

नवम्बर, भाद्र
२०४४ वि०
सितम्बर
१९८७ ई०

सम्पादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ,

अध्यक्ष विश्व वेद परिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६

दयानन्दाब्द १६३, वेदसृष्टिसंवत् १९६०८५३०८८, दूरभाष ७३५०१

वार्षिक मूल्य २०) आजीवन २००) एक प्रति २)

एक वृक्ष पर दो पक्षी

ऋषि दीर्घतमाः, देवता विश्वेदेवाः, छन्द त्रिष्टुप्, स्वर धैवत

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

ऋ० १.१६४.२०

दो सुन्दर पर्ण (ज्ञान-पङ्ख) वाले, सम्बन्धित मित्र (पक्षी जीव ईश्वर) एक वृक्ष (प्रकृति) का आश्रय करते हैं, उनमें से एक (जीव) उसका फल स्वादुपन से खाता है, न खाता हुआ अन्य (ईश्वर) सब ओरसे देखता है। इसमें रूपकालङ्कार (अतिशयोक्ति और अद्भुत रस) है। (महर्षि-भाष्य)



उक्त मन्त्र पर निर्मित चित्र

मोहनजोदड़ो से मिला [सील सं० ३२७ प्लेट सं० ११२ और ९७]
वेदको सबसे पुराना सिद्ध करता है [डा० रामेश्वरदयाल हरिद्वार से मिला]

सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या

क्रम २०, ऋषि अश्वतराश्वि, देवता अग्नि, छन्द अनुष्टुप्, स्वर गान्धार

अभ्या दधामि समिधम् अग्ने व्रतपते त्वयि ।
व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमि इन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥ (यजु २०.२४)

वानप्रस्थ को उचित है कि — मैं अग्नि मे होम कर दीक्षित होकर व्रत-सत्याचरण और श्रद्धा को प्राप्त होऊँ' ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ हो नाना प्रकार की तपश्चर्या सत्सङ्ग योगाभ्यास सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे । —समुल्लास ५

हे सत्य भाषण आदि व्रतों वा कर्मों के पालक स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर ! तुझमे स्थिर होकर मैं अग्नि मे समिधा के समान ध्यान को स्थापित करता हूं । जिससे सत्यभाषण आदि कर्म और सत्य को धारण करानेवाली श्रद्धा को प्राप्त होता हूं, ब्रह्मचर्य आदि की दीक्षा को प्राप्त करके विद्यावान् होकर तुझे प्रकाशित करता हूं । —महर्षि-यजुर्भाष्य

बालकथामाला

द्वादशी कथा— सुसन्ततिः

रचयिता— स्वर्गीयः श्री मङ्गलसेनः कविः, बदायूँ

आसीदेका क्वचिद् ग्रामे वृद्धा स्त्री विधवाऽधना ।
तस्या आलम्बभूताश्च ह्यासन् पञ्च प्रियाः सुताः ॥१
कस्याचित् पाठशालायां पठितुं यान्ति ते सदा ।
गृहमागत्य ते बालाः सेवन्ते पूज्यमातरम् ॥२
कदाचित्तेषु यातेषु विद्वान् कोऽपि समागतः ।
वृद्धामकिञ्चनां दृष्ट्वा दयाविष्टोऽब्रवीदिदम् ॥३
समीक्ष्य ते दशां देवि, द्रूयते मानसं मम ।
किञ्चित्त दातुमिच्छामि यदि त्वं स्वीकरिष्यसि ॥४
उक्तं तया तदाकर्ण्य स्वस्ति तेऽस्तु दयानिधे ।
नाहमास्मि तथा दीना यथा मामचिन्तयन् ॥५
वर्तन्ते पञ्च रत्नानि बहुमूल्यानि मद्गृहे ।
तस्माद्धा मां विजानीहि [illegible]शोऽपि नास्ति मे ॥
तदैव तत्सुतास्ते च शालातो गृहमाययुः ।
तान् विनिर्दिश्यावदत् साध्वी रत्नानीमानि पश्य मे ॥७
सोऽवलोक्याऽथ तान् बालान् परं तोषमुपागतः ।
सत्यं सुसन्ततिर्लोके रत्नेभ्योऽपि गरीयसी ॥८

वेदाङ्ग निघण्टु निरुक्त कोश

ध

धन्वन् १-३, ४-२ आकाश धन्व धम ध्रज ध्र ध्रय ध्रा ध्वंस२.१४जाना
धम धूर्ग ध्वर २.१९ हन्ति धमनि धारा धिषणा धेना धेनु १.११ वाणी
धरुण ध्वामन्वत् १.१२ जल धर्णसि २-९ बल
धव २-३ मनुष्य धासि २-७ अन्न
धिषणे३.३० द्यावापृथिव्यौ धी २-१ कर्म प्रज्ञा ध्यान
धीति धुर् २-५ अंगुलि,कर्म धीर ३-५ मेधावी ध्यानवान्
धुनि १.१३ नदी

न

नंसन्ते नसन्त ४.१ नमन्ते न ३.१३उपमा निषेध समुच्चय अनु सम्प्रति
नकिः नकीं नुकम् ३.१२सर्व नक्ता १-७ रात्रि
नक्ष नव नस २.१४ जाना नवद्दाम ४.३ व्यापक होकर गतिदेनेवाला
नदति,नौति३.१४अर्चति नदनु, नेमधिता २-१७ संग्राम
नद नाद३.१६स्तोता ऋषि नदी नभनु १-१३ नदी
नना१-११वाणी माता पुत्री नाडी निवित् नो १-११ वाणी
नपात् २-२ अपत्य नभते नितोशते निबर्हयति निवप२.१९हन्ति
नभसी ३-३० द्यावापृथ्वी नभः नाक १.४ जल सूर्य द्युलोक
नमस्यति ३-५ परिचरति नमस् नेमि २—७ अन्न वज्र
नम्या १—७ रात्रि न् नर १-१४ अश्व मनुष्य
नव नव्य ३.२८ नया नवेदस् ३-१५ मेधावी
नशत् २-१७ व्याप्नोति नहुष् नहुष २.३ मनुष्य
नीर १.१२ जल नामन् १.१२ जल कर्म नमन नीचेस्थिति संज्ञा
नारी नार्य ३.१७ यज्ञ निघृष्व ३.२ ह्रस्व
निण्य३.२५निर्णीत छिपा निचुम्पुण निचुङ्कुण ४-२ सोम समुद्र
निधा ४—१ जाल नियुत्वान् २—२२ ईश्वर (मालिक)
नियुत् १.१५ वायु का घोड़ा निर्ऋति १.१ पृथिवी कष्ट दुःख पाप
निर्णिक् ३—७ रूप निशृम्भ ४.३ अविश्रान्त गति से लेजानेवाला
निष्षपिन ४-१व्यभिचारी नीड ३.४ गृह
नु २.१५.३१३ क्षिप्र उपमा न नू च नूचित् ४-१ पुराना नया
नूतन नूत्न३.२८ नवीन नृम्ण २-६, १० धन बल

पक्था ४-३ पक्व पञ्चजन २-३ चारवर्ण, ४आश्रम, निषाद
पद् ४-दो रक्षण रोक छूना पणति पणाय पनस्य पनाय ३-१४ अर्चति
पतंग १—१४ अश्व पतति दो.१४ गच्छति
पत्यते दो-११ ईष्टे पदि ४-दो पक्षी यात्रा परिव्राजक
पृश्नः पूजय पृच्छ ३.१४ अर्चा पयस्वती,पयः १ ७रात्रि, १३नदी उदकवती
पयस् १ १२ जल २.१अन्न १,१७ परशु २-२० वज्र
ज्योति दूध पराके पराचैः परावतः ३-२३ दूरे
पराशर ४.३ ब्रह्मचारी-पुत्र राजा परि ४—२ सर्वत
परितक्म्या ४—१ रात्रि परिस्रव पवस्व ३-२१ बहु शुद्ध कर
परीणसा पुरु ३—१ बहुत पर्वत पुरुभोज १-१० मेघ पहाड
पव पेमय प्रव पज्रव पसार २.१४जामा पवि १—११ वाणी
पवित्र १.१२ जल४-२ मन्त्र सूर्य पस्त्य ३,४ घर
रश्मि अग्नि वायु सोम बिजली पाक ३-८ श्रेष्ठ
पाजस् २-९ अन्न बल पाथ ४-३ अन्तरिक्ष जल अन्न
पादु ४—२ गति पार्वती १.१३ नदी
पाश्वा पुरन्धी३ ३० द्यावापृथिवी पितृ ४.१ रक्षक वनस्थ अन्तरिक्ष
पितु पृक्ष २-७ अन्न २.१७ संग्राम पिनाक ३-२९ दण्ड
पिप्पल पूर्ण १—१२ जल पिष्ट पसु पसर ३—७ रूप
पीपरत् ३-१९ भृशं याचते पुरन्धि ४.३ बुद्धिमान् पुरुषार्थी सर्वांश
पुलुकाम ४-३ पुरुकामा पुष्कर पृथिवी १.२ अन्तरिक्ष जल कमल
पूरु पूतनाः २—३ मनुष्य पूर्धि ३—१९ याचस्व पूरय देहि
पूर्व्य प्रत्न प्रदिवः प्रवय.३-२७पुराना पूषा पृथ्वी १—१ भूमि
पृणक्षि पृणाति ३-१० देता है पृतनाज्य पृत्सु २—१७ संग्राम
पृथुज्रयस ४-१ अतिवेगवान् पृश्नि १—४ सूर्य द्युलोक
पृषती १-१५ मरुतः के अश्व पेशस् १-२ ३-७ हिरण्य रूप
पैद्व १—१४ अश्व पौंस्य २-६, १७ बल संग्राम यौवन
प्रकलवित् ४-तीन वणिक प्रजा २.२ सन्तान
प्रजापति तीन-१५ यज्ञ प्रवद्वसु ४-तीन धन-प्रापक
प्रतिष्ठा तीन-२ ह्रस्व प्रतीच्य तीन-२५ निर्णीत अन्तर्हित
प्रापत्व तीन-२९ समीपे प्राशु २-१५ आशुकारी

फ

फणति २—१४ गच्छति फलिग १—१० मेघ पर्वत

ब

बंहिष्ठ बर्हिषत् बृहत् ३.३ महान् बकुर ४-तीन जल ज्योति
बट् तीन-१० सत्य बत ४-तीन दुर्बल खेद अनुकम्पा
बन्धु २—१० धन बप्सति बब्धाम् बभस्ति २.८ अत्ति
बबुर बुर बुबुर बुबुर बृबूक१-१२जल बर्हणा ४-तीन ब्रह्म संहारक
बर्हि १-तीन आकाश जल बल बलाहक १. १० महान् मेघ पर्वत
बहुले तीन-तीन द्यावापृथिव्यौ बाध २.९ बल
बाहू दो-४ बाहें बिस्पति दो-१४ गच्छति
बीज दो-दो मज्जान बीरिट ४-दो अन्तरिक्ष समूह
बुन्द ४—तीन वाण बृबदुक्थ ४—तीन अतिप्रशस्त
बृबूक १-बारह जल बेकनाट ४-तीन ब्याजखोर
बेकुरा १-११ वाणी ब्रध्न १-१४,तीन-तीन अश्व कसान्
ब्रह्मन् दो-७, १० अन्न धन जल ब्राह्मण वेद परमेश्वर

भ

भग दो-दस धन ज्योति स्त्रीभग भन्दते १.१६, ३.१४ ज्वलति अर्चति
भन्दना ४—२ वन्दना भरत ३-१८ ऋत्विज आदित्य
भरिजे भुरिजौ २—४ बाहू भर २,१७ संग्राम
भर्म १—२ हिरण्य भर्वति भसथः २.८ अत्ति
भविष्यत् भुवन भूत १.१२ जल भाऋजीकः ४-३ प्रख्यातदीप्ति
भानु १—६ दिन भाम भृणीय भीणा भ्रेष २.१२ क्रोध
भारती १—११ वाणी भास्वती १-८ , उषा नदी
भुरण्यति भ्रमति २-१४ गच्छति भुरण्यु २.१५ शीघ्र
भू भूमि १.१ पृथिवी १.३आकाश भूरि ३-१ बहुत
भृमि ४.३ भ्रमणशील भ्रामक भेषज १.१२ जल सुख
भोजन २—१० धन भ्राजते भ्राशते भ्राश्यति १.१६ ज्वलति
भ्यसते ३—२९ बिभेति वेपते

म

महते ३-२० ददाति मक्षु २.१५ शीघ्र
मख मेध ३-१७ यज्ञ महान् मघ मीढु मीढ मेधा २.१० धन प्रज्ञा
मज्मन २-९ बल मति मतुथ मनश्चित् मनीषिन् म-
मदति नन्दयते महयति ३.१४अर्चति न्धातृ तीन-१५ मेधावी
मदेमहि मना मः माय६.१९याचना मधु महत महस् १-१२ जल शराब
मध्या ४—१ मध्ये मनुष्य मर्त मर्त्य मर्य २-तीन मनुष्य

मन्दते १.१६ ३-१४ज्वलति अर्चति मन्दिन् ४.१ स्तुत्य शब्द, स्तुति
मन्दू ४,१ मदिष्णु
मन्द्रा मन्द्राजनी मायु १.११ वाणी
मन्यते १.६ ३.१४ इच्छा अर्चा वध
मन्यु २—१३ क्रोध
ममसत्य महाधन मीढ नुधः २.१७युद्ध
मयूख मरीचिप १—५ रश्मि
मयस् ३.६ सुख
मरुत् १,२ ३.१० सुवर्ण रूप ऋत्विज
मर्दति मार्ष्टि मिनाति मिस्यति
मलिम्लुच मुषीवान् ३-२४ चोर
म्यक्षति २.१४, १९ गच्छ हन्
मल्मलाभवन् १—१७ दीप्तिवाला
महिष महिन ३—३ महा
मही १.१,११,२.११,३.३० पृथिवी वाक गाय द्यावापृथिवी
माँश्चत्व १.१४ अश्व
मांक्रिः तीन-१२ सर्ग
मातृ १-तेरह नदी अन्तरिक्ष
माया तीन-६ प्रज्ञा नकली
मायुक तीन-२ ह्रस्व
मिनाति मिनोति २-१९ हन्ति
मिमिड्ढि निमीहि तीन-१९याचस्व
मूष ४.१ चूहा
मेघ १—१० बादल
मेना मेढि १.११:तीन.२६ वाणी,स्त्री
मेनि २—२० वज्र
मेहना -१ दातव्य, मे इह न
मोकी एक.७ रात

य

यज्ञ तीन-सत्तरह यज्ञ
यतते २-चौदह गच्छति
यतस्रुच तीन-अठारह ऋत्विज
यथा तीन-तेरह उपमा
यदु २-तीन मनुष्य
यन्त्र यन्धि तीन-उन्नीस याचना
यव्या एक—७ रात
यव्या एक-तेरह नदी
यशः यहः यादु एक-बारह जल
यश, २.७, ग्यारह अन्न धन
यहु २—२ अपत्य
यह्व तीन-तीन महान्
यातयति २—उन्नीस हन्ति
याति यक्षति योषिष्ठ२.चौदह जाना
याद्ृश्मिन् ४-तीन जैसे में
यामि तीन-उन्नीस याचामि
योक्त्र योजन २.५ अङ्गुलि
योनि एक-बारह तीन-४ जल गृह आकाश स्त्रीयोनि स्थान
यौति तीन—चौदह अर्चति

र

रंसु ४-तीन रमणीयेषु
रंहति रजति रथर्यति २.चौदह जाना
रजयति रञ्जति रञ्जयति तीन-चौदह अर्चति
रजसी तीन.तीस द्यावापृथ्वी दिनरात
रजस् एक-७ रात ४,एक दिन ज्योति जल लोक रुधिर
रण २-सत्रह युद्ध

श्री करपात्री की ईश्वर के विषय मे

वेद-विरुद्ध मान्यता

—श्री राजवीर शास्त्री, दिल्ली



(४) जैसे कि ब्रह्मके दो रूप हैं एक मूर्त्त और दूसरा अमूर्त्त इस श्रुति में ब्रह्म के मूर्त्त और अमूर्त्त ये दोनों रूप बताये गये हैं, इसी तरह से परमेश्वर के निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार, और सगुण-साकार इन त्रिविध रूपोंकी व्यवस्था मानी जाती है।

[वेदार्थपारिजात पृष्ठ १८९]

समीक्षा— पौराणिक ईश्वर के साकार-निराकार दोनों रूप किसी मन्त्र से आज तक सिद्ध नहीं कर सके। वेदों में अपनी कल्पित मान्यता की पुष्टि न देखकर इधर-उधर भटकते फिरते हैं। इसीलिए मूल संहिता भाग को ही वेद मानने से समस्त पौराणिक घबराते हैं। ये महर्षि दयानन्द के आविर्भाव से लेकर अबतक सौ वर्षों में एक भी ऐसा वेद-मन्त्र प्रस्तुत नहीं कर सके जिसमें ईश्वर का साकार रूप बताया गया हो। अतः वेद से भिन्न साहित्य में से प्रकरण-विरुद्ध असङ्गत प्रमाण दिखा कर अपने पक्ष को बचाने का दुस्साहस मात्र ही करते हैं। जिनके प्रमाणों की ऐसी दुर्दशा है उनके प्रमाण-साध्य विषय की क्या दशा होगी यह कल्पना ही की जा सकती है। प्रस्तुत प्रमाण का प्रकरण देखिये—

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यच्च। तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद् वायोश्चान्तरिक्षाच्च एतन्मर्त्यमेतत्स्थितमेतत् सत्.........अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतम्।

बृहदा. २. ३.१-३

अर्थात् ब्रह्म के मूर्त्त तथा अमूर्त्त दोरूप हैं। ये किस ब्रह्मके हैं इसका समाधान आगे स्वयं कर दिया है। यहाँ ब्रह्म शब्द परमात्मा का वाचक नहीं है, प्रत्युत पञ्च भूतों के लिए आया है। उनके दो भेद हैं— एक मूर्त्त रूप. जिसमें वायु-अन्तरिक्ष से भिन्न अग्नि, जल तथा पृथिवी हैं, और दूसरा भेद अमूर्त्तों का है जिसमें वायु और अन्तरिक्ष हैं।

इसका विषयावधारण करते हुए स्वामी शङ्कराचार्य लिखते है—

[illegible] कारणात्मकानां स्वरूपावधारणार्थमिदं ब्राह्मणमारभ्यते।

अर्थात् कार्य-कारणात्मक पञ्चमहाभूतों के स्वरूपावधारण के लिए इस ब्राह्मण का आरम्भ है। पाठक विचार करें कि पौराणिकोंके गुरु आद्य शङ्कराचार्य ने तो इसकी व्याख्या प्रकृति-परक की है, और करपात्री जी उसको ईश्वरपरक लगाकर असङ्गत व्याख्या कर रहे हैं।

पहले तो उन्हें अपने घर में ही झाँककर देखना चाहिए कि स्वामी दयानन्द के प्रादुर्भाव से पहले शङ्कराचार्य क्या भाष्य कर गये हैं, फिर कहीं पूर्वापर को विचार कर ही लिखना चाहिए था।

इतना स्पष्ट होने के बाद भी यदि करपात्री जी की भ्रान्ति दूर न हुई हो तो उद्धरण के समस्त पदों की सङ्गति तो लगाते? इनमें तो लिखा है कि ब्रह्म मर्त्य = नष्ट होने वाला अथवा मरणधर्मा है और सत् सत्तावाला भी है और त्यच्च = असत्ता वाला भी है। इससे स्पष्ट है कि कार्यात्मक पञ्चभूतात्मक जगत् मर्त्य = कारण में लीन होने वाला है और कार्यरूप में सदा न रहने से असत् है। इस प्रमाण को ईश्वरपरक मानने से ईश्वर भी नष्ट होने वाला हो जायेगा, जो स्वयं करपात्री जी को भी मान्य न होगा। क्या ऐसी धोखाधड़ी से ही शास्त्रोंके पाण्डित्य का दम्भ करने चले हैं कि जिनके प्रमाणोंमें ही प्रमाणत्व का अभाव है।

(५) निराकार का साकार देह नहीं हो सकता यह कहना इस लिए गलत है कि निराकार जीवों का देह प्रत्यक्ष सिद्ध है। ......— उसी तरह निराकार की देवता क्यों न उपपन्न हो सकेगी? दूसरी बात यह साकार सृष्टि भी तो निराकार से ही तो पैदा होती है। गन्धरहित जल से गन्धवाली पृथिवी, नीरस अग्नि से रसवान् जल होता है, रूप-रहित वायु से रूपवान् तेज होता है, स्पर्श-रहित आकाश से स्पर्शवान् वायु पैदा हो जाता है। ...—— जो ईश्वर उन उन जीवों के कर्म के अनुसार अनन्त शरीरों का निर्माण कर उन जीवों को देता है, क्या वह अपने शरीर के निर्माण में समर्थ नहीं हो सकता? [वेदा० पृष्ठ १८४]

समीक्षा— निराकार कोई भी वस्तु साकार नहीं हो सकती, इसका बाधक कोई उदाहरण संसार में नहीं मिलता। जीवात्मा और ईश्वर तो दोनों निराकार चेतन तत्त्व हैं, ये कभी भी न तो साकार हुए हैं, न हैं, और न कभी हो सकेंगे। इन चेतन तत्त्वोंकी बात तो दूर है, आकाश और वायु दो जड़ तत्त्वोंका भी आकार नहीं है, न कोई साकार बना सका।

जीवात्मा के देह के प्रत्यक्ष का उदाहरण भी दोषयुक्त है, क्योंकि यह उसका साकार रूप नहीं है, परन्तु भोगायतन = भोग करने का आधार है। इसीलिए न्यायदर्शनकार ने 'भोगायतनं शरीरम्' कहा। बिना शरीर को धारण किये जीवात्मा भोग तथा शुभाशुभ कर्म नहीं कर सकता। किन्तु ईश्वर तो कभी भोग नहीं करता। जैसे तो कहा है—

अनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ (ऋ १.१६४.१०)

वह तो संसार की वस्तुओं का भोग न करता हुआ केवल साक्षीमात्र है। उसका अत्ता नाम भी भोगकर्ता होने से नहीं, बल्कि—

अत्ता चराचरग्रहणात्। (वेदान्त दर्शन)

चर और अचर जगत् का ग्रहण करने से 'अत्ता' नाम से प्रसिद्ध है।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः (योगदर्शन) अर्थात् जन्म, आयु तथा भोग कर्माशय के कारण जीवात्मा को मिलते हैं, परन्तु ईश्वर तो

'क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।' (योग०)

इसके अनुसार अविद्यादि क्लेशों, शुभाशुभ कर्मों तथा उनके फलों से सर्वथा रहित है, वह तो सदा मुक्त तथा आनन्दस्वरूप है। फिर परमेश्वर के शरीर-संयोग होना कैसे सम्भव है? और जीवात्मा के शरीरों की रचना ईश्वर करता है, जीव स्वयं नहीं कर सकता। इसी तरह ईश्वर के देह को बनानेवाला भी दूसरा ईश्वर होना चाहिए। इस तरह माना जाये तो अनवस्था दोष तथा अव्यवस्था हो हो जायेगी।

जीव तथा ईश्वर में यह भेद है कि जीव परिच्छिन्न एकदेशी, अल्पज्ञ है और ईश्वर सर्वव्यापक सर्वज्ञ है। यदि उसका देह-संयोग जीव की भाँति माना जाये तो वह सर्वव्यापक कभी नहीं हो सकता, तथा जो ऐसा नहीं है वह जीवों के कर्मफल की व्यवस्था कभी नहीं कर सकता।

यदि यह कहो कि ईश्वर के कुछ अंश का देह-संयोग होता है तो भी ठीक नहीं, इससे ईश्वर के भी खण्ड होने से वह निरवयव नहीं कहला सकता।

जिन श्री रामचन्द्र तथा श्री कृष्ण आदि को सनातनी ईश्वर का अवतार मानते हैं, उनके जीवन तथा उपदेशों से भी इनकी मिथ्या मान्यता का खण्डन हो जाता है। क्योंकि उन्होंने स्वयं ईश्वर की भक्ति करके महान् महत्त्व प्राप्त किया है। क्या ईश्वर भी अपनी ही भक्ति का कर्ता हो सकता है? वेद में उसको 'अज एकपात्'० आदि मन्त्रों में अजन्मा कहा है, क्या वेद का उपदेश भी झूठा है?

दूसरी बात तो करपात्रीजी ने ऐसी लिखी है कि जिसपर दार्शनिक क्या, समस्त विद्वद् वर्ग ही उपहास किया करेगा, इससे जहाँ उनकी दर्शन और सृष्टि-विज्ञान से अनभिज्ञता प्रकट होती है, वहाँ उनकी बुद्धि का दिवालियापन भी स्पष्ट होता है। समस्त दर्शनकारोंका यह एकमत है कि अभाव से भाव की अथवा असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती। आकाश केवल शब्द गुणवाला, वायु शब्द-स्पर्श गुणोंवाला, अग्नि शब्द-स्पर्श-रूप गुणोंवाला, जल शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुणों वाला, और पृथिवी शब्द स्पर्श-रूप-रस-गन्ध गुणोंवाली है। जो जिससे सूक्ष्म है, वह स्थूल में व्यापक हो सकता है। शास्त्रोंमें सृष्टि-रचना के प्रकरणों से भी यही स्पष्ट होता है कि शब्द–स्पर्श तन्मात्राओं से वायु की, शब्द-स्पर्श-रूप तन्मात्राओं से अग्नि की, शब्द–स्पर्श–रूप–रस तन्मात्राओं से जल की, और शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्ध तन्मात्राओं से पृथ्वी की रचना होती है। इसीलिए योगशास्त्र के भाष्यकार व्यासमुनि ने—

एकद्वित्रिचतुःपञ्चलक्षणाः शब्दादयः पञ्चाविशेषाः (योगभा. २.१९)

में क्रमशः आकाशादि को १-२-३-४-५ गुणोंवाला माना है।

किन्तु करपात्री जी की विलक्षणता देखिए कि आपने दर्शनों से विरुद्ध ही अभाव से भाव की उत्पत्ति दिखायी है। गन्ध-रहित जल से पृथिवी, नीरस अग्नि से सरस जल, रूपरहित वायु से रूपवान् अग्नि; स्पर्शरहित आकाश से स्पर्शवान् वायु की उत्पत्ति बताकर उन्होंने कमाल ही कर दिया है। यदि कोई कहे कि तैत्ति० उप० के तस्माद्वा० आदि में भी तो यही बताया है कि आकाश से वायु, उससे अग्नि, उससे जल, उससे पृथिवी की उत्पत्ति हुई और महर्षि दयानन्द ने भी सत्यार्थ० में इसे उद्धृत किया है, तो यह सत्य तो है, किन्तु इस प्रमाण में किसके बाद किसकी उत्पत्ति हुई, यह क्रम ही बताया है, न कि उपादानकारण-कार्यभाव। अन्यथा जो गुण जिसमें नहीं है, उससे उत्पत्ति मानकर अभाव से भाव की उत्पत्ति माननी पड़ेगी।

और जो कहा कि सूक्ष्म भूतों से महाभूतों की उत्पत्ति होती है, किन्तु सूक्ष्म भूतों को निराकार कहना बिलकुल गलत और शास्त्र–विरुद्ध है। क्योंकि वे भी कारणजन्य हैं, उनकी उत्पत्ति अहङ्कार से होती है। जो जो वस्तु न दिखाई दे, वह वह निराकार कभी नहीं हो सकती। अतः स्वामी करपात्रीजी के जीवात्मा और पञ्चभूतों के दृष्टान्तों से ईश्वर का साकार रूप सिद्ध नहीं होता।

—❀—

पूगवाची उत्तरपद परे हो तो कर्मधारय में कुमार विकल्प से आद्युदात्त हो— कुमारचातकः कुमारचातकाः।

२९ इगन्तकाल कपाल भगाल शरावेषु द्विगौ ॥

ये परे हों तो द्विगु में पूर्व पद प्रकृति से हो– पञ्चारत्नि दशारत्नि दशमास्य दशकपाल दशभगाल दशशराव।

३० बह्वन्यतरस्याम् ।

बहु विकल्प से प्रकृति से हो— बह्वरत्निः बहुमास्य बहुकपालः बहुभगालः बहुशरावः।

३१ दिष्टिवितस्त्योश्च ।

ये दोनों परे रहते पूर्णपद विकल्प से प्रकृति से हो— पञ्चदिष्टिः पञ्चवितस्तिः ।

३२ सप्तमी सिद्धशुष्क पक्व बन्धेष्वकालात् ।

सिद्ध आदि परे हों तो कालवाची से भिन्न सप्तम्यन्त पद को प्रकृति- काम्पिल्यसिद्ध निधनशुष्क भ्राष्ट्रपक्व चक्रबन्ध ।

३३ परि प्रत्युपापा वर्ज्यमानाऽहोरात्रावयवेषु।

वर्ज्यमानवाची, दिन-रात के अवयव का वाची परे हों तो परि आदि प्रकृति से हों– परित्रिगर्तं वृष्टो देवः प्रतिपूर्वाह्णम् उपापराह्णम् अपत्रिगर्तम् ।

३४ राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु ।

राजन्यवाची बहुवचनान्त द्वन्द्व मे अन्धक और वृष्णि अर्थो में पूर्व पद प्रकृति से हो- श्वाफल्कचैत्रकरोधकाः शिनिवासुदेवाः ।

३५ सङ्ख्या ।

द्वन्द्व में संख्यावाची पूर्णपद प्रकृति से हो- एकादश द्वादश ।

३६ आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासी ।

आचार्य जहाँ मुख्य न हो ऐसे अन्तेवासियों के द्वन्द्व में पूर्णपद स्वर ज्यों का त्यों रहे– पाणिनीयरौढीयाः ।

३७ कार्तकौजपादयश्च ।

आगे के गण में पढ़े शब्दों के पूर्वपद का स्वर ज्यों का त्यों रहे– कार्तकौजपौ

१९९ वां गण– कार्तकौजपौ सावर्णिमाण्डूकेयौ आवन्त्यश्मकाः पैल

[illegible] [illegible]: [illegible]; [illegible]: शु[illegible]: सण्[illegible]—
बाभ्रवाः आर्चाभिमौद्गलाः कुन्तिसुराष्ट्राः चिन्तिसुराष्ट्राः ताण्डव-
तण्डाः गर्गवत्साः अविमत्तकामविद्धाः, बाभ्रवशालङ्कायनाः बाभ्रवदान-
च्युताः कठकालापाः कठकौथुमाः कौथुमलौकाक्षाः स्त्रीकुमारम्
मौदपैप्पलादाः, वत्सजरत् सौश्रुतपार्थवाः, जरामृत्यू याज्यानुवाक्ये ।

३८ महान् व्रीह्यपराह्ण गृष्टीष्वास जाबाल भार भारत हैलिहिल-
रौरव प्रवृद्धेषु ॥

महान् का स्वर ज्यों का त्यों रहे सूत्रोक्त दश शब्द आगे हों तो— महाव्रीहि महापराह्ण महागृष्टि महेष्वास महाजाबाल महाभार महाभारत महाहैलिहिल महारौरव महाप्रवृद्ध ।

३९ क्षुल्लकश्च वैश्वदेवे ॥

वैश्वदेव परे रहते क्षुल्लक का भी स्वर ज्यों का त्यों रहे— क्षुल्लक-वैश्वदेवम् महावैश्वदेवम् ।

४० उष्ट्रः सादिवाम्योः ॥

सादि-वामि परे हों तो उष्ट्र प्रकृति से हो- उष्ट्रसादी उष्ट्रवामी ।

४१ गौः सादसादिसारथिषु ॥

ये परे हों तो गौ का स्वर ज्यों का त्यों रहे- गोसाद गोसादि गोसारथि ।

४१ कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपा पारेवडवा तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलो दासीभाराणां च ॥

[illegible] और दासीभार आदि के पूर्वपद का स्वर ज्यों का त्यों रहे— कुरुगार्हपतम् । वार्तिक—वृजिगार्हपतम् । रिक्तगुरु असूत-जरती अश्लीलदृढरूपा पारेवडवा तैतिलकद्रूः पण्यकम्बलः दासीभार ।
[illegible]- दासीभार देवहूति देवभूति देवसूति देवनीति वसुनीति ओषधिः चन्द्रमाः

४३. चतुर्थी तदर्थे ।

[illegible] परे हों तो चतुर्थ्यन्त पूर्वपद-स्वर ज्यों का त्यों रहे —[illegible] [illegible] [illegible] बलीहिरण्यम् ।

४३ अर्थे ॥

अर्थ परे हो तो चतुर्थ्यन्त का स्वर ज्यों का त्यो रहे- मात्रर्थम् देवतार्थम् [illegible] ।

४५ क्ते च ।

और क्तान्त परे हो तो भी प्रकृतिस्वर हो— गोहितम् मनुष्यहितम्।

४६ कर्मधारयेऽनिष्ठा ॥

कर्मधारय में अनिष्ठान्त ज्यों का त्यों रहे- श्रेणिकृताः पूगकृताः।

४७ अहीने द्वितीया।

अहीनवाची समासमें द्वितीयान्त ज्योंका त्यों रहे- कष्टश्रित ग्रामगत।

४८ तृतीया कर्मणि ॥

कर्मवाचक क्तान्त परे हो तो तृतीयान्त ज्यों का त्यों रहे- अहिहत महाराज-हृत ।

४९.गतिरनन्तरः।

कर्मवाचक क्तान्त परे हो तो अव्यवहित उपसर्ग-स्वर ज्यों का त्यों रहे- प्रकृत प्रहृत।

५० तादौ च निति कृत्यतौ ॥

तुवर्जित तकारादि नित् कृत्प्रत्ययान्त परे हो तो उपसर्ग-स्वर ज्यों का त्यों रहे- प्रकर्ता प्रकर्तुम् प्रकृतिः।

५१ तवै चान्तश्च युगपत् ॥

तवै को अन्त उदात, और उपसर्ग का स्वर ज्यों का त्यो दोनों एक समय में हों- अन्वेतवै।

५२ अनिगन्तोऽञ्चतौ व प्रत्यये।

व प्रत्ययान्त अञ्चति परे हो तो अनिगन्त उपसर्ग-स्वर ज्यों का त्यों रहे- प्राञ्चौ प्राञ्चः।

५३ न्यधी च।

और नि-अधि का स्वर भी यथावत् रहे— न्यङ् न्यञ्चौ न्यञ्चः अध्यङ् अध्यञ्चौ अध्यञ्चः।

५४ ईषदन्यतरस्याम्।

ईषत् को विकल्प से यथावत् स्वर हो- ईषत्कडारः।

५५ हिरण्यपरिमाणं धने।

घन परे हो तो सुवर्ण-परिमाण-वाची विकल्प से यथावत रहे— द्विसुवर्णधनम्।

५६ प्रथमो ऽचिरोपसम्पत्तौ।

नवीन उपलब्धि में प्रथम का स्वर विकल्प से यथावत् रहे- प्रथमवैयाकरणः।

५७ कतरकतमौ कर्मधारये।

असंज्ञारय में कतर और कतम का स्वर विकल्प से यथावत् रहे—कतरकठ: ।

५८ आर्यो ब्राह्मण कुमारयोः ।

ये परे हों तो आर्य का स्वर यथावत् रहे— आर्यब्राह्मण आर्यकुमार ।

५९ राजा च ।

और राजा का स्वर विकल्पसे यथावत् रहे— राजब्राह्मण राजकुमार ।

६० षष्ठी प्रत्येनसि ।

प्रत्येनस् परे हो तो षष्ठयन्त राज का स्वर विकल्पसे यथावत् हो—राजप्रत्येना: ।

६१.क्ते नित्यार्थे ॥

नित्य समास में क्तान्त परे हो तो विकल्प से यथावत् स्वर हो—नित्यहसित सततहसित ।

६२.ग्राम: शिल्पिनि ।

शिल्पि वाची आगे हो तो ग्राम का स्वर यथावत् हो— ग्रामनापित ।

६३ राजा च प्रशंसायाम् ॥

और राजा-स्वर भी प्रशंसामें विकल्पसे यथावत् हो – राजनापित ।

६४. आदिरुदात्त: ।

पूर्वपदका आदि उदात्त हो । यह 'न भूता०'६.२.६१ तक अधिकार है ।

६५ सप्तमीहारिणौ धर्म्येऽहरणे ॥

हरण-वर्जित धर्म वाचक आगे हो तो सप्तम्यन्त और हारिवाची आद्युदात्त हों— मुकुटे कार्षापणम् हले द्विपदिका याज्ञिकाश्व: वैया-करणहस्ती ।

६६ युक्ते च ॥

युक्त (तत्पर) वाची समासमें आद्युदात्त हो— गोबल्लव अश्वबल्लव ।

६७ .विभाषाऽध्यक्षे ।

अध्यक्ष परे रहते विकल्प से आद्युदात्त हो— गवाध्यक्ष: ।

६८ पापं च शिल्पिनि ॥

शिल्पिवाची परे रहते पाप विकल्प से आद्युदात्त हो— पापनापित पापकुलाल ।

६९ गोत्रान्तेवासि माणवक ब्राह्मणेषु क्षेपे ॥

निन्दा में गोत्र आदि के वाचक परे रहते पूर्वपद आद्युदात्त हो— भार्यासौश्रुत कुमारीदाक्षा: ओदनपाणिनीया: भिक्षामाणव भयब्राह्मण ।

शतपथ का ३ अट ब्राह्मणएक

अध्वर्यु होता से कहता है कि अग्नि-परिक्रमा के लिए बोल, (वह ऋ ४.१११.-३ बोलता है) आग्नीध्र अंगारे लेकर चारों ओर फिराता है इसलिए कि छिद्ररहित सब ओर से रक्षित होजाय कि दुष्ट राक्षस न सता सके क्योंकि अग्नि राक्षस-नाशक है। जहाँ इसको पक्का करते हैं वहाँ वे अग्नि को फेरते हैं। ६

कहते हैं कि उस अग्नि को ले आये, अन्य अग्नि-मन्थन कर श्रपण करे क्योंकि आहवनीय से पक्का करना ठीक नहीं, क्योंकि उसमे तो पके हुए को होमते हैं। ७

किन्तु ऐसा न करे। जो अग्नि फिराई थी उससे वह ग्रहण हो चुका, अन्य अग्नि का प्रयोग ऐसा ही है कि एक को छोड़ कर दूसरे को लेना। अतः उसीके सामने पक्का करे। ८

अब आग्नीध्र उल्मुक लेकर आगे आता है कि वह दुष्ट राक्षसोंको भगा देगा। भय-रहित मार्ग से (बालक को) ले जाते हैं, दो वपा श्रपणियों (चरबी, मोटापा कम करनेवाली छड़ियों) के साथ प्रतिप्रस्थाता उसे देता है, उसे अध्वर्यु, अध्वर्यु को यजमान। ९

कहते हैं कि (दुष्ट छात्र के लिए दण्ड-विधान) यजमान न आरम्भ करे क्योंकि उसको मृत्युके लिए लेजाते हैं अत. वह न आरम्भ करे। किन्तु आरम्भ करे ही क्योंकि उसको तो यज्ञ (संगति के लिए लेजाते हैं, मृत्यु के लिए नही। यदि न आरम्भ करे तो अपने को यज्ञ से ही हटाये, अतः अन्वारम्भ करे ही। वह परोक्ष होता है, वपाश्रपणियों से प्रतिप्रस्थाता, उसे अध्वर्यु देता है, उसे यजमान, अतः यह [दुट के लिए दण्ड] परोक्ष हुआ। १०

अब छाई हुई वेदि से दो तृण लेता है और श्रौषट् बोलकर कहता है, होता, देवों के लिए हव्य भेज। यह पशु [छात्र] के सम्बन्ध में सब विद्वानोंकी बात है। ११

अब वह यजमान से [यजु ६-११] कहलाता है—

रेवति यजमाने प्रियं धा आविश उरोरन्तरिक्षात् सजूर्देवेन वातेन।

हे वाणी, तू यजमान में सुख धारण कर, विस्तृत अन्तरिक्ष से देवी वायु के द्वारा बिना कष्ट आ। बहुत बोलने के कारण वाणी रेवती है। मनुष्यके समान क्रिमि भूतके बिना अन्तरिक्षमें हैं उनसे रक्षा कर। १२

हविषस्त्मना यज्ञ समस्य तन्वा भव । [य ६-११]

वह वाणी से कहता है कि तू इस अनार्त हवि की आत्मा से यज्ञ कर और इसकी आत्मा के साथ संयुक्त हो । १३

जहाँ इनका विशसन [विशेष दण्ड-विधान] करते हैं वहाँ इसके सामने [इसे तुरन्त बताने के लिए] तिनका फेंकते हैं —

वर्षो वर्षीयसि यज्ञे प्रियं धाः । [य ६-११]

हे सुखवर्षक ! इस सुखवर्षक यज्ञ में यज्ञ-रक्षक को स्थिर कर। कुश नीचे बिछा देता है कि हवि नष्ट न हो, इस तरह दण्डनीय शिष्य में जो कमी होती है वह ठीक हो जाती है। १४

अब फिर आकर आहवनीय की ओर मुख करके बैठते हैं कि इस सम्यक् ज्ञापन किये जाते को न देख लें। वे सामने की हड्डी या कान के पीछे दंड नहीं देते क्योंकि यह मानुष और पितरों की विधि है; वे इसके मुख पर तमाचा लगाते हैं या हाथ बाँधते हैं। मारो-काटो नहीं कहते, यह मानुष है। सम्यक् ज्ञान कराओ, अनुकूल चलाओ यह देवों की भाषा है। जब कहते हैं अन्वगन् [मान गया] तब वह विद्वानों के पास जाता है, अतः अन्वगन् कहा करते हैं । १५

जहाँ इसको ठीक करते हैं वहाँ सम्यक् ज्ञापन से पहले स्वाहा देवेभ्यः [दिव्य गुणों के लिए] आहुति, और बालक का बोध हो गया, यह कहके देवेभ्यः स्वाहा [विद्वानों के लिए सुवचन हो] की आहुति दी जाती है जिससे दोनों देव उसको सुख के लोक [गुरुकुल] में ले जाते हैं। ये दो परिपशव्य आहुतियाँ हैं; चाहे दे या न दे, इच्छा हो तो अन्दर न करे।१६

यह अध्याय ८ का ब्राह्मण १ समाप्त हुआ ।

अध्याय ८ ब्राह्मण २

जब कहा कि शिष्य का सम्यक ज्ञापन होगया तब अध्वर्यु नेष्टा से कहता है—(गुरु-) पत्नी को ले आ। वह पैर धोने का जल लिये हुई पत्नी को लाता है। १

अब वह उससे कहलाता है— नमस्त आतान (य ६.१२)

[विस्तृत यज्ञ! तेरे लिए नमः(सम्मान)हो] यज्ञ आतान है क्योंकि यह विस्तृत किया जाता है। पत्नी यज्ञका पिछला आधा भाग है। उसे यज्ञ की प्रसन्नतार्थ आगे बुलाता है, वह यज्ञ की कमी पूरी करती है। तथैव इसे यज्ञ हानि नहीं करता। अतः नमस्त आततान कहा। २

अनर्वा प्रेहि घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या अनु ॥ (य ६.१२)

शत्रु-रहित होकर, घी की नहरों में, सत्य की गलियों में अर्थात् कल्याण-मार्गों में चल।

देवीराप. शुद्धा वोढ्वं सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वय परिवेष्टारो भूयास्म। (य ६.१३)

हे दिव्य शुद्ध जल व स्त्रियो, तुम अच्छी तरह तय्यार होकर विद्वानों का पालन करो, हम अच्छी तरह रहनेवाले हों, यह कहकर वह जलको पवित्र करतीहै।३

अब पत्नी शिष्यके प्राण जलसे छूती है क्योंकि जीव विद्वानोंकी हवि है अमृतोकी अमृत, छात्र के संज्ञपन-विशसन के समय कष्ट हुआ। जल प्राण हैं, उनसे इसमें प्राणशक्ति देती है। इस तरह विद्वानों की हवि छात्र-जीवन अमृतों का अमृत हो जाता है। ४

गुरुपत्नी स्पर्श करती है क्योंकि वह स्त्री है जिससे ये सन्तानें उत्पन्न होती हैं. इसे उसके लिए स्वस्थ करता है अतः पत्नी स्पर्श करती है। ५

वह य ६.१४ के इस मन्त्र से स्पर्श करती है—

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥

इसके एक-एक वाक्य से क्रमशः मुख, नाक, आँखों, कानों, नाभिस्थ अनिरुक्त प्राण. पश्चात् प्राण, उपस्थ, गुदा, तथा पैरों और चरित्रों को शुद्ध करती है। पैरों से खड़ा होता है अतः प्रतिष्ठित करती है। ६

जो जल बचा, आधा या जितना हो; उससे अध्वर्यु-यजमान उसको सिर से लेकर छूते हैं, प्राणशक्ति और प्रेरणा देते हैं। ७

जहाँ कहीं (छात्रपर) क्रूरता करते हैं वहीं जलसे शान्ति देते हैं।८

वे दोनों इस मन्त्र से उसपर जल सींचते हैं-

मनस्त आप्यायताम् वाक्त आप्यायताम् प्राणस्त आप्यायतां चक्षुस्त आप्यायताम् श्रोत्रं त आप्यायताम् । यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आप्यायताम् निष्टयायताम् (य ६-१५)

तेरा मन-वाक्-प्राण-आँख-कान और जो क्रूरता तथा कमी हो वह ठीक हो, तू पुष्ट हो। ६

इस प्रकार (शिष्यकी सहनशक्तिकी परीक्षामें) यदि क्रूरता हो जाय, चोट लग जाय तो वे जल की शान्ति के साथ ठीक कर देते । ।

तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः ॥ (य ६.१५)

[वह तेरा शुद्ध हो, तेरा अगले दिनों के लिए कल्याण हो] इससे बचा हुआ जल उसके जघन से नीचे डाल देते हैं। १०

यदि उसके दिन-रात अशान्त हों तो जल जघन पर डालते हैं। ११

अब छात्र को उत्तान लिटाकर तृण रखते हैं और असि(रक्तपरीक्षण केलिए सिरज) लगाते हैं—

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः ॥ (य ६.१५)

[हे ओषधि और विज्ञानाध्यापक ,रक्षा कर, हे स्वधिति(सिरज और अध्यापिके) ! तू इस (शिष्य-शिष्या) की हिंसा न कर ।] इस प्रकार जिस असि रूपी वज्र को लगाता है वह उसकी हिंसा नहीं करता। १२

जो प्रज्ञातधार है उसका प्रयोग करता है क्योंकि वह यजुः से पवित्र की गई है। कुशा को अग्र बाएँ हाथमें और जड़ दाएँ में रखता है। १३

समाचार- श्रावणी ६ अगस्त को, वेदप्रचार सप्ताह १० से १६ अगस्त तक, स्वतन्त्रतादिवस १५ अगस्त को, श्रीकृष्णाष्टमी १७ अगस्त को हुए। शोक है श्री प्रेम चन्द आनन्द गोइरी का ८.१९.८७ को देहान्त होगया।

चंडीगढ़-शाखा समाचार

मैंने २८-६-८६ को सपत्नीक दिल्ली से इंग्लैण्ड-अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। २०-१०-८६ को लौटते ही तत्काल वाराणसी मातृ-मन्दिर कन्या गुरुकुल की रजतजयन्ती मे जाकर चतुर्वेद-यज्ञ का सञ्चालन करके ३१ अक्टू० को ४ मास के बाद चण्डीगढ लौट आया।

आर्यसमाज लदन, न्यूयार्क, टोरन्टो में मेरे लगभग तीस व्याख्यान हुए। बी०बी०सी० लदन तथा वाइस आफ अमेरिका वाशिङ्गटनमे भी दो-दो व्याख्यान उर्दू वेदभाष्य तथा वैदिक दर्शन विषय मे हुए।

लंदन न्यूयार्क के बाद टोरण्टो आर्यसमाज ने पैंतिस लाख रु० में दो एकड भूमि में मन्दिर का निर्माण शुरू किया है, बहुत बधाई!

यहाँ गतवर्षों यज्ञ व सत्संग मंगल को यथावत् हुए जिनमें श्रीदीवान तथा डा० भवानीलाल के प्रवचन हुए। यथासमय अनेक प्रस्ताव हुए—

१- महापंजाब पुन: स्थापित किया जाय।

२- नई शिक्षानीति गुरुकुलों की भांति हो जहाँ बालक-बालिकाएं अलग अलग एक समान खान-पान पहनावे के साथ हिन्दी संस्कृत माध्यमसे पढें।

३- पंजाब तथा केन्द्र शासन से प्रतिदिन निर्दोष पंजाबी उग्रवादियो से की गई हत्याओं के विरुद्ध निरन्तर पूर्णरूप बचाव का अनुरोध।

४- पंजाब को सेना के हवाले करने का सबल आग्रह।

५- चण्डीगढ को पंजाब मे मिलाने का प्रबल विरोध।

६- पंजाब से हिन्दुओं के निकास पर दु:ख प्रकट करते हुए शासन को चेतावनी दी गई कि अपनी ही प्रजा का शरणार्थी बनना अत्यन्त लज्जा की बात है।

७- राष्ट्रपति-शासनका क्या अर्थ जबकि हत्याएँ हर दिन जारी हैं।

८- मुक्तसरवर्ती गिद्दड़बाहा से आती बस के ८० यात्रियो के मरने पर परिवहन विभागकी कड़ी आलोचना की जिसने बसके ऊपर बिठानेकी अनुमतिदी।

९- भारत-सरकार की संस्कृत-विरोधी नीति का घोर विरोध।

वेद के विद्वानो से अनुरोध और निवेदन है कि वे परिषद्-स्थापक स्व. स्वा.धर्मानन्द के उद्देश्यकी पूर्तिके लिए आगे आकर सहयोग करें।

—आशुराम आर्य, महामन्त्री विश्ववेदपरिषद् [redacted] चण्डीगढ

वर्ष ११ अङ्क १ सितम्बर १९८७ ✽ वेदज्योति ✽ २०४४।

नमस्ते ! आपका वर्ष पूर्ण होगया, कृपया वार्षिक शुल्क २...

दैनन्दिनी आश्विन २०४४

तिथि कृष्ण १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ...

वार मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो ...

नक्षत्र पू उ रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु पु श्ले म पू ...

तारीख सित. ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३

तिथि शुक्ल १ २ ३ ४ ५ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू

वार गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु

नक्षत्र ह चि स्वा वि अ ज्ये मू पू उ श्रव :श पू रे

तारीख सि. २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० अ. १ २ ३ ४ ५ ६ ७

× × × × × × × × × × × × × × × × × ———

प्रेषक— वृह० आदर्श प्र० अनुमति ७३२०१ सेवा में संख्या १३२८

सी ८/७ महानगर, लखनऊ २२६००६ श्री [illegible]

पुस्तकालयाध्यक्ष

डा० गुरुकुल कांगड़ी

(हरिद्वार)

ओ३म्

वेद-ज्योति

वर्ष ११ अंक १० अक्टूबर ८७ ई.

१४, आश्विन २०४४ वि०, वेदसृष्टिसंवत् १९६०८५३०८८, दयानन्दाब्द १६३
सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक — आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०,
सहायक — विमला शास्त्री, श्री सुधीन्द्रनाथ शास्त्री, श्री ओजोमित्र शास्त्री
विश्व वेद परिषद् बी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), एक प्रति २)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती



बलिदान-दिवस दीपावली
बाईस अक्टूबर १९८७ ई०

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धी



जन्म-जयन्ती दो अक्टूबर १९८७ ई०

सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या

वेदों में भी यतयः इत्यादि पदों से संन्यास का विधान है (समुल्लास ५)

मन्त्र २१ — ऋषि काण्व, देवता इन्द्र, छन्द गायत्री, स्वर षड्ज।

य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः।
ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥ ऋ० ८-६-१८

हे परमात्मन्! जो चित्त का निरोध करनेवाले (यति संन्यासी) तथा जो अज्ञान का मर्जन करनेवाले विद्वान् हैं वे आपकी स्तुति करते हैं। हे ओजस्विन्! आप मेरी भी पुकार सुनें। (आर्यमुनि-भाष्य)



वेदाङ्ग निघण्टु निरुक्त कोश

रण्य २,१७ रमणीय सम्राम्य   रत्न राधः रिक्थ रेक्णः रयि२.१०धन

रथर्यति रिणाति रीयते रेजति   रभस ३—३ महान्

३.१४ गच्छति रथाभिलाषी   रम्णाति २—१९ हन्ति

रम्भ १—२९ दण्ड   रयि रस रेतस् १ १२ जल २.१० धन

रशना २—५ अङ्गुलि   रश्मि १—५ किरण लगाम

रसति रिहति रेभति रौति ३.१४ अर्चति   राजति २.२१ ईष्टे

राति रासति ३—२० ददाति

राम्या १-७ रात   राष्ट्री २.२२ मालिक

रासभौ १-१५ अश्विनों के अश्व   रास्पिन् रास्पिन ४ ३ वक्ता गुरु

रिक्वा रिपु रिभ्वा रिहायः३.२४स्तेन   रिप १.१ पृथिवी

रिरिक्षु रिरीहि ३.१९ याचस्व   रिशादस् ४-३ दस्यु-नाशक

रुक्म१,२हिरण्य रोचिष्णु विशाल   रुजाना रोधचक्रा रोधस्वती१.१३नदी

रुद्र रेभ ३-१६ स्तोता   रुशन् ४.७चमकीला वर्ण

रूप २-१३ उपमा   रेजते ३.२६ बिभेति कम्पते

रेळते २-१२ क्रुध्यति   रैवत रौहिण १-१० मेघ पर्वत

रोचते एक-सोलह ज्वलति   रोदसी रोधसी ३.३० द्यावापृथिवी

रोहित् एक-तेरह, पन्द्रह नदी अग्नि का अश्व

ल

लवति लोटते लोठते २.चौदह गच्छति   लोध ४.एक तपोलुब्ध

लोह एक-२ सोना

व

वक्षणा वधू वर्ग. १.१३ नदी   वक्षस् ४.२ दीप्ति छाती

वग्नु वल्गु १.११ वाणी   वज्री ३.२० वीर्यवान्

वञ्चति वर्त्तते २-१४ गच्छति   वत् वर्णं ३.१३ उपमा

वध वर्ग १-६ २-२० बल वज्र   वन १—५, १२ रश्मि जल वध

वनगु ३—२४ स्तेन   वनुष्यति २.१२ क्रुध्यति ४.२ हन्ति

वनोति वश्मि वष्टि २,६ इच्छति   वपुष् १.१२ ३.१० जल रूप

वप्सक ३.२ ह्रस्व बान्ताव   वम्री ३.२९ दीमक

वयुन ३.८,९ प्रशस्य प्रज्ञा कान्ति   वराह बलिशाली वल१.१० मेघ पर्वत

वराहु १—२० मरुत्   वरिवस् २.१० धन

वक्म ३—४ मुह वचंम् ३,७ प्र ६
वविक्ष वक्षि ३—७ अन्न वल्गूयति ३—१४ अर्चति
ववक्षिथ ३—३ महान् वज्र ३.२१ रू।
वसु १.५ रश्मि २.१० धन अन्न गृहस्थ वस्तो' १—६ दिन
वस्वी १—७ रात वहते वाति वेति वेनति वेमिष्टि २.१४ गच्छ
वह्नि.१,१४ अश्व विवाहित पुत्र वारे वारि वार्षिक १.१२ धन
वाक वाण वाणीची,१.११ वाणी वाघत ३.१५,।१८ मेधावी ऋत्विज
वाजगन्ध्य ४—२ बलप्रद वाजपस्त्य ४-दो ज्ञानवर्धक
वाजयति ३-१४ अर्चति वाजसाति धृतूर्य मिलाप की युद्ध
वाजिनी...वती विभावरी१.८उषा वाजिन् १ १४ अश्व वेगवान
वाज दो-७, १७ अन्न युद्ध ६।ऋच्छति वेसतिदो- ९ इच्छति
वातरंहस दो-१५ आशुकारी वातापय ४-३ अन्न
वाम तीन-८ प्रशस्य वार्य ४-दो वरणीय श्रेष्ठतम
वावशान४.दो कान्तिमान् उपदेष्टा वासर एक-६ दिन
वाशी एक-ग्यारह वाणी४.एक छुरा वाहिष्ठ ४-दो उत्तम वाहक
वाहस ४-एक वेद सोमरस विप्र विधातृ विपन्यु दिपश्चित् विप
विचर्षणि विचष्टे विश्वचर्षणि विप् वेन वेधसे तीन- ग्यारह मेधावी
तीन-ग्यारह द्रष्टा बहुदर्शी विजामातृ ४-तीन क्रीता-तत्ति
विदथ तीन.सत्रह यज्ञ दो.तीन ज्ञान विद्रध४ एक विद्ध
विधेम तीन-५ परिचरेम दद्या' विनङ्गृसौ दो-चार बाहु
विप एक-ग्यारह वाणी विप् त्रिश नो-४ अङ्गुलि
वियत् एक-तीन आकाश वियात: दो-सतरह यातनादायी
वियुते ४-एक द्यावा-पृथ्वी विरप्शिन् विवक्षसे वावृत व घ वि-
विवस्वत् विश आत दो-तीन मनुष्य हायस् तीन-तीन महान्
विवाक दो-सत्रह युद्ध विवासति तीन-५ परिचरति
विश्वरूपा: १,१५ बृहस्पति के अश्व विश्व व्यानशि ३—१ बहुत
विष १—१५ जल विषु विषुणं विषुवे ४—१ विषम
विष्टप् १—४ सूर्य द्युलोक विष्ट्वी वेष वेवेष्टि २,१ कर्म
विष्णु ३.१७-यज्ञ व्यापक वेद य विष्पित ४—१ दुःख
विसुह् ४—३ अन्न वीरुध ४.३ औषधि
वी ४.१ दर्शन खादन पान वीडु वृके वृजन २—९ बल
वृक २.२० वज्र ३.१४ चोर ४,२ वृणक्ति वृश्चति २—१९ हन्ति

चन्द्र सूर्य कुत्ता मंडिया | वृत वेदस् २—१० धन
वव वृषन्धि १—१० मेघ | वृन्द वृन्दारक ४—३ समूह
वेरेष्टि २—८ अत्ति | वेतस ३—२१ उपस्थेन्द्रिय
व्यथि २—१३ क्रोध | व्यन्तः ४—१ पश्यन्तः
व्योमन् १.३,६,१० आकाश दिशा जल | व्रज १—१० मेघ पर्वत
व्रन्दिन् ४—२ कोमलकर्ता | व्राः ४—२ आत्मा:

श

शंयोः ४.१ रोग-शमन भय-दूरीकरण | शयुः ४.१ शान्तिमाला सुखी सुखकामी
शंसति ३—१४ अर्चति | शक्ति शग्मन् शक्मन् २—१ कर्म
शक्वरी २.४।११ बाहु गाय | शग्म ३—१९ याचना
शंग्म तीन—६ सुख | शची १.११ २-१ तीन.१ वाक् कर्म प्रज्ञा
शतं शश्वत् तीन—१ बहुत | शकर शम् शर्म शातपन्त शिम्बात शिरिणु
शंतानि शृणु शव शवः २.१२ हन्ति शिर शुन शुन शेव शेवध ३.६ सुख
शमी शिमी शिल्प २ १ कर्म | शम्बर १.१०,१२ मेघ पर्वत बल १.१ जल
शम्ब ४—२ वज्र | शरण शर्म तीन— गृह
शर्या २.५ अङ्गुलि इषु | शरारु ४.तीन हिंसालु
शर्ध वधमुष्क शुष्म शूष दो.९ बल | शर्वरी शिरिणा मोकी श्यावी १.७ रात्रि
शवति श्रोत श्वञ्चति दो.१४ गच्छति | शव शुक्र शुभ १—बारह जल
शशमानः तीन-१४ शर्धन् ४-तीन | शासदानः ४—तीन दमन करता हुआ
शंसमानः | शिक्षति तीन—बोध देता है
शितामः ४.१ बाहु गुदा यकृत् पार्श्व | शिपिविष्ट ४-२ सर्वव्यापक ब्रह्म
शिप्र ४-१ कपोल जबड़े नाक | शिरिम्बिठ ४-३ मेघ राजा
शिशीते ४-१ तीक्ष्ण करता है | शीभ शु शुपम शुर्त ३-१५ शीघ्र
शीर ४-२ व्याप्त स्थित व्यापक | शुरुध् ४-१ जल
शुरताति ३—१७ सुख | शृङ्ग शोचिस् १—१७ तेज ज्योति शोचि
शेप ३—२१ उपस्थेन्द्रिय | शेष २-३ अपत्य
शोचति १—१६ ज्वलति | श्मशा ४-२ नाली नाड़ी
श्यावाः १-१५ सविता के अश्व | श्येन १-१४ अश्व
श्रत् ३—१० सत्य | श्रवस् २-७,१० अन्न धन प्रशंसा
श्रायन्तः ४—३ समाश्रिताः | श्रुष्टी ४—तुन शीघ्र सुख शान्ति
श्लोक १—११ वाक् | श्वघ्नी ४.२ जुआरी
श्वात्र २-१० शुक्र ४-२ शीघ्र | श्वैत्या १—८ उषा

व्य:कृति २—१४ गच्छति

स

संयुत् संयुग संवन सङ्ग: सङ्ग्य सङ्गथ सङ्गम सङ्गर समन् समन समनीक समरण समयं समिति समिथ समीक समोह स्पृध् २.१७ युद्ध

सश्चति सचति सर्वति सश्चते सश्चति सिसति सैवति स्यन्दते स्यमति स्रवति स्रसते स्वरति २,१४ १.१४ गच्छति सगर समुद्र १.३ आकाश

सचते ३-२९ अनुग्रह करता है सचा ४.२ सह

सत सतीन सत्य सदन १.१२ जल सतस् १.२९ प्राप्त

सत्रा ३—१० सत्य सदसी सद्मनी स्वधे ३.३० द्यावापृथिवी

सदान्वा ४.२ सदा रुलानेवाली सद्मन् १-१२ १-४ जल युद्ध गृह

सनाभि स्वसृ २—५ अङ्गुलि सनुत: ३—२५ निर्णीत अन्तर्हित

सनेमि ३—२७ पुरातन सपति सपर्यति ३.५ परिचर अर्च स्पृश

सप्तर्षि १—८ किरण इन्द्रियां सप्ति १,१४ अश्व

सप्रथस ४—३ सर्वत्र फैलाहुआ सबाध् ३.१८ ऋत्विज

सम सीम ४—२ सर्व सरस्वती सरस् १-११ वाणी १-१३ नदी

सरित् सिन्धु स्रवन्ती १-१३ नदी सर्ग सर्णीक सर्पि: सर्व सह: १-१२ जल

सललूक ४-३ पापी सलिल सुक्षेम सुत सरा स्रोत: १-१२ जल

सवन ३-१७ यज्ञ स्थान मोक सवीमन् ४.३ आज्ञा अनुशासन सृष्टि ऐश्वर्य

सश्र २-७ अन्न ४-२ स्वपन विद्युत् सस्ति स्वपिति ३-२१ सेते

सस्नि ४-दो शुद्ध सस्रुत् सीरा स्रवन्ती स्रोत्या १ १३ नदी

सस्व: ३-पच्चीस निर्णीत अन्तर्हित सहस्र तीन-१ बहुत

साचीवित् दो-पन्द्रह शीघ्र साध्य सुपर्ण १-५,१४ रश्मि

सायक स्वधिति सृक दो-बीस वज्र सिन सुत स्वधा दो-७ ४-दो अन्न

सिषक्तु तीन-अड़तीस अनुगृह्णातु सुकम् तीन-बारह सर्व

सुरम्य सुदिन सुम्न स्यूमक स्योन तीन-६ सुख सुनीथ तीन-८ प्रशस्य

सुतुक ४-१ उत्तम सन्तान वाला सुदत्र ४-तीन कल्याणार्थ दानी

सुपर्णी सूर्या स्वन स्वर स्वाहा सुप्रायण ४-१ अच्छा गमन

१,११ वाणी रात सुमत् ४-तीन स्वयम्

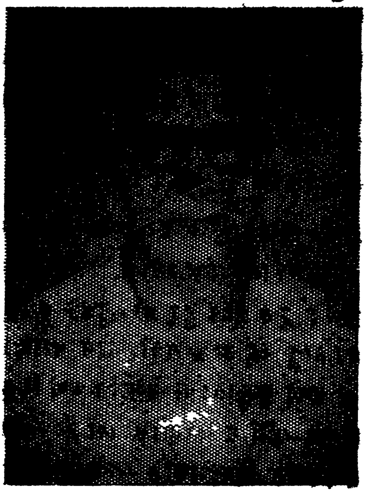
सुम्नावारी सूनरी सूनृता सूनृतावती सुमित अच्छी दया सन्तान

सूनृतावरी १-८ उषा सुविदत्र ४-तीन अच्छे धन से युक्त

सुशिप्र ४-तीन फैला अच्छेमुख सूद तीन-तेइस कूप

सूनु दो-दो अपत्य सूरि स्तामु तीन-सोलह स्तोता

हरिताभा परासुव !



श्री सुधीन्द्र थ शा.ही १२०१०

सावयोगनीर्थ सिद्धान्त-शिरोमणि डी २१ महानगर विस्तार लखनऊ

वैदिक संस्कृति का मूलाधार वर्णाश्रम धर्म है। मानव इसीसे धर्म अर्थ काम मोक्ष रूपी चतुर्वर्ग को पाने में समर्थ होता है। ऋषियों ने तपोबल से जिस वैदिक संस्कृति को आज तक बचाया है उसकी अवहेलना से कुछ तथाकथित पण्डितम्मन्य साधु वर्णाश्रम धर्म के मूल में ही प्रहार कर मठाधीशों का कार्य कर अपने को धन्य समझनेकी धृष्टता कर रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने योगी अरविन्द के शब्दोंमे वेदोंके ताले खोलने की कुञ्जी दी और वेदकी ज्योति फैलाई। श्री करपात्रीने प्रथम तो वेद-ब्राह्मण ग्रन्थ को एक बताकर वेदोंकी पौरुषेय बतानेकी चेष्टा की, जब उसका उत्तर दिया गया तो 'स्त्रियों को पढ़ने का अधिकार ही नहीं' का राग अलापा गया। भ्रमित करने के लिए प्राज्ञम्मन्य ने दार्शनिक अवच्छेदकावच्छिन्न की प्रणाली अपनायी। स्त्रियोंका पढ़नेके अधिकार से वञ्चित तो दाम्भिक वितण्डावादी ही कर सकता है।

इसी प्रकार वैदिक गुणकर्मानुसारिणी वर्णव्यवस्था को भी दुराग्रहवश नकारा गया जिसका समर्थन श्री कृष्ण ने किया था—

जिन्हें हम हार समझे थे भवन अपना सजाने को।
वही अब नाग बन बैठे हैं हमको काट खाने को॥

यदि वेदार्थपारिजात को देखकर कोई पाश्चात्य विद्वान् वेद-संस्कृति को हास्यास्पद समझे तो हमें झुकना ही होगा। विडम्बना तो यह है कि ऐसे ग्रन्थ को शासन ने एक लाख से पुरस्कृत किया जिसका विद्वत्समाज ने पूर्ण रूप से प्रत्याख्यान भी किया।

आचार्य दयानन्द ने संसार के विद्वत्समाज को वेदों के समक्ष नत-मस्तक किया किन्तु श्री करपात्री ने हमें हास्यास्पद स्थिति में खड़ा कर दिया। उनके जीवित रहते लेखक ने समाचार-पत्रों के द्वारा शास्त्रार्थ के लिए उनका आह्वान किया पर खेद है कि वे सामने न आये।

श्री करपात्री वेदार्थ० पृष्ठ १४७८ पर जन्म-जाति के समर्थन में जो ऊहापोह की है वह विद्वज्जनानुमोदित नहीं। वे लिखते हैं कि जिस प्रकार निम्ब अश्वत्थादि वृक्ष होते हुए भी पृथक् पृथक् हैं उसी प्रकार ब्राह्मण क्षत्रियादि। किन्तु यह ठीक नहीं, निम्ब आदि तो पहचाने जाते हैं, ब्राह्मणादि नहीं। वर्णों वृणोतेः में उन्होंने वर्ण से शुक्लादि रूप को लिया है जबकि वहाँ गुण-कर्म से वरणीय वर्ण ही स्वीकरणीय है। गत दिल्ली में आयोजित विराट् हिन्दूसमाज सम्मेलन में शङ्कराचार्यादि सभी धर्मगुरुओं ने यह बात स्वीकार की कि वर्ण जन्म से नहीं, अपितु गुण कर्म स्वभाव से हैं जो वेद-प्रतिपादित हैं। श्री करपात्री ने समर्थन में

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
ऋ० १०-९०-१२, यजु ३१-११

देते हुए कहा कि इसमें आये अजायत से शूद्रोत्पत्ति पैरों से सिद्ध है। इस प्रकार उन्होंने अपने पक्ष का खंडन स्वयं ही कर दिया क्योंकि कृतः, आसीत से अन्य तीन तो कर्म से सिद्ध हो ही गये।

अतः संस्कृति-नाशक, भारतीय ज्ञान-विज्ञान की गरिमा की आभा को मलिन करनेवाले वितंडावादियों की पाप-पङ्किल आभा को दूर करने का प्रयत्न करके 'दुरितानि परा सुव' कर राष्ट्र तथा समाज के प्रति अपने दायित्व को पूरा करना सभी मनीषी विद्वानों का कर्तव्य है॥

—⁂—

तार-विद्या—मूल मन्त्र



श्री संजयकुमार टेलीफोन इंजीनियर, दिल्ली
सयुक्त मन्त्री विश्ववेदपरिषद्, २४/११ पुष्प-विहार नई दिल्ली

ऋ०भा०भूमिका मे १७ वें प्रकरण मे महर्षि दयानन्द सरस्वती ने तारविद्या का बीज इस मन्त्र में दिखाया है—

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्य्यैरभि द्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥
ऋ १-११९-१०

अर्थात् दोनों अश्वी [ऋण-धन विद्युत (पाजिटिव-निगेटिव पोटेन्शियल्स) और ग्राहक-प्रक्षेपक यन्त्र (रिसीवर-ट्रान्समिटर)] अनेक तार, चुम्बक आदि साधनों का प्रयोग कर मनुष्योंके विशेषतः सेना के हितार्थ तारविद्या (टेलीग्राम, टेलीफोन, वाइरलेस) को सिद्ध करें, यह पेदु (वैज्ञानिक पुरुषार्थी) के लिए बार-बार अभ्यास से ही सम्भव है।

श्री करपात्री ने वेदार्थपारिजात के पृष्ठ १४२०—२१ पर इसका जो खण्डन किया है वह यथार्थ नहीं—

१— उनका यह कहना सत्य नहीं कि 'केवल तार शब्द देखकर ही इस मन्त्रका सम्बन्ध दूर तक संवाद भेजने की प्रणाली से जोड़ दिया है' क्योंकि मन्त्रके अन्य शब्दों का भी यथार्थ सम्बन्ध लगाया गया है।

२–'कुछ शब्दोंका अर्थ जोड़–मरोड़कर किया गया है'– यह कथन भी ठीक नहीं। किसी का अर्थ तोड़–मरोड़ कर नहीं किया है।

३– 'अश्विनोसे मनुष्योंको सम्बोधित करना गलत है'– यह कहना धृष्टता है। 'हे मनुष्यो' यह अध्याहार है। 'अश्विनौ दुवस्यथः' का अर्थ अन्त मे दिया है कि वे अश्वों की विद्या को सिद्ध किया करते हैं।

४– श्वेत का अर्थ 'शुद्ध धातु निर्मित' सायण ने भी किया है, उसी में बिजलीका संचार हो सकता है अतः 'विद्युन्मय' अर्थ भी दिया।

५– अग्नि के साथ इयु का अर्थ शक्ति है तो वह बिजली की हो है।

६– [illegible] 'कुहू' [illegible] ठीक है।

७– चर्कृत्यं का अर्थ पुनः पुनः सब क्रियाओं में योजन है, इसमें सब से अभिप्राय टेलीग्राम–टेलीफोन की ही क्रियाओं से है।

८– शर्य्यैः का अर्थ 'पुनः पुनः हनन–प्रेरण गुणों से युक्त' में दोष देना अनुचित है क्योंकि शृ हिंसायाम् धातु से हन हिंसा–गत्योः के अनुसार इसके हनन–गति–प्ररणा अर्थ सिद्ध होते हैं।

९– चर्षणी का अर्थ मनुष्य और उनकी सेना भी सुसंगत है क्योंकि टेलीग्राम–टेलीफोन की आवश्यकता मनुष्यों विशेषतः सेना में होती है।

१०– स्वामी करपात्री ने इस मन्त्र का जो अर्थ दिया है वह सायण के अनुसार है तथा गलत है। अश्विनों ने पेदु नामक राजा के लिए श्वेत घोड़ा दिया — यह तो इतिहास होगया जो सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर द्वारा प्रकाशित वेद में नहीं हो सकता। केवल पेदु के लिए ही एक ही घोड़े का दिया जाना कोई बड़ी बात वेदमें वर्णनके योग्य भी नहीं है। पेदु का महर्षि कृत अर्थ— व्यवहार–सिद्धि–प्रापण (तथा पुरुषार्थी) नितान्त संगत है।

११– तरुतारम् में तरु का अर्थ प्लवन तथा तरण करनेवाला है जो यही यन्त्र हो सकता है अतः उसका अर्थ महर्षि ने तार नामक यन्त्र किया जो स्वामी करपात्री की समझ में ही नहीं आया॥

—:•:—

अष्टाध्यायी अध्याय ६ पाद दो

७० अङ्गानि मैरेये ॥

मैरेय परे हो तो मद्याङ्गवाची आद्युदात्त हो — गुडमैरेय मधुमैरेय ।

७१ भक्ताख्यास्तदर्थेषु ॥

तदर्थ परे हो तो भक्तवाचक आद्युदात्त हो— भक्तभक्षम् भिक्षाकंसः भाजीकंसः ।

७२ गोबिडालसिंहसैन्धवेषूपमाने ॥

उपमानवाची गो आदि परे रहते आद्युदात्त हो— धान्यगव गोबिडाल तृणसिंह सक्तुसैन्धव ।

७३ अके जीविकार्थे ॥

जीविकार्थ वाचक अक प्रत्ययान्त परे हो तो आद्युदात्त हो— दन्तलेखक अवस्कारशोधक रमणीयकारक ।

७४ प्राचां क्रीडायाम् ।

पूर्व देशियों के खेल में पूर्वपद आद्युदात्त हो— उद्दालकपुष्पभञ्जिका वारणपुष्पप्रचायिका शालभञ्जिका ।

७५ अणि नियुक्ते ।

नियुक्ति वाचक समास में अणन्त परे रहते आद्युदात्त हो— छत्रधार तूणीधार कमण्डलुग्राह ।

७६ शिल्पिनि चाकृञः ॥

शिल्पिवाचक समासमें कृञ् से भिन्न अणन्त परे रहते आद्युदात्त हो— तन्तुवाय बालवाय ।

७७ संज्ञायाम् ॥

संज्ञामें कृञ्भिन्न अणन्त परे रहते आद्युदात्त हो— तन्तुवायः क्रिमिः ।

७८ गोतन्तियवं पाले ॥

पाल परे रहते गो आदि आद्युदात्त हों— गोपाल तन्तिपाल यवपाल ।

७९ णिनि ॥

णिन्नन्त परे रहते आद्युदात्त हो— पुष्पहारी फलहारी पर्णहारी ।

८० उपमानं शब्दार्थप्रकृतावेव ॥

शब्दार्थ प्रकृति में ही उपमानवाचक पूर्वपद आद्युदात्त हो— उष्ट्रक्रोशी ध्वांक्षरावी खरनादी ।

८१ युक्तारोह्यादयश्च ॥

युक्तारोही आदि समास आद्युदात्त हों— युक्तारोही ।

२०१ वाँ गण— वक्तारोही आगतरोही आगतयोधी आगतवञ्च आगतनर्दी आगतप्रहारी आगतमत्स्या क्षीरहोता भगिनीभर्ता ग्रामगोधुक अश्वत्रिरात्रः गर्गत्रिरात्रः व्युष्टत्रिरात्रः शणपादः समपाद एकशितिपात् ।

८२ दीर्घ काश तुष भ्राष्ट्र वटं जे ॥

ज परे रहते ये आद्युदात्त हों- कुटीज काशज तुषज भ्राष्ट्रज वटज

८३ अन्त्यात्पूर्वं बह्वचः ॥

ज परे होतो बह्वच् पूर्वशब्द के अन्त्य से पूर्व उदात्त हो- उपसरज आमलकीजः ।

८४ ग्रामेऽनिवसन्तः ॥

ग्राम परे हो तो पूर्वशब्द उदात्त हो यदि वह निवसद्वाची न हो-- मल्लग्राम छात्रग्राम वणिग्ग्राम ।

८५ घोषादिषु च ॥

घोष आदि परे हो तो आद्युदात्त हो- दाक्षिघोष दाक्षिकट ।

२०२ वाँ गण— दाक्षिघोष दाक्षिकट दाक्षिपल्वल दाक्षिह्रद दाक्षिबदरी दाक्षिपिङ्गल दाक्षिपिशङ्ग दाक्षिशाल दाक्षिरक्षः दाक्षिशिल्पी दाक्ष्यश्वत्थ कुन्दतृणम् दाक्षिशाल्मली आश्रममुनि शाल्मलिमुनि दाक्षिपुत्रा दाक्षि-कूटः ।

८६ छात्र्यादयः शालायाम् ॥

शाला परे रहते छात्रि आदि आद्युदात्त हों— छात्रिशाला ।

२०३ वाँ गण— छात्रि ऐलि भाण्डि व्याडि आपिशलि आखण्डि आपारि गोमि ।

८७ प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ॥

प्रस्थ परे रहते कर्क्यादिवर्जित अवृद्ध पूर्वशब्द आद्युदात्त हो— इन्द्रप्रस्थ कुण्डप्रस्थ ।

गण २०४- कर्की मघी मकरी कर्कन्धू शमी करीर कटुक कुरव बदर ।

८८ मालादीनां च ।

प्रस्थ परे हो तो माला आदि आद्युदात्त हों— मालाप्रस्थ ।

२०५ वाँ गण— माला शाला शोणा द्राक्षा क्षौमा क्षामा काञ्ची एक काम ।

८९ अमहन्नवं नगरेऽनुदीचाम् ॥

उत्तरी वर्जित नगर परे हो तो महत्-नव-भिन्न आद्युदात्त हो- ब्रह्मनगरम् त्रिगर्तनगरम् ।

९० अर्मे चावर्णं द्व्यच् त्र्यच् ॥

अर्म परे रहते द्व्यच् त्र्यच् अवर्णान्त आद्युदात्त हो— दत्तार्मम् गुप्तार्मम् कुक्कुटार्मम् ।

९१ न भूताधिकसंजीवमद्राश्मकज्जलम् ।

अर्म परे रहते ये ६ आद्युदात्त न हों— भूतार्मम् अधिकार्मम् संजीवार्मम् मद्रार्मम् अश्मार्मम् मद्राश्मार्मम् कज्जलार्मम् ।

वार्तिक— आद्युदात्त प्रकरण में दिवोदासादि का भी वैदिक प्रयोग में होना चाहिए— दिवोदासाय गायत वध्र्यश्वाय दाशुषे ।

९२ अन्तः ॥

यह अधिकार सूत्र है । इसका अधिकार उत्तरपदादि (६.२.११०) तक है । आगे पूर्वपद का अन्त उदात्त हो ।

९३ सर्वं गुणकार्त्स्न्ये ॥

गुणकार्त्स्न्य में सर्व अन्तोदात्त हो— सर्वश्वेतः सर्वकृष्णः सर्वमहान् ।

९४ संज्ञायां गिरि-निकाययोः ॥

संज्ञा में गिरि और निकाय परे हो तो पूर्वपद अन्तोदात्त हो— अञ्जनागिरिः मौण्डनिकायः ।

९५ कुमार्यां वयसि ।

कुमारी परे हो तो आयु अर्थ में पूर्वपद अन्तोदात्त हो— वृद्धकुमारी जरत्कुमारी ।

९६ उदकेऽकेवले ॥

अकेवल (मिश्र) वाचक समास में उदक परे हो तो पूर्वपद अन्तोदात्त हो— गुडोदकम् तिलोदकम् ।

९७ द्विगौ क्रतौ ॥

क्रतु-समास में द्विगु परे हो तो पूर्वपद अन्तोदात्त हो— गर्गत्रिरात्रः ।

९८ सभायां नपुंसके ॥

सभा परे हो तो नपुंसकलिंग समास में पूर्वपद अन्तोदात्त हो— पशुसभम् स्त्रीसभम् ।

९९ पुरे प्राचाम् ॥

पुर परे हो तो प्राच्य देश में पूर्वपद अन्तोदात्त हो— शिवदत्तपुरम् देवदत्तपुरम् ।

१०० अरिष्टगौडपूर्वे च ॥

और पुर परे हो तो अरिष्ट और गौड-पूर्वक समास में पूर्वपद अन्तोदात्त हो— अरिष्टपुरम् गौडपुरम् ।

१०१ न हास्तिन फलक मार्देयाः ॥

किन्तु ये अन्तोदात्त न हों- हास्तिनपुरम् फलकपुरम् मार्देयपुरम् ।

१०२ कुसूल कूप कुम्भ शालं विले ॥

बिल परे हो तो ये आद्युदात्त हों — कुसूलबिलम् कूपबिलम् कुम्भबिलम् शालाबिलम् ।

१०३ दिक्शब्दा ग्राम जनपदाख्यान चानराटेषु ॥

ये परे हों तो दिक् शब्द अन्तो० हों- पूर्वेषुकामशमी अपरकृष्णमृत्तिका पूर्वपञ्चाला पूर्वाधिरामम पूर्वचानराटम ।

१०४ आचार्योपसर्जनश्चान्तेवासिनि ॥

आचार्य जहां गौण हो ऐसे शिष्य वाची परे हों तो दिग्वाचक अन्तो० हो- पूर्वपाणिनीयाः अपरपाणिनीयाः ।

१०५ उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च ॥

उत्तरपदस्य (७-३-१०) के अधिकार में कही वृद्धियुक्त उत्तरपद परे हो तो सर्व और दिग्वाचक अन्तो० हो- सर्वपाञ्चालक अपरपाञ्चालक ।

१०६ बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् ॥

बहुव्रीहि में संज्ञा में विश्व अन्तो० हो- विश्वदेव विश्वयशाः विश्वमहान् ।

१०७ उदराश्वेषुषु ॥

उदर, अश्व, इषु परे हो तो पूर्व शब्द अन्तोदात्त हो- वृकोदर दामोदरः यौवनाश्वः महेषु ।

१०८ क्षेपे ।

निन्दा मे भी ये अन्तोदात्त हो- घटोदर कन्दुकाश्व अनिषु ।

१०९ नदी बन्धुनि ॥

बन्धु परे हो तो नद्यन्त पूर्वशब्द अन्तो० हो- गार्गीबन्धु वात्सीबन्धु ।

११० निष्ठोपसर्गपूर्वमन्यतरस्याम् ॥

उपसर्ग है पहले जिसके ऐसा निष्ठान्त पूर्वशब्द विकल्प से अन्तो० हो- प्रधौतमुखः प्रक्षालितपादः ।

१११ उत्तरपदादिः

यह अधिकारसूत्र है । उत्तरपद का पाद के अन्त तक तथा आदि का कुण्डं वनम् (६-२-१३६) तक अधिकार है ।

११२ कर्णो वर्णलक्षणात् ।

वर्ण एवं लक्षण से परे कर्ण आद्युदात्त हो- शुक्लकर्णः कृष्णकर्णः दात्रकर्णः शङ्कुकर्णः ।

शतपथ ब्राह्मण ३.८.२

(छात्र की शरीर-परीक्षा में) जहाँ चमड़ा उखड़े या रक्त निकले वहाँ दोनों ओर से इसके नीचे के भाग में अध्वर्यु इस मन्त्र से रक्त लगाता है-

रक्षसां भागोऽसि (य ६.१६) [तू राक्षसों (कृमियों) का भाग है]

यह रुधिर राक्षसों का ही भाग है। १४

वह उसे हटाकर स्थित होता है—

इदमहं रक्षोऽभितिष्ठामीदमहं रक्षोऽवबाध इदमहं रक्षोऽधमन्तमो नयामि (य ६.१६) [यह मैं शत्रुओं को कुचलता, निकालता, निकृष्ट अँधेरे में ले आता हूं] इस से ही वह राक्षसों को निकालता है। यह कुश मूलरहित तथा दोनों ओर से कटा इसलिए रहता है कि राक्षस भी तो मनुष्य के समान बिना मूल के, तथा दोनों ओर परिच्छिन्न होते हैं। १५

अब वे (परीक्षार्थ) वपा (मांस) लेते हैं, तब उसमें वे दोनों वपा-श्रपणियों को इस मन्त्र से ढंक देता है—

घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथाम्। (य ६.१६)

[आकाश-भूमि घी से ढँक जावें] वह इनको ऊर्जा-रस से युक्त करता, इनमें उनकी स्थापना करता है। रसवती से उपजीवनीय वे इन प्रजाओं को जीवन देते हैं। १६

ये दोनो वपा-पात्र काश्मर्य लकड़ी के होते हैं। जब देवोंने पहले पशु को पकड़ा तो उसे ऊपर खींचा तब उसका मेध नीचे गिर पड़ा, उससे यह वनस्पति हुआ। कृष् (खींचने) से काश्मर्य नाम हुआ। उसीके मेध से इसे समृद्ध, पूर्ण करता है। अतः वे काश्मर्य के होते हैं। १७

[illegible] में तपाता है, तब वह यहाँ तप जाती है। फिर अग्नीध् उल्मुक लेता है। वे चात्वाल के पीछे जाते तथा आहवनीय की ओर जाते हैं जिसमें अध्वर्यु इस तृण को डालता है-

वायो वे: स्तोकानाम् (य ६.१६) [हे शिष्य, तू इन सूक्ष्म व्यवहारों को जान] क्योंकि यह उनको दीप्त करने वाली है। १८

अब उत्तर को खड़ा होकर वपा तपाता है। उसे अग्नि के पास से हो कर जाना तथा दक्षिण की ओर चलकर तपाना है। इससे वह उसे ठीक रखता और अग्नि हानि नहीं करता, अतः उत्तर को ओर तपाता है। १९

उसे यूप और अग्नि के बीच में से ले जाते हैं, वेदि के बीच में होकर नहीं जहाँ से अन्य हवियाँ ले जाते हैं, क्योंकि कहीं बेतपी वपा के साथ इसका संसर्ग न हो जाय। बाहर की ओर से नहीं ले जाते कि यज्ञ से

बाहर न कर दें, अतः यूप और अग्नि के बीच से ले जाते है। दक्षिण की ओर आकर प्रतिप्रस्थाता उसको तपाता है। २०

अध्वर्यु स्रुवा से घी लेकर नीचे के मन्त्रांश ६ १६ से छोड़ता है—

अग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा [अग्नि घी स्वीकार करे, विद्वान् होम- क्रिया जाने] इस प्रकार स्वाहायुक्त पकी आहुतियाँ अग्नि तक जाती हैं। २१

अब वह मैत्रावरुण से कहता है— स्तोकों के लिए मन्त्र बोलो। वह आग्नेय मन्त्र पढ़ता है क्योंकि यहाँ के दान से वृष्टि है, अग्नि यहीं से वृष्टि को लेती है, यही बूंदें बरसती हैं जो यहाँ ली जाती, हैं अग्नि के मन्त्र बूंदों की प्रशंसा में बोले जाते हैं। ऊब तप ब य तब-। २२

प्रतिप्रस्थाता कहता है— तप गयी आगे चलो। अध्वर्यु दो स्रुचोंको लेकर आगे चलकर श्रौषट् कहता है- स्वाहाकृतियों को करो। यह कह कर वषट् करके घी की आहुति देता है। २३

आहुति देकर पहल वपाका फिर पृषदाज्यका अभिघार करता है। चरकाध्वर्यु पहले पृषदाज्य का अभिघार करते हैं क्योंकि वह प्राण है। एक चरकाध्वर्यु ने याज्ञवल्क्य को ऐसा करने के लिए धिक्कारा कि इस अध्वर्यु ने प्राण को निकाल दिया, प्राण इसको छोड़ देगा। २४

उसने अपनी बाहों को देखकर कहा- ये भुजाएं पल गईं (मैं वृद्ध हो गया) इस ब्राह्मण की वाणी को क्या हुआ? किन्तु इसका आदर न करे। यह उत्तम अवाज है। यह हविर्यज्ञ है। उत्तम प्रयाजमें दो आज्य- भागों के लिए पहले ध्रुवा में हीघी डालता है। इस समय पहले वपा की परीक्षा करेगा अतः पहले उसका अभिघार करेगा. फिर पृषदाज्य का। यद्यपि वह पूरे छाग की परीक्षा नहीं करता कि कहीं बिना तपे का अभिघार न हो जाय, तो भी वपा का अभिघार करने से पूरे छाग की परीक्षा हो ही जाती है, अतः पहले वपाका अभिघार करना चाहिए फिर पृषदाज्य का। २५

अब आज्यकी एक तह लगाताहै, उस मे सोनेका एक टुकड़ा डालता है फिर वपा काटकर कहता है- अग्नि-सोम के मन्त्र बोलो जो छाग की वपा-मेद के लिए हैं। अब सुवर्ण-शकल रखताहै तथा घी से दो बार अभिघारकरताहै। २६

दोनो ओर सोने के शकल इस लिए रखे जाते हैं कि जब अग्नि पर तपाते हैं तब छाग को कष्ट होता है। सोना अमर जीवन है, यह उस अमर जीवन मे स्थापित करता है, वह वहाँ से उठता तथा जीवित रहता है। अब अध्वर्यु श्रौषट् बोलकर कहताहै- अग्नि-सोमके लिए छागकी वपा-मेद देखो। यहाँ प्रस्थितम् नहीं कहता, वषट् कह आहुति देताहै। २७

वपा को लेकर दोनों वपा-श्रपणियों को इस मन्त्र से रख देता है—

स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्। (य ६.१६)

[स्वाहा से युक्त होकर मरुत्सम्बन्धी ऊपर आकाश को जाओ] वह ऐसा इसलिए करता है कि जिनपर वपा तपाई गई वे व्यर्थ न जायें। २८

वपा से काम लेते हैं क्योंकि जिस देवता (परीक्षक विद्वान्) के लिए छात्र को प्राप्त किया जाता है उसको उसी छात्र की मेधा से प्रसन्न करता है, वही इसकी मेधा से प्रसन्न होकर अन्य हवियों के तपने की प्रतीक्षा करता है अतः वपा से काम लिया जाता है। २९

अब चात्वाल पर मार्जन करते हैं। जब छात्र का संज्ञपन और परीक्षण करते हैं तो वह घायल सा हो जाता है। जल शान्ति है इसलिए उसे जल से शान्त करते हैं अतः वे चात्वाल पर मार्जन करते हैं। ३०

—※—

अध्याय ८ ब्राह्मण ३

जिस देवता (विद्वान् परीक्षक) के लिए छात्र होता उसी के लिए है पीछे पुरोडाश बनाया जाता है क्योंकि चावल–जो सब के लिए मेध है इससे वह इस छात्र को समृद्ध और पूर्ण करता है अतः वह पीछे पुरोडाश बनाता है। १

वपा की परीक्षा के बाद पुरोडाश इसलिए बनाते हैं कि छात्र से ही वपा लेते हैं, मध्य में इसे समृद्ध करते हैं। इसका सम्बन्ध सर्वात्र एकसा ही है। जहाँ छात्र होता है वहाँ पुरोडाश भी होता है। २

अब छात्रकी विशेष परीक्षा करता हुआ कहता है– तीन बार घुमाओ और तीन बार घूमेहुए का हृदय ऊपर उठाओ, क्योंकि यज्ञ त्रिवृत् है। ३

अब शमिता से कहता है– यदि कोई पूछे कि हे शमिता, हवि तप गया ? तो कहना 'तप गया'। यह न कहना कि 'भगवन्; तप गया', या 'तपतो गया'। ४

बाल कथामाला

त्रयोदशी कथा—वरटामधुमक्षिकयोः

रचयिता— स्वर्गीयः श्री सकलसेनः कविः, बदायूँ

अपृच्छद् वरटा काचित् कदाचिन्मधुमक्षिकाम् ।
लालयन्ति नराः किं त्वां ताडयन्ति कथं च माम् ? १

स्वतोऽहं सुवर्णास्मि दर्शनीयाकृतिः खलु ।
दृशासि त्वं यथाऽहं तान् किं विशिष्टत्वमावयोः ॥ २

वरटायाः वचः श्रुत्वा प्रावोचन् मधुमक्षिका ।
सन्दश्य त्वं मनुष्यान् पीडयस्येव केवलम् ॥ ३

अहं तेभ्यः प्रयच्छामि नित्यं हि मधुरं मधु ।
अतस्त्वां ताडयन्त्येव पालयन्ति च मां नराः ॥ ४

❀ समाचार ❀

नये राष्ट्रपति श्री वेङ्कटरामन्, और उपराष्ट्रपति डा० शङ्करदयाल शर्मा इन्दिरा कांग्रेस द्वारा समर्थित निर्वाचित हुए।

भारतके प्रधानमन्त्री और लङ्काके राष्ट्रपति पर सिंहल उग्रवादियों ने समझौता के विरोध में आक्रमण किया, ईश-कृपा से दोनों बच गये।

—शोक है कि श्री बुद्धदेव शर्मा गौर दिल्ली का ५-८-८७ को देहान्त होगया।

वर्ष ११ अङ्क १० अक्टूबर १९८७ ❀ वेदज्योति ❀ ६०२११। ६२ डाक २०६

नमस्ते! आपका वर्ष पूर्ण होगया, कृपया वार्षिक शुल्क २०) शीघ्र भेजें।

❀ विश्ववेदपरिषद् प्रबन्धसमिति की बैठक दि० ३-१०-८७ को ❀
सायं ४ बजे सी ८१७ महानगर लखनऊ में होगी कृपया सम्मिलित हों।

दैनन्दिनी कार्तिक २०४४

तिथि कृष्ण	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	३० अमा
वार	गु	शु	श	र	सो	मं	बु	गु	शु	श	र	सो	मं	बु	गु
नक्षत्र	अ	भ	कृ	रो	रो	मृ	आ	पु	पु	[illegible]	म	पू	[illegible]	ह	चि
तारीख अक्टू.	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२

तिथि शुक्ल	१	२	३	४	५	६	७	८	९	११	१२	१३	१४	१५ पू
वार	शु	श	र	सो	मं	बु	गु	शु	श	र	सो	मं	बु	गु
नक्षत्र	स्वा	वि	अ	ज्ये	मू	पू	उ	श्र	[illegible]	[illegible]	पू	[illegible]	रे	अ
तारीख अ.	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	नव. १	२	३	४	५

ऐतरेय, शतपथ, निरुक्त सम्पूर्ण

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ,
मूल्य ऐतरेय ३०) शतपथ दो काण्ड २०), निरुक्त ३०) शीघ्र मँगाइये।

निवेदक— वीरेन्द्रमुनि अध्यक्ष, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री,
विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६

ऋत्वनुकूल हवन-सामग्री

हमने आर्य यज्ञप्रेमियो के आग्रह पर संस्कारविधि के अनुसार हवन-सामग्री का निर्माण हिमाचल की ताजी जड़ी बूटियों से आरम्भ किया है, उत्तम, कीटाणु-नाशक, सुगन्धित तथा पौष्टिक तत्त्वों से युक्त यह हवन-सामग्री अत्यन्त अल्प मूल्य में प्राप्त है, थोक मूल्य ५) प्रति किलो।

—योगी फार्मेसी, लक्सर रोड, डा० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ.प्र.)

× × × × × × × × × × × × × × × × ————————

प्रेषक- मुद्रक आदर्श प्रेस, दूरभाष ७३५०१ सेवा में संख्या १३२८
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ श्री

पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरुकुल कांगड़ी

ओ३म्

वर्ष ११ **वेद-ज्योति** ऊर्ज कार्तिक २०४४ वि०

अङ्क ११ नवम्बर १९८७ ई०

सम्पादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ,

अध्यक्ष विश्व वेद परिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६

दयानन्दाब्द १६३, वेदसृष्टिसंवत् १९६०८५३०८८, दूरभाष ७१५०१

वार्षिक मूल्य २०) आजीवन २००) एक प्रति २)

सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या

वेदों में भी ब्राह्मणस्य इत्यादि पदों से संन्यास का विधान है (समुल्लास ५)

श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने इसे 'अनुपलब्धमूल' लिखा किन्तु परोपकारिणी सभा के संस्करण में इसका पता ऋ० १०-१०९-४ दिया है—

ऋषयः, ऋषि जुहूर्ब्रह्मजाया, ऊर्ध्वनाभा ब्राह्मः, देवता विश्वेदेवाः, त्रिष्टुप्, धैवतः

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥

अध्यात्म— जो इसमें पूर्व के ७ ज्ञान-निदर्शक, कारणरूप तत्त्व या ज्ञानी कवि तप के लिए विराजे, वे देव बताते हैं कि ब्राह्मणस्य = ब्रह्म की शक्ति से उत्पन्न संसार की उत्पादक प्रकृति समीप प्राप्त होकर भयानक है। वह प्रभु परम व्योम (रक्षा) के बलपर ही उस दुर्धारिणी प्रकृति को धारण करता है। [श्री जयदेव शर्मा]

अधिदैवत— विद्वान् इसके सम्बन्ध में कहते हैं और ज्ञानयुक्त ७ शरीरस्थ तर्क-साधन जो इस कठिन तपोमय कार्य के लिए शरीर में स्थित हैं वे भी यही बताते हैं कि पास लाई गई ब्राह्मणस्य = यज्ञ के ज्ञाता विद्वान् बृहस्पति की यज्ञ की वाणी पाप आदि के कर्मों के लिए भयङ्कर है, दुःखसे धारणयोग्य इस वाणी को बृहस्पति = देवों का पुरोहित परम आकाश में धारण करता है। [श्री वैद्यनाथ शास्त्री]

भौतिक— ब्राह्मणस्य संन्यासी की उपनीत पत्नी भयङ्कर होती है, वह उसे परम रक्षा में धारण करता है। उपनीता का अर्थ यज्ञोपवीत को पहनने वाली भी है, अतः वह डरती नहीं। [आचार्य वीरेन्द्र मुनि]

बाल कथा-माला

चतुर्दशी कथा— बक-नकुलौ ;

रचयिता— स्वर्गीयः श्री मङ्गलसेनः कविः, बदायूँ

कस्मिन्नपि वनोद्देशे आसीन् न्यग्रोध पादपः ।
तच्छाखासु बकाः प्रायो नीडं कृत्वा सदाऽवसन् ॥ १

तस्यैव कोटरे कश्चित् कृष्णसर्पोऽपि तिष्ठति ।
बकानां शावकान् खादन् प्राणयात्रां करोति सः ॥ २

अथ कश्चिद् बको ज्ञात्वा स्ववत्सास्तेन भक्षितान् ।
सरस्तीरं समासाद्य पुत्रशोकेन रोदिति ॥ ३

तस्मिन्नवसरे कश्चित् समागतः कुलीरकः ।
दृष्ट्वा तं पृष्टवानेवं किं त्वया माम रुद्यते ? ४

स आह– भद्र, किं कुर्यां ? मन्दभाग्यस्य मे निशि ।
कोटरस्थेन सर्पेण भक्षिताः प्रियशावकाः ॥ ५

रुद्यते तेन दुःखेन किमन्यत् कथयामि ते ।
तद् ब्रूहि यदुपायोऽस्ति कश्चित्तस्य विनाशने ॥ ६

तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास गुप्तमन्त्रः कुलीरकः ।
अस्मज्जातेरयं तावत् प्रसिद्धः सहजो रिपुः ॥ ७

तस्मात्तथोपदेक्ष्यामि नश्येत् सर्पो बकाश्च ये ।
तमाह– माम, यद्येवं वचनं मे विधीयताम् ॥ ८

नकुलस्य बिलद्वाराद् यावत् सर्पस्य कोटरम् ।
मत्स्य-मांसस्य खण्डानि प्रक्षिप्यन्तां यथाक्रमम् ॥ ९

नकुलस्तेन मार्गेण तं सर्पं नाशयेदिति ।
तच्छ्रुत्वा स बको मूर्खो सर्वं साधितवान् द्रुतम् ॥ १०

तथैवानुष्ठिते सम्यक् मत्स्य-मांसानुसारिणा ।
नकुलेन भुजङ्गोऽसौ लीलयैव विनाशितः ॥ ११

वृक्षस्थिता बकाश्चापि भक्षितास्ते शनैः शनैः ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः शत्रुवाक्ये कदाचन ॥ १२

—❀—

सृणि ४—२ दन्तो(दाँतो

सोमन् ४.३ ऐश्वर्य-सम्पादक

स्तिया ४—३ जल

स्तृ २—२९ नक्षत्र

स्पन्द्र २—९ बलवान्

स्वश्वस् ४—३ सुगमन

स्वसर १.९ ३.४ ४.२ दिन गृह

सृप ४.३ सर्पिन घी तेज

स्तिपा ४—३ समुद्र उपस्थितपालक

स्तृणाति स्नेहय स्फुर स्फुल २.१९ हन्ति

स्तोभति स्तौ स्वर ३–१४ अर्चति

स्वर् १.४ जल १.१२ सूर्य द्युलोकतेज

स्वयम्भू १,३ आकाश

स्वर्तीक १.१२ जल

ह

हंस हय ह्वार्य १.१४ अश्व

हरि २–३ मनुष्य सोम तोता

हरस्वती। हरिन् १—१३ नदी

हरित् १.६, १५, २.५ रश्मि

आदित्य के अश्व अङ्गुलि

हर्म्य ३—४ गृह यज्ञ-कुण्ड

हविष्, हेम १—१२ जल सोना

हिकम् ३—१२ सम्पूर्ण पद

हिमा १—७ रात

हिरण्यवर्णा १—१३ नदी

हुरश्चित् ३—२४ चोर

हेति २—२० वज्र

होत्रा १,११ ३.१७ वाक यज्ञ

ह्वयते ३—१४ अर्चति

हन हन्ति हयन्तात् ७ १४ नाना वक्ति

हरयाण ४.२ हरमाणयान(सूर्यचन्द्रादि)

हरस् १.१७ ज्योति २.१३ क्रोध ४.१ जल

लोक रक्त दिन रात

हरी १,१५ इन्द्र के दो घोड़े

हर्यति २–५, १४ इच्छति गच्छति

हासमाने ४–२ हर्षमाणे स्पर्धमाने

हिनोत ४ ३ हिनुत

हिरण्य १.२ सोना यश यज्ञ हिरण्यगर्भ

हिरुक् ३.२५ निर्णीत अन्तर्हित

हृणि १.७ २.१३ दीप्ति क्रोध

हेळ ह्वर २.१३ क्रोध

ह्रस्व ३.२ छोटा

ह्वरति २.८ अत्ति

—❀—

देवता पद-सूची

निघण्टु अध्याय ५ के १५१ देवता (व्याख्या निरुक्त अ० ७-१२)

अ

अग्नाः पृष्ठ १८६ जुआ पांसे
अग्नि १६० प्रज्ञाग्नि शिल्पाग्नि
अघ्न्या २३१ मेघ बिजली गो
अज एकपात् २४१ अस्तगत आदित्य
अथर्वाण. २२४ वनस्थ न्यूक्लियर्स
अनुमति २२७ देवपत्नी पूर्णिमा
अप्वा २०० भीति व्याधि
अरण्यानी १८६ छोटा वन वनस्थी
अश्वाजनी १९६ प्रेरक कशा
असुनीति दोसो सत्रह मुख्य प्राण
अहि दोसो अठारह बिजली
अहिर्बुध्न्य दोसो अठारह बिजली

अग्नायी पृष्ठ २०० अग्नि की शक्ति
अग्नि २१६ बिजली ईश्वर नेता विद्वान्
अङ्गिरसः २२३ इलेक्ट्रान्स सन्यासी
अथर्वा २४२ आदित्य
अदिति २२५ प्रकृति मैटर उषा अग्नि
अपान्नपात् दोसो दस बिजली
अभीशवः २१३ रश्मि लगाम ब्रेक
अश्व १८६ घोड़ा वाहन टैंक
अश्विनौ २३३ द्यावा पृथिवी दिन-रात
सूर्यचन्द्र राजारानी प्राण-अपान
मातापिता अध्यापक-उपदेशक

आ

आदित्याः दोसोब्यालिस ७, बारह
आप्त्याः दो सो चौबीस बिजली की तरंगें या परिधियाँ
आपः १९८ जल
आर्त्नी दो सो दो धनुष्कोटियाँ

इ

इध्म १७५ ईंधन दोसिस १८ न अग्नि
इन्द्र दोसौछः बिजली वायु सूर्य जीव प्राण राजा सेनापति ईश्वर
इळ १७७ प्रशस्य अग्नि अन्न
इषु १६४ बाण प्रक्षेप्यास्त्र
इषुधि एकसो बानबे तरकश

इन्दु दो सौ सत्राह चन्द्रमा
इन्द्राणी दो सो उनतीस इन्द्र की संयोगिनी शक्ति
इळा दोसोबत्तीस बिजली वाणी तरंग वेवलेंग्थ आफ स्पीच ट्रान्समशन वायरलेस के द्वारा

उ

उर्वशी दोसौ उनतीस बिजली इलेक्ट्रानिक मैग्नेटिक वेव
उषाः दोसो इकतीस बिजली
उषासानक्ता १७८ उषा और रात

उलूखलम् १९५ ऊखल बन्दूक
उलूखल-मुसले दोसौ पाँच ऊखलमूसल
उषाः दोसो चौंतिस उषा-समय

ऋ ऋत: २१७ मेघ बिजली सत्य ऋभव: २२३ वायु विद्युत्तरङ्ग वैश्य
ओ ओषधय: १९८ दवाएं
क क: २१२ प्रजापति ईश्वर प्राण कुहू २२८ अमावास्या
जल सुख हिरण्यगर्भ नेबुला केशिन: २४० अग्नि वायु सूर्य
केशी २४० किरणोंवाला सूर्य क्षेत्रस्य पति: २०८ वायु किसान
ग गौ: २३० वाणी, गौरी बिजली, ग्रावाण: १९०पत्थर यूरेनियम स्तोता
गौ शब्द की गति में सिग्नल या हार्मोनिक पीरियाडिक वेव है ।
च चन्द्रमा: २२० चन्द्र
ज जातवेदा: १६२ अग्नि बिजली सूर्य ज्या १९४ प्रत्यञ्चा
त तनूनपात् १७६ घी अग्नि प्राण तार्क्ष्य २१४ वायु
तिस्रो देवी: १७६ तीन देवी– मही इळा सरस्वती,भारती अग्नि बिजली
त्वष्टा(३ बार) १८० अग्नि २१६ वायु वाणी, दो सौ छत्तीस सूर्य
द दधिक्रा: दोसौ पन्द्रह वायु दध्यङ् दो सौ तेंतालिस आदित्य तारा
दुन्दुभि– एकसौ बानबे भेरी देवपत्न्य: दोसौ छयालिस देवोंकी शक्तियाँ
देवा: २४४ किरण इन्द्रिय विद्वान् देवी ऊर्जाहुती. देवी जोष्ट्री २८२;३
दैव्या होतारा १०७अग्नि-वायु प्राणापान सूर्य-पृथ्वी दिनरात खेती-वर्षा
द्यावापृथिव्यौ २०१ सूर्य-भूमि द्रविणोदा: अग्नि इन्द्र वायु बिजली
द्रुघण १६५ तोपका गोला ठोंकने वाला घन द्वार:१७८यज्ञाग्नि दर्वाजे
ध धनु: १९३ धनुष अस्त्रदीपक धेनू. दोसौ तीस मेघ गौ
धाता:२२१ धारक वायु न नद्य: नदियाँ नाड़ियाँ
नराशंस१७७यज्ञ अग्नि प्रजा वाणी नाराशंस १९१ मन्त्र मनुष्यप्रशंसा
प पथ्या २२१ कल्याणी मेघ-माला पर्जन्य २०७ अन्तर्पाक मेघ
पितर:२०३प्राण आर्बिट-इनर्जी-लेवल पितु: १६६ अन्न
पुरूरवा: २१८ मेघ पूषा २३७ पोषक सूर्य
पृथिवी(३ बार)२०० भूमि २२९ किरण(इलैक्ट्रानिक मैग्नेटिक वेव
प्रजापति २१८ वायु ईश्वर पृथिवी २४२ द्यौ लोक
ब बर्हि १७८ पशु कुश यज्ञाग्नि बृहस्पति ब्रह्मणस्पति२०७ वायु गुरु ईश्वर
भ भग उदय से पहले का सूर्य भृगव: २२४ भर्जक परमाणु (प्रोटान्स)
म मंडूका: १८८ मेढक, हृष्ट वेदपाठी मनु: २४२ आदित्य
मन्यु २१४ वायुवाला सात्विक क्रोध मरुत: २२२ वायुएँ सैनिक वैश्य
मित्र: दोसौ बाईस प्राण सूर्य सखा मृत्यु दो सौ इक्कीस मौत
य यम:(दोबार)वायु राजा न्यायाधीश, दोसौ इकतालिस अस्तङ्गत सूर्य

यमी दो सौ अट्ठाईस उषा रात संयमिनी (पत्नी तथा बहिन)
र रथ: १६१ यान वाहन टैङ्क राका दो सौ सत्ताईस पूरनमासी
रात्रि १९९ रात रुद्र: दो सो चार गर्जनेवाली हवा ईश्वर
रुद्रा: दोसौ बाईस बिजली, ११ रुद्र, वायु ईश्वर रोदसी रुद्रकी शक्ति
व द्यावा-भूमि एरियल अर्थवाइर
वनस्पति १८१ यूप प्राण गार्हपत्याग्नि वसव: २४५ रश्मियाँ, ८ वसु
वरुण (दो बार) २०४ वायु जल ईश्वर, २३९ रोग-निवारक आदित्य
वाक् दो सौ छब्बीस वाणी वाचस्पति २०९ ईश्वर प्राण विद्वान्
वाजिन: २४४ रश्मियाँ देवाश्व वात दोसौ सोलह हवा
वायु दो सौ तीन हवा वास्तोष्पति दो सौ नौ गृहरक्षक हवा
विधाता दोसौ इक्कीस मौत ईश्वर विपाट्-छुतुद्रयौ दो नदियाँ, दो नाड़ियाँ
विश्वकर्मा दोसौ तेरह प्राणसूर्य ईश्वर विश्वेदेवा: २४४ सब देव, रश्मि
विश्वानर (दोबार) २१३ आग बिजली ईश्वर दोसौ इक्किस सूर्य राजा
विष्णु दो सौ अड़तीस सूर्य ईश्वर वृषभ १६५ बैल तोप यज्ञ शब्द सूर्य
वृषाकपि दोसौ चालिस सूर्य वृषाकपायी दोसौ पैंतिस सूर्या रेवतीनक्षत्र
वेन दोसौ सत्रह समानवायु विद्वान् वैश्वानर १६ अग्नि बिजली सूर्य
श शकुनि १७७ पक्षी संन्यासी शुनासीरौ दो सौ दो हवा-सूर्य
श्येन दोसौ उनइस रसवाही वायु इन्द्र श्रद्धा दोसौ सत्य-धारणा
स सप्तऋषय दोसौ तेंतालीस ७ तरहकी किरणें, ५ज्ञानेन्द्रिय मन आत्मा
समुद्र दो सौ बयालीस रश्मिसमूह सरण्यू दोसौ पैंतीस तमो-रश्मियाँ
सरमा, सरस्वती दो सौ छब्बीस वाक सरस्वान् दो सौ तेरह तर हवा
सविता (दो बार) दो सौ पन्द्रह हवा दो सौ छत्तीस सूर्य ईश्वर प्रेरक
साध्या: दो सौ बैंतालीस रश्मियाँ सिनीवाली दोसौ सत्ताइस अमावस
सुपर्ण दो सो अठारह प्राण वायु पक्षी सूर्य दो सो सैंतीस सूरज
सूर्या दो सौ चौंतीस सूर्यकी पुत्री रश्मि सोम औषध चन्द्र ईश्वर
स्वस्ति: दोसौ इकतीस वाक् स्वाहाकृतय: एकसौ बयासी स्वाहा सुवचन
ह हविर्धाने दो सौ एक- दो यज्ञपात्र हस्तघ्न: १९३ हस्त-कवच

—❀—

वेदों की नित्यता

श्री ब्रह्मानन्द शर्मा, भू.पू. निदेशक राज प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
क १५ जवाहर नगर जयपुर राजस्थान

वेदार्थ० के मत के निराकरण में तथा महर्षि दयानन्द से मत के समर्थन में मेरे जो लेख परोपकारी के अङ्कों में प्रकाशित हुए थे उन्हीं के क्रम में यहाँ कुछ प्रस्तुत किया जा रहा है—

वेदार्थपारिजात कार का यह आक्षेप है कि इस शब्द-नित्यत्व से लौकिक और वैदिक सभी शब्द नित्य हो जाएँगे। इससे महाभारत आदि के संस्कृत शब्द भी नित्य हो जाएँगे—

"आपने नित्य और कार्य भेद से शब्द के दो प्रकार स्वीकार किए हैं। ... ..यहाँ आप कह रहे हैं कि वैदिक और लौकिक सभी शब्द नित्य हैं। यह कहना कि वहाँ कार्य शब्द से यदृच्छा शब्द का ग्रहण है अतः विरोध का परिहार हो जाता है उचित नहीं क्योंकि यह विरोध तो बना ही रहेगा कि महाभारत आदि के संस्कृत शब्द परमात्मा के ज्ञान में स्थित शब्दों से भिन्न हैं। इस प्रकार आपके ग्रंथ में पौर्वापर्य विरोध अपरिहार्य है।" पृष्ठ ५२०

इस विषय में हमारा कथन है कि यह पहले ही बता दिया गया है कि यह विवेचन व्याकरण-शास्त्र के अनुसार है, अपने सिद्धान्त के अनुसार अतः पौर्वापर्य-विरोध नहीं।

वेदार्थ० का पुनः यह आक्षेप है कि व्याकरण-सम्मत इस शब्द-नित्यत्व से भी वर्णात्मक शब्दों की ही नित्यता सिद्ध होती है पदों वाक्यों के समूह रूप वेदों की नहीं—

"एक-एक वर्ण में विद्यमान वाणी [१.४.१०८] इस महाभाष्य के प्रामाण्य से वाणी की क्रिया प्रत्येक वर्ण के रूप में परिणत होती है अतः उसी की नित्यता है, शब्द की नहीं। ऐसी स्थिति में वर्णात्मक शब्दों के नित्य होने पर भी पद-वाक्यों के समूह रूप वेदों की नित्यता कैसे सिद्ध होगी? नित्य विभु वर्णों में पौर्वापर्यरूप आनुपूर्वी के असम्भव होने के कारण पद वाक्य आदि असम्भव होंगे। दूसरे, शब्दों की नित्यता से वेद की नित्यता मानने पर हम जैसों के वाक्य भी नित्य हो जाएंगे क्योंकि हम जैसों के वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों की नित्यता का निराकरण नहीं किया जा सकता।" पृष्ठ ५२३

इस विषय में हमारा कथन है कि शब्द में एक ही वर्ण नहीं होता अपितु अनेक वर्ण भी सम्भव हैं। अतः शब्द की नित्यता का अर्थ हुआ अनेक-वर्णात्मक शब्दों की नित्यता। यह सत्य है कि नित्य विभु वर्णों में पौर्वापर्यरूप आनुपूर्वी असम्भव है, किन्तु इस प्रकार की आनुपूर्वी का अवसर व्यक्तिकृत उच्चारण के समय उठता है, उस से पूर्व नहीं। अतः इससे अनेकवर्णात्मक शब्द की नित्यता के सिद्धान्त को कोई हानि नहीं पहुँचती। हमारे द्वारा घटित वाक्यों में जो अनित्यता है वह हमारे द्वारा किए हुए उच्चारण का परिणाम है।

इसी शब्द-नित्यत्व के प्रसङ्ग में ऋ.भा.भू. में कहा गया है—
'नित्यस्तु स्याद् दर्शनस्य परार्थत्वात्' इस जैमिनि-सूत्र का यह अर्थ है—तु शब्द से अनित्यता की शङ्का का निवारण होता है। विनाश-रहित होने के कारण शब्द नित्य है। -पृष्ठ २६

यहाँ वेदार्थ० का यह आक्षेप है—

" 'विनाश-रहित होने के कारण' यह पद सूत्र से असम्बद्ध है तथा व्यर्थ है। प्रत्यभिज्ञान से ही नित्यत्व की सिद्धि हो जाती है।" (५२३)

इस विषय में हमारा कथन है कि अविनष्ट शब्द का ही प्रत्यभिज्ञान सम्भव है अतः 'विनाशरहितत्वात्' का सन्निवेश युक्तियुक्त है।

इसी प्रसङ्ग में ऋ.भा.भू. में कहा गया है—

शब्द की अनित्यता नहीं होती, अन्यथा अनित्य शब्द से यह ज्ञान नहीं हो सकता कि गो शब्द का यह अर्थ है। नित्यत्व होनेपर ही ज्ञाप्य और ज्ञापक की विद्यमानता है (पृष्ठ ३६)

यहाँ वेदार्थ० का आक्षेप है कि 'यह भी अयुक्त है ...कहना यह चाहिए कि नित्यत्व होनेपर ज्ञाप्य ज्ञापक-भाव ठीक बैठ जाता है' (७२४)

इस विषय में हमारा कथन है कि अर्थ की ज्ञाप्यता ज्ञापक शब्द पर निर्भर है, अतः अनित्य होने की दशामें ज्ञापक के अभाव से ज्ञाप्य की सत्ता कैसे हो, यह विचारणीय है। दूसरे, अतीत अनागत शब्द भी ज्ञाप्य तभी होते हैं जब ज्ञापक शब्द की नित्यता हो।

इस प्रसङ्ग में महर्षि ने दर्शन के वचन भी प्रस्तुत किये हैं—

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ।[वैशेषिक दर्शन]

अर्थात् उन(धर्म-ईश्वर)का वचन होने के कारण- धर्म का कर्तव्य के रूप में प्रतिपादन करने तथा ईश्वर के ही द्वारा उक्त होने के कारण चारों वेदोंका प्रामाण्य सबके द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए। पृ३१

यहाँ वेदा० का आक्षेप है कि वैशेषिकों और नैयायिकों ने शब्द को अनित्य माना है। अतः शब्द की नित्यता सिद्ध करने के लिए इस सूत्र का उद्धरण अनुचित है। पृष्ठ ५२४

हमारा कथन है कि यहाँ शब्द की नहीं, अपितु वेद की नित्यता सिद्ध की गई है और यह महर्षि के मत के अनुसार है। इसी विषय में कणाद का सूत्र है। पहले कह आए हैं कि ईश्वर का वाक्य नित्य और प्रामाणिक है, इसमें सन्देह-लेश भी नही।

इसी प्रकरण में महर्षि ने न्यायशास्त्र भी उद्धृत किया है—

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ।

कैसे? आप्तप्रामाण्य से। धर्मात्मा, कपट-छल आदि दोषो से रहित, दयालु, सत्योपदेष्टा, विद्या मे पारंगत, महायोगी ब्रह्मा आदि सभी आप्त व्यक्तियो द्वारा वेदो का प्रामाण्य स्वीकार किया गया है, इसलिए। किस प्रकार? मन्त्र और आयुर्वेद के प्रामाण्य के समान। जिस प्रकार सत्य पदार्थ और विद्या के प्रकाशक मन्त्रों- विचारों के सत्य होने से उनका प्रामाण्य होता है, उसी प्रकार आयुर्वेदके एक भागमें वर्णित औषध के सेवन से रोग-निवृत्ति के कारण उससे भिन्न उसी प्रकार के भाग का प्रामाण्य होता है उसी प्रकार वेदोक्त अर्थ के एक भाग के सत्यत्व से अदृष्टार्थ विषयक अन्य भाग का भी प्रामाण्य स्वीकार किया जाना चाहिए। (ऋ.भा.भू. पृष्ठ ३७)

इस विषय मे वेदार्थ० का यह आक्षेप है—

यह भी असंगत है...आपका कथन अशुद्ध है... दयानन्द का विवेचन सूत्र और भाष्य दोनों के विरुद्ध है। वेदार्थ० पृष्ठ ५२६

इस पर हमारा कथन है कि आप्त यथार्थ उपदेष्टा है, इनके द्वारा जिस यथार्थ का उपदेश दिया जाता है उसकी स्वीकृति भी पूर्वनिश्चित है, जिसके अभाव में इस उपदेशकी सम्भावना नहीं। अतः जैसे आप्तोपदेश से उपदिश्यमान तत्त्व की प्रामाणिकता का निश्चय होता है वैसे ही आप्तों की स्वीकृति से भी। ऐसी स्थिति मे दोनोके विवेचनो में कोई तात्त्विक भेद नही।

वेदार्थ० का अन्य आक्षेप है कि यह युक्ति-युक्त नहीं कि सत्यत्व से वेदों की प्रामाणिकता है। (पृष्ठ ५२६)

अस्मदीय कथन है कि सत्यत्व की सिद्धि से भिन्न प्रामाणिकता में वह अन्तर्भूत होगा अतः उसे साधन की अपेक्षा नहीं।

वेदार्थ० का अन्य आक्षेप है कि दयानन्द की रीतिसे मन्त्रायुर्वेदवत् यह उदाहरण निरर्थक है, वहां प्रामाण्य स्थाली-पुलाक न्याय से होता है।

हमारा कथन है कि स्थाली में पुलाकका अन्य भाग प्रत्यक्ष है किन्तु उसकी प्रामाणिकता इस पर आश्रित नहीं।

उनका यह पुनः आक्षेप है कि यह बताइए कि कौनसा वेदोक्त अर्थ प्रत्यक्ष है और कौनसा अदृष्टार्थ है। (५२७)

हमारा कथन है कि जो वेद-भाग लौकिक अभ्युदयकर्ता है वह दृष्ट और उससे भिन्न अदृष्ट अर्थवाला है। अग्निहोत्रादि अदृष्टार्थक भी हैं।

उनका पुनः आक्षेप है कि वेदकी नित्यता-सिद्धि-प्रसंग मे उसकी प्रामाणिकता सिद्ध करना अप्रासंगिक है। (पृष्ठ ५२७)

हमारा कथन है कि जिसकी नित्यता-सत्यता है उसकी प्रामाणिकता है, तीनों सम्बन्धित हैं।

उनका पुनः आक्षेप है कि दयानन्दके वचनों में उपक्रम- उपसंहार की दृष्टिमे यह स्पष्ट विरोध है कि सत्यत्वसे प्रामाण्य की सिद्धि मानी थी, अब ब्रह्मादि द्वारा स्वीकृत होने से वेदोंका प्रामाण्य मानाहै। (५२७)

हमारा कथन है कि ब्रह्मादि द्वारा प्रामाण्य वही स्वीकार किया जाता है जहां सत्यता हो। अतः दोनों उपसंहारवचनो मे कोई विरोध नही।

—❀—

११३ संज्ञौपम्ययोश्च ॥

संज्ञा तथा औपम्य में बहुव्रीहि में उत्तरपद कर्ण आद्युदात्त हो- मणिकर्ण गोकर्ण ।

११४ कण्ठ पृष्ठ ग्रीवा जङ्घं च ॥

तथा ये ४ भी आद्युदात्त हों- शितिकण्ठ काण्डपृष्ठ सुग्रीव नाडीजङ्घ औपम्य मे- खरकण्ठ गोपृष्ठ अश्वग्रीव गोजङ्घ ।

११५ शृङ्गमवस्थायां च ॥

शृंग अवस्था में भी आदि उदात्त हो- उद्गतशृंग द्व्यंगुलशृंग अत्यशृंग मेषशृंग ।

११६ नञो जर मर मित्र मृता ॥

नञ् से परे ये ४ आद्युदात्त हो- अजर अमर अमित्र अमृत ।

११७. सोर्मनसी अलोमोषसी ॥

सु से परे लोमन् और उषस् को छोड़कर मन्नन्त और असन्त आद्युदात्त हों— सुकर्मा सुधर्मा सुपयाः सुवर्चाः सुयशाः ।

एक सौ अट्ठारह— क्रत्वादयश्च ॥

सु से परे क्रतु आदि गणपठित आद्युदात्त हों- सुक्रतुः ।

गण २०६- क्रतु दृशीक प्रतीक प्रपूर्ति हव्य भग ।

एक सौउन्निस— आद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसि ॥

वेदमें बहुव्रीहिमें सु से परे आद्युदात्त द्व्यच उत्तरपद आद्युदात्त हो- अधा स्वश्वाः सुरथा मज्जयेम ।

एक सौ बीस- वीरवीर्यौ च ॥

ये दोनों भी आद्युदा० हों- सुवीरेण ते सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।

एक सौ इक्किस- कूल तीर तूल मूल शाला अक्ष समव्ययीभावे ॥

अव्ययीभाव में ये ६ आ० हों- उपकूलम् उपतीरम् उपतूलम् उपमूलम् उपशालम् उपाक्षम् त्रिषमम् ।

एक सौ बाईस- कंस मन्थ शूर्प पाय्य काण्डं द्विगौ ॥

द्विगुमें ये ५ आ० हों- द्विकंसः द्विमन्थः त्रिशूर्पः द्विपाय्यम् द्विकाण्डम् ।

एक सो तेईस- तत्पुरुषे शालायां नपुंसके ।

नपुंसकलिंग तत्पुरुषमें शालान्त उत्तरपद आ० हो- ब्राह्मणशालम ।

१२४ कन्था च ।

और कन्था आ० हो- सौशमिकन्थम् आह्वरकन्थम् ।

१२५ आदिश्चिहणादीनाम् ॥

कन्थान्त नपुंसकलिंग समास में चिहण आदि का आदि उदात्त हो- चिहणकन्थम् ।

गण २०७- चिहण मडर मडुर वैतुल पटत्क वैडालिकर्ण वैतालिकर्णि कुक्कट चित्कण चिक्कण ।

एक सो छब्बिस — चेल खेट कटुक काण्ड गर्हायाम् ॥

निन्दा में उत्तरपद में ये आ० हों- पुत्रचेलम् भार्याचेलम् उपानत्खेटम् नगरखेटम् दधिकटुकम् उदश्वित्कटुकम् प्रजाकाण्डम् ।

एक सौ सत्ताईस — चीरमुपमानम् ॥

उपमानवाचक तत्पुरुषमें चीर आ० हो- वस्त्रचीरम् कम्बलाचीरम्।

एक सौ अट्ठाईस — पलल सूप शाकं मिश्रे ॥

मिश्रवाचक तत्पुरुषमें ये आ हों- घृतपललम् घृतसूपः घृतशाकम् ।

एक सो उनतिस- कूल सूद स्थल कर्षाः संज्ञायाम् ।

ये उत्तरपद आ० हों- दाक्षिकूलम् शाण्डिसूदम् दाण्डायनस्थलम् दाक्षिकर्षः ।

एक सो तीस- अकर्मधारये राज्यम् ।

कर्मधारयभिन्न तत्पुरुषमें राज्य आ० हो- ब्राह्मणराज्य क्षत्रियराज्य ।

एक सौ इकतिस- वर्ग्यादयश्च ।

दिगादि के अन्तर्गत वर्ग्य पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर वाच पाठ्य ... पथ ... अपि आ० हों- आर्यावर्ग्यो दस्युवर्ग्य ।

एक सौ बत्तिस- पुत्रः पुंभ्यः ।

पुंलिंग शब्दों से परे पुत्र आ० हो- दाशकिपुत्रः माहिषपुत्रः ।

एक सो तेतिस- नाचार्य राजर्त्विक् संयुक्त ज्ञात्याख्येभ्यः ।

इनसे परे पुत्र आ० न हो- आचार्य-राज ऋत्विक-श्याल-ज्ञातिपुत्रः ।

एक सो चौंतिस- चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः ।

प्राणिभिन्न षष्ठयन्त से परे चूर्ण आदि आ० हों- गोधूम-चूर्णम् मुद्ग-चूर्णम् ।

गण २०८- चूर्ण करिप करिव शाकिन शाकट द्राक्षा तूस्त कुन्दम दलप चमसी चक्कन चौल ।

एक सो पैंतिस — षट् च काण्डादीनि ।

और ६ पूर्वोक्त काण्ड आदि आ० हों- दर्भकाण्डम् दर्भचीरम् तिलपललम् मुद्गसूपः मूलकशाकम् समुद्रकूलम् ।

१३६.कुण्डं वनम्।

वनवाचक तत्पुरुष मे कुण्ड उत्तरपद आदि उदात्त हो- दर्भकुण्डम् शरकुण्डम् ।

१३७ प्रकृत्या भगालम् ॥

भगाल उत्तरपद प्रकृति से हो- कुम्भीभगालम् कुम्भीनदालम् कुम्भी कपालम् ।

१३८ शितेर्नित्याबह्वज्बहुव्रीहावभसत् ॥

बहुव्रीहि में शिति से परे भसत् वर्जित नित्य अबह्वच् उत्तरपद प्रकृति से हो- शितिपादः शित्यंसः शित्योष्ठः।

एक सौ उन्चालिस— गतिकारकोपपदात् कृत् ॥

गति, कारक और उपपद से परे कृत्प्रत्ययान्त प्रकृति से हो- प्रकारक प्रकरणम् इध्मप्रव्रश्चन ईषत्कर ।

१४० उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥

वनस्पति आदि समासमें दोनों पूर्वोत्तर पद प्रकृति से हों- वनस्पति

एक सौ नौ वाँ गण— वनस्पति बृहस्पति शचीपति तनूनपात् नराशंस शुनःशेप शण्डामर्कौ तृष्णावरूत्री बम्बाविश्ववयसौ मर्मृत्यु ।

एक सौ इकतालिस— देवताद्वन्द्वे च ॥

और देवता-वाचक द्वन्द्व में दोनों पद प्रकृति से हों- इन्द्रा-वरुणौ इन्द्रासोमौ इन्द्राबृहस्पती।

१४२ नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु ॥

पृथिवी, रुद्र, पूषन्, मन्थिन् को छोड़कर अनुदात्तादि उत्तरपद परे रहते दोनों पद एक साथ प्रकृति से न हो- इन्द्राग्नी इन्द्रवायू ।

एक सौ ततालिस— अन्तः ।

यह अधिकार-सूत्र है। पाद-समाप्ति तक उत्तरपद अन्तोदात्त हो।

१४४ थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् ।

थ आदि प्रत्ययान्त अन्तो० हों- सुनीथः आवसथः प्रभेदः दूरागतः प्रक्षय, प्रलवः प्रलवित्रम् गोवृषः

१४५ सूपमानात् क्तः ।

सु और उपमान से परे क्तान्त अन्तो० हो- सुभुक्त सुपीत वृकावलुप्त शशप्लुत ।

१४६ संज्ञायामनाचितादीनाम् ।

संज्ञा में आचित आदि वर्जित क्तान्त अन्तो० हो- संभूतो रामायणः।

उद्धृत. शाकल्य: परिजग्धः कौण्डिन्य: धनुःखाता नदी कुद्दालखातं नगरम् हस्तिमृदिता भूमि. ।

दो सौ दसवां गण- आचित पर्याचित आस्थापित परिगृहीत निरुक्त पूति.श्र प्राश्लिष्ट उपस्थित्त।

१४७ प्रवृद्धादीनां च ।

प्रवृद्ध आदि का क्तान्त उत्तरपद अन्त० हो- प्रवृद्धं यानम् प्रवृद्धो वृषलः।

२११ वाँ गण- प्रवृद्ध प्रयुक्त अवहित आरूढ शस्त आदि (आकृतिगण)

१४८ कारकाद्दत्तश्रुतयोरेवाशिषि ।

आशीर्वाद मे कारक से परे दत्त-श्रुत अन्तो०'हों- देवदत्त विष्णुश्रुत

१४९ इत्थम्भूतेन कृतमिति च ।

'इस प्रकार के पुरुष ने किया।' ऐसे समास में क्तान्त अन्तो० हो— सुप्तप्रलपित उन्मत्तप्रलपित प्रमत्तगीत विपन्नश्रुत ।

१५० अनो भावकर्मवचनः ।

भाव और कर्म वाचक अन अन्तोदात्त हो— पयःपानं सुखम् राजभोजना शालयः ।

१५१ मन् क्तिन् व्याख्यान शयनासन स्थान याजकादि क्रीताः ।

कारक से परे ये अन्तो० हों- रथवर्त्म पाणिनिकृति छन्दोव्याख्यान राजशयन ब्राह्मणासन अश्वःस्थान कृत्रिमयाजक अश्वपरिजक गोक्रीत।

१५२.सप्तम्याः पुण्यम ।

सप्तमी से परे पुण्य अन्तो० हो— अध्ययन-पुण्यम ।

१५३ ऊनार्थ कलहं तृतीयायाः ।

तृतीयान्त से परे ऊनार्थ और कलह अन्तो० हो— माषोनम् माषविकलम् वाक्कलहः असिकलहः ।

१५४.मिश्रं चानुपसर्गमसन्धौ ।

असन्धि में अनुपसर्ग मिश्र अन्तो० हो- गुडमिश्राः सर्पिर्मिश्राः ।

१५५ नञो गुणप्रतिषेधे सम्पाद्यर्हहितालमर्थास्तद्धिताः ।

नञ से परे गुण निषेध में सम्पादि, अर्ह, हित, अलमर्थ तद्धित अन्तो० गुण के प्रतिषेध में नञ से परे साम्पादि, अर्ह, हित और अलम अर्थ में तद्धितान्त अन्तो० हों- अकार्णवेष्टकिकम् अच्छैदिकः अवत्सीयः असान्तापिकः ।

१५६ ययतोश्चातदर्थे ।

और अतदर्थ में य और यत्प्रत्ययान्त अन्तो० हों- अपाश्या अदन्त्यम् ।

शतपथ का ३ अ८ ब्राह्मण ३

अब जुहू से पृषदाज्य लेकर अध्वर्यु आगे बढ़कर पूछता है– शमिता, हवि तपा ? वह कहता है– तपा । अध्वर्यु धीरे से कहता है– यह विद्वानों का है । ५

वह इसलिए पूछता है कि विद्वानों का हवि तपा होता है, बेतपा नहीं । शमिता जानता है कि तपा है या बेतपा । ६

वह इसलिए पूछता है कि मैं तपे की जाँच करूँ बेतपे की नहीं । परीक्षकों का हवि तपा ही होता है । बेतपे का दोष शमिता पर होता है अतः तीन बार पूछता है क्योंकि यज्ञ तिहरा होता है । विद्वानों का इसलिए कहता है कि तपाकर परीक्षा करते है, अतः इसे देवों का बताता है ।७

पहले वह हृदय का अभिघार (परीक्षा) करता है क्योंकि हृदय ही मन-आत्मा है, पृषदाज्य प्राण है, वह आत्मा मन मे प्राण धारण कराता है । इस प्रकार जीव ही देवोंका हवि अमृतोंका अमृत होता है ।८

वह इस यजु ६.१८ से अभिघार करता है—

स ते मनो मनसा स प्राणः प्राणेन गच्छताम् ।

[तेरा मन मन से प्राण प्राण से मिले] स्वाहा नहीं कहता क्योंकि यह आहुति नहीं । वे छात्र को वहाँ से हटा देते हैं । ९

वे इसको चात्वाल के पश्चिम से यूप और आग के बीच में से लेजाते हैं तपे हुए को भी अन्य हवियों के समान मध्य से नहीं ले जाते कि कहीं मध्य में इसका संसर्ग विकृत और घायल से न हो जाय, बाहर से इस लिए नहीं ले जाते कि कहीं यज्ञ से बहिष्कृत न हो जाय । अतः वे यूप और आगके बीच से लेजाते हैं । दक्षिणकी ओर रखकर प्रतिप्रस्थाता उसका अवदान (विश्लेषण) करता है, प्लक्ष-शाखाएँ उत्तर-बर्हि होती हैं उनपर अवदान करता है, क्योंकि— १०

जहाँ देवोंने पहले पशु को पाया तो त्वष्टा ने उसके सिर पर वमन कर दिया कि वे उसे नहीं छुएँगे क्योंकि पशु त्वष्टा के हैं । यह सिर मे मस्तिष्क और गर्दन में मज्जा बन गया । अतः वह त्वष्टा के वमन के समान है इसलिए उसे (परीक्षार्थ) न ले । ११

उसका मेध नीचे गिरा, वह यह वनस्पति हुआ उसे देवों ने देखा इसमे प्ररुय और फिर प्लक्ष नाम हुआ । उसीके मेध से इसको समृद्ध और पूर्ण करता है अतः प्लक्ष-शाखाएँ उत्तर-बर्हि हुआ करती हैं ।१२

अब जुहू और उपभृत में तथा वसा-होम-हवनी और समवत्तधानी में आज्य का उपस्तरण करता और जुहू-उपभृत में सुवर्ण-शकल रखता है ।१३

अब वह होता से कहता है– मनोता के लिए हवि के अनुवाक कह । सभी देवता (विद्वान्) छाग के आने पर एकत्र होते हैं कि मेरा नाम लेगा, मेरा नाम लेगा, क्योंकि वह तो सभी की हवि है, सबके मन उस में लगे रहते हैं, उनके मनों को वह प्रसन्न करता है और वे व्यर्थ नहीं जाते अत: यह मनोता के लिए हवि के अनुवाक कहलाता है । १४

वह पहले हृदय का ही अवदान (परीक्षण) करता है, मध्यमें होनेपर भी हृदय की परीक्षा पहले करता है क्योंकि हृदय प्राण है, यहीं से वह ऊपर जाता है । छाग प्राण है, जबतक यह है तबतक वह है, जब उस से यह निकल जाता है तो वह लकड़ीके समान व्यर्थ पड़ा रहता है ।१५

हृदय ही छाग है अत: वह पहले इसके आत्माकी ही परीक्षा करता है यदि किसी की परीक्षा रह जाय तो चिन्ता न करे, क्यों कि इससे सबकी परीक्षा हो जाती है अत: बीच मे रहने पर भी पहले इसी की परीक्षा है । १६

फिर जिह्वा की, क्योंकि यह पूर्वार्ध में आगे है । फिर वक्ष की, यह भी वैसा ही है । फिर एकचर (बायाँ पैर), बगल, यकृत्, वृक्क की । १७

गुदा के तीन भागों की परीक्षा करता है, स्थूल, मध्य, सूक्ष्मतम । मध्य को जुहू मे दो भाग करके, सूक्ष्म को त्र्यङ्ग के लिए । फिर एकचर को श्रोणि को जुहू में रखता है । १८

फिर त्र्यङ्ग के अगले भाग, श्रोणि और गुदा के दो भाग उपभृत् में रखता है, उन पर दो सोने के टुकड़े रखकर घी छोड़ता है । १९

अब यजु: ६,१८ से वसाहोम को ग्रहण करता है—

रेडसि अग्निष्टवा श्रीणातु आपस्त्वा समरिणन् ।

तू हिंसक है, काँपताहै ?यू: (मिश्रण) काँपता सा है । अग्नि तुझे पक्का करे । आग उसे तपाती है । जल तुझे मिलें-मिलायें । जल ही इस को अंगों से रस लाकर देते हैं । २०

वातस्य त्वा ध्राज्यै । (य ६.१८) [हवा की गति के लिए तुझे] हवा अन्तरिक्षमें बहतीहै, उसी के लिए इसे लेताहै अत: यह कहा । २१

पूष्णो रंह्या (य ६.१८)पोषक सूर्यकी गतिके समान गतिके लिए। पूषा के वेग के लिए इसे लेता है अत: यह कहा । २२

ऊष्मणो व्यथिषत् । (य ६.१८) ऊष्मा से तपाया । इसको ऊष्मार्थ लेता है अत;यह कहा । इसके बाद दो बार घी लगाताहै ।२३(शतम्)

अब पार्श्वों या वासि से मिलाता है- प्रयुत द्वेष; ॥ (य ६.१८) [द्वेष हट गया] इससे वह दुष्ट राक्षसो(रोग-क्रिमियो)को हटाता है ।२४

अब जो बचता है उसे समवत्तधानी में लाता है, इसमें हृदय, जिह्वा वक्ष; तनिम, मतस्न(गुर्दे) वनिष्ठु की परीक्षा करता है, उसपर दो बार घी लगाता है । २५

दोनों ओर सोने के टुकड़े इसलिए रखता है कि जब छाग को आग के सामने लगाते हैं तो उसे कष्ट देते हैं । सोना अमर आयु है, उसमें यह स्थापित होता है. इससे उदय होता और जीता है । इसलिए दोनों ओर सोने के शकल होते हैं ।२६

क्योंकि अंगों की तिरछे परीक्षा करता है, बायाँ पैर दाहिनी श्रोणि; दायाँ पैर बाईं श्रोणि, अत; यह तिरछे पैर बढाता है । यदि सीधी परीक्षा करे तो सीधे पैर उठाये । सिर-कन्धे-गर्दन-पिछली जाँघों को नहीं जाँचता क्योंकि-२७

असुरों ने पहले पशु का आलभन किया था, भय-भीत देव उसके पास नहीं गये; उनसे पृथिवी ने कहा- इसकी चिन्ता न करो, मैं उसकी साक्षी होऊंगी जो यह करेंगे । २८

उसने कहा— इन्होंने एक आहुति दी एक छोड़ दी, जो छोड़दी वे ये भाग हैं । तब देवोंने स्विष्टकृत् के लिए तीन अङ्ग अर्पित किये वे व्यंग हुए। तब असुरो ने सिर-कन्धे-गर्दन-पिछली जाँघोंका अवदान किया अत' उनका अवदान न करे । त्वष्टा ने गर्दनपर वमन किया अत: उस का नकरे । अब कहताहै-अग्नि-सोम के लिए छाग की हविका अनुवाक कह । फिर श्रौषट् बोलकर कहता है- उनके लिए हवि की प्रेरणा कर, 'प्रस्थित' नहीं कहता, यह सोम निचोड़ने में कहा जाता है । २९

याज्या की दो आधी ऋचाओं के बीच में वसाहोम करता है । यहाँ यह ऊपर मेघ उठा था इसके जिस रससे प्रजाएँ द्यो के नीचे जीती है । वसासोम-मेघ रस हैं, एक से दूसरे को तीव्र करता है । इससे यह रस खाया जाकर कम नहीं होता । ३०

याज्या की दो अर्धर्चोके मध्य वसाहोमकी आहुति इसलिए दीजाती है कि आधी ऋचा यह पृथिवी तथा आधी वह द्यौ है; दोनोके मध्य में अन्तरिक्ष है, उसके लिए यह आहुति है । ३१

वह यजु ६.१९ के इस मन्त्र से आहुति देता है-

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा ।

[घृत (जल)पान करनेवालो, घृत पिओ, वास के रक्षको, वास की रक्षा करो, तू अन्तरिक्ष की हवि है, यह सुवचन है] इससे विश्वेदेवों के अन्तरिक्ष के लिए आहुति देता है जिसमें प्रजाएं प्राण-उदान लेती हैं । जुहू में शेष बचे से वषट्कृत आहुति दी जाती है । ३२

अब जुहू में पृषदाज्य लेकर कहता है- वनस्पति के लिए अनुवाक बोल । श्रौषट् बोलकर कहता है- वनस्पति के लिए प्रेष दे । वषट् कर आहुति देता है, इससे इस यूप-वज्र को भागी बनाता है, सोम वनस्पति है, वह पशु को ही सोम कर लेता है, दोनों आहुतियोंके मध्यमें आहुति देकर दोनो को व्याप्त कर लेता है । अतः दोनोंके मध्य आहुति है ।३३

उपभृत् में के भागों का साथ-पात्र डालकर कहता है— स्विष्टकृत् अग्निके लिए बोल, श्रौषट्बोलकर कहता है कि इसके लिए प्रेरणा कर और वषट् कहकर आहुति दे देता है । ३४

वसाहोम से बचे को इस मन्त्र (य ६.१६) से दिशाओं मे फेंकता है-

दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥

वसाहोम-रसको सब दिशाओंमें भेजताहै अतः सर्वत्र रस मिलताहै । ३५

अब छाल का स्पर्श करता है, यही उसका समय है, चाहे पहले भी इस भय से छुआ ही हो कि जो क्रिमि थे वे इसने नष्ट किये या नहीं ऐसी शङ्का न भी की हो तो भी इस समय अवश्य छुए । ३६

ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गे अङ्गे निधीतः ।
देव त्वष्टर्भूरि ते सं समेतु सलक्ष्मा य. विषुरूप भवाति ॥
देवत्रा यन्तमवसे सखायो ऽनु त्वा मातापितरो मदन्तु॥(य ६.२०)

इन्द्र (जीवात्मा) सम्बन्धी प्राण-उदान अंग-अंग मे स्थापित हैं । छाल जिस अग से विकृत होता है उसे प्राण-उदान से ठीक करता है । हे त्वष्टः देव, तेरी शक्ति संयुक्त हो जिससे जो अलग-अलग-सी दशा हो वह एकरूप हो जाय । यह कहकर वह इसे पूरा चारों ओर से घेर देता है । तेरे सखा, माता-पिता देवलोक (गुरुकुल) में जाते हुए तुझसे प्रसन्न हों । यह कहकर जहाँ उसके अंगों को परीक्षित किया वहाँ इसको पूरा करके समन्वय करता है जिससे उस स्थान पर उसको पूरा शरीर मिले ॥ ३७

यह आठवें अध्याय का तृतीय ब्राह्मण समाप्त हुआ ।

—※—

❀ समाचार ❀

—आर्यसमाज अनारकली मन्दिर मार्ग नई दिल्ली का वार्षिकोत्सव ९ से १५, नवम्बर १९८७ ई० तक समारोह से मनाया जायेगा।

—शोक है कि शास्त्रार्थ-महारथी अमर स्वामी सरस्वती गाज़ियाबाद [आयु ९४ वर्ष] का देहान्त ४ सितम्बर १९८७ ई. को हो गया।

स्वामी वेदानन्द सरस्वती 'रोपड़' [१०-८-८७ को], कवयित्री महादेवी वर्मा, प्रयाग [११-९-८७को] देहान्तपर शोक व्यक्त किया जाताहै।

❀ हरयाणा के राज्यपाल की श्रद्धाञ्जलि ❀

वेदोंके विद्वान् पं. आशुराम आर्य यजुर्वेद हिस्सा अव्वल का उर्दू तरजुमा करके बिलाशुबः एक अज़ीम काम सरअंजाम दिया है। इससे पं. जी की बेपनाह काबलियत और इल्मियत का अंदाज़ा होता है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से जहां एक तरफ कदीम भारतवर्ष में तर्जे ज़िन्दगी की तस्वीर ज़ह्न में आती है वहीं पुराने वक्तों में रायज धार्मिक हवनों यज्ञों और उनसे मुताल्लिक तहज़ीबो तमद्दुन के बारे में भी बेशकीमत मालूमात हासिल होती है।

जनाब आशुराम आर्य विश्व वेदपरिषद् को चंडीगढ़ शाख के सेक्रेट्री हैं और वेदों के उर्दू मुतरजम के तौर पर उन्होंने इल्मी हल्कों में एक खास मुकाम हासिल कर लिया है। मेरी दुआ है कि वह यह काम अज़ीम तकमील तक पहुँचायें ताकि उर्दूदां और उर्दूख्वाँ तबका इस इल्हामी सहीफा से वाकिफ हो सके।

(हस्ताक्षर) सैय्यद मुज़फ्फर हुसेन बर्नी गवर्नर हरयाणा

❀ उर्दू वेद डा. फारूक अब्दुल्ला को भेंट ❀

श्रीनगर (काश्मीर) ९ जुलाई। चंडीगढ़ का एक नामवर कलमकार और सहाफी मिस्टर आशुराम जो विश्व वेदपरिषद् चंडीगढ़ के जनरल सेक्रेट्री भी हैं आज वज़ीरआला डा. फारूक अब्दुल्ला से मुलाकाती हुए और उन्हें ऋग्वेद और यजुर्वेद का उर्दू तर्जुमा पेश किया, उन्होंने वज़ीर आला को बताया कि सामवेद का उर्दू और हिन्दी तरजुमा हो रहा है और यह रवां साल के दौरान् मुकम्मल होनेकी तवक्को है। मि. आशुराम के अदबी काम की सराहना करते हुए वज़ीर आला ने कहा कि ऐसी कोशिशोंसे बनी नूए इन्सानकी मजमूई तरक्की के लिए मुख्तलिफ मज़ाहब की तालीमात को समझने में मदद मिलेगी।

—पब्लिक रिलेशन जम्मू काश्मीर

१-८-८७ को श्रावणी पर्व मनाया गया जिसमें डा. भारतीय, प्रि० दीवान और पं० आशुराम के प्रवचन हुए, ७-९-८७ को वेदगोष्ठी हुई।

वर्ष ११ अङ्क ११ नवम्बर १९८७ ❀ वेदज्योति ❀ ६०२११। ९२ डाक २०६

नमस्ते! आपका वर्ष पूर्ण होगया, कृपया वार्षिक शुल्क २०) शीघ्र भेजें।

विश्व वेदपरिषद् प्रबन्ध-समिति की बैठक दि० ३-१०-८७ को हुई निश्चय हुआ कि दस वर्ष पूर्व सौ रु. देकर बने संरक्षक पुन: शुल्क दें।

—धन्यवाद है कि श्री प्रमानिन्द्रशास्त्री ने नग.में अष्टाध्यायी-कक्षाएँ चलाई।

दैनन्दिनी मार्गशीर्ष २०४४

तिथि कृष्ण १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३०अमा
वार शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श
नक्षत्र म कृ रो मृ आ पु पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि
तारीख नव ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१
तिथि शुक्ल १ २ ३ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू
वार र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श
नक्षत्र अ ज्ये मू उ उ श्र ध श पू उ रे अ भ कृ रा
तारीख न. २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० दि. १ २ ३ ४ ५

ऐतरेय, शतपथ, निरुक्त सम्पूर्ण

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ, मूल्य ऐतरेय ३०) शतपथ दो काण्ड २०), निरुक्त ३०) शीघ्र मँगाइये।

निवेदक— वीरेन्द्रमुनि अध्यक्ष, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री,
विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर; लखनऊ २२६००६

ऋतवनुकूल हवन-सामग्री

हमने आर्य यज्ञप्रेमियों के आग्रह पर संस्कारविधिके अनुसार हवन-सामग्रीका निर्माण हिमाचलकी ताजी जड़ी बूटियोंसे आरम्भ किया है, उत्तम, कीटाणु-नाशक, सुगन्धित तथा पौष्टिक तत्त्वों से युक्त यह हवन-सामग्री अत्यन्त अल्प मूल्य में प्राप्त है, थोक मूल्य ५) प्रति किलो।
—योगी फार्मेसी, लक्सर रोड, डा० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ.प्र.)

× × × × × × × × × × × × × × × ×

प्रेषक- मुद्रक आदर्श प्रेस, दूरभाष ७२५०१ सेवा में संख्या १३२
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ श्री पुस्तकालय ...

कृपया १९८८ का वार्षिक शुल्क 20/- भेजें। ३ प्रतियाँ भेजी जा रही हैं।

वेद-ज्योति

वर्ष ११ अंक १२ दिसम्बर ८७ई.

सह:-सहस्य मार्गशीर्ष-पौष, २०४४वि०, [illegible] १९८८०१३०८८, दया १६

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक — [illegible] शास्त्री, एम० ए,

सहायक—विमलाशास्त्री, श्री सुधीन्द्र [illegible], श्री आज्ञामित्र शास्त्री

विश्व वेदपरिषद् [illegible] दूरभाष ७३५०१

वार्षिक मूल्य २०), आजीवन २००), एक प्रति २)



स्वामी श्रद्धानन्द-बलिदान दिवस २३-१२-१९८७ को होगा।

सत्यार्थप्रकाश मन्त्र-व्याख्या

वेदोंमें भी विजानतः इत्यादि पदोंमे सन्यासका विधान है(समुल्लास ५)

क्रम३३. ऋषि दीर्घतमा, देवता आत्मा, छन्द अनुष्टुप, स्वर गान्धार

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानत. ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।। [यजु ४०.७]

जिस परमात्मा, ज्ञान, विज्ञान, धर्म तथा सन्यास में विशेष ज्ञाता, विज्ञानयुक्त सन्यासी को सब प्राणीमात्र आत्मा ही के तुल्य होते हैं उस में परमात्मा के एक-भाव को योगाभ्यास से देखने वाले सन्यासी को कौन सा मोह और कौन सा शोक होता है ? अर्थात् न उसका किसी से कभी मोह और न शोक होता है । इसलिए सन्यासी मोह, शोकादि दोषों से रहित होकर सदा सबका उपकार करता रहे ।

[वेद-भाष्य, संस्कारविधि]

यह मन्त्र ईशोपनिषद् में भी है जिसपर शङ्कराचार्य आदिके भाष्य हैं जो तर्क-विरुद्ध हैं—

१- शङ्कर कहते हैं कि 'शोक और मोह तो कामना और कर्मबीज को न जाननेवाले को ही हुआ करते हैं ।' प्रश्न है कि वह कौन है ? जब सभी ब्रह्म है तो वह भी ब्रह्म ही हुआ ।

२ आर्यमुनि- जीव-ब्रह्म-एकता बताने के लिए यही एक मन्त्र इन के पास है जिसे सहस्रों स्थानों मे लिखा गया है, परन्तु यह भाव इस मन्त्र में गन्धमात्र भी नहीं है ।

३ श्री सातवलेकर- सर्वत्र एक आत्मतत्त्व का अनुभव लेनेवालेको ।

४ स्वामी दर्शनानन्द- सम-भाव को देखते हुए को ।

५ श्री हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार- गगा जबतक समुद्र में नहींमली तबतक गंगा, और समुद्र मे मिलते ही गगा नाम समाप्त है ।

इन्होंने तो जीवात्मा की सत्ता ही समाप्त कर दी !

६ ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी(स्वामी जगदीश्वरानन्द)ने एक समदर्शी रोगी को उदाहृत कर बताया कि उसने डंडा मारनेवाले दुष्टको और दूध पिलानेवाले सज्जन डाक्टर को एक ही समझा । पाठक सोचें कि वह कथा पागल की है या समदर्शी महानुभाव की ?

मन्त्रका सत्यार्थ तो महर्षिने ही बताया कि ब्रह्मैकता योग से देखो ।

वेदोत्पत्ति काल गणना

[लेखक—आचार्य विशुद्धानन्द मिश्र एम०ए०, बदायूं उ०प्र०]
(अनुवादिका— आचार्या निर्मला देवी एम०ए० बदायूँ)

श्री करपात्रिणा वेदार्थपारिजातस्य ५१० पृष्ठे यदुक्तं 'वेदानां नित्यत्व-श्रवणात् वेदानामुत्पत्तिकालस्यैवाभावादिति' तदपि न विचारचारु। यथा हि गुरौ ज्ञानं तिष्ठति परं यस्मात्कालात् स कक्षामुपेत्य शिष्येषु तज्ज्ञानं पाठनेन प्रकाशयति तस्मादेव कालात् तज्ज्ञानस्य प्रकाशनमुत्पत्तिर्वा मन्यते लोके, तथैव सृष्टयादौ परमात्मना स्वानुग्रहेण वेदाः ऋषिषु प्रकाशिताः प्रादुर्भाविताः वा, स एव च वेदोत्पत्तिकालः। न हि प्रकाशनात्तेषां नित्यत्वहानिः। यथा च नित्यजीवात्मा नित्यपरमात्मनः यस्मिन्काले नित्यानन्दमनुभवति तस्यानन्दस्य स एव कालः तदुत्पत्तिकालः परिगण्यते, न च तेनाऽऽनन्दस्य नित्यत्वहानिः, अतो वेदानां नित्यत्वे तत्प्रादुर्भावे न काचिद् दोषापत्तिः। प्रत्युत भवद्वाक्ये वेदानामिति शब्दस्य द्विःपाठने तु दोषापत्तिरेव, द्वितीयवारं वेदस्थाने पूर्वपरामर्शकस्य तेषामिति शब्दस्यैव सुवचत्वात्।

यदप्युक्तं 'वर्त्तमान कल्पसृष्टि-काल-गणनाप्यशुद्धेवेति' तदिदमशुद्धकथनं तु यतेर्भवतो विशुद्धमतेरभावादेव, यतो हि न भूमिकायामृषिणा क्वापि सप्त-मन्वन्तराणां कालः समाख्यातः, टिप्पणोल्लेखने दायित्वं तु टिप्पणीकारस्यैव न मूललेखकस्य। किञ्च महर्षि भाष्य भूमिकायां काल-गणना-परिगणने नैकस्याप्यङ्कस्य क्वचिदपि त्रुटिः, प्रत्युत भवत्-सम्प्रदाय-प्रवर्तितेषु वर्त्तमान-पञ्चाङ्गेषु सृष्टि-काल-गणनायां त्रुटिरेव, यतो हि सा गणना समुपलब्ध-मयासुर-रचित-ज्योतिष-ग्रन्थमपि नानुसरति।

अथवा कथं न भवादृशां वेदान्तमतानुयायिनां भ्रमविभ्रमः स्याद् ये ब्रह्मणि संसारसत्ताया एव भ्रमं बिभ्रति? वेदान्तिमत-खण्डकस्य महर्षेर्भाष्य-भूमिकायाः काल-गणना तु वसिष्ठादिमुनि-ग्रन्थसम्मता महर्षिमनु-समर्थिता च, अतो न तत्र शङ्कावलेशलेशस्य सम्भवः।

ननु भवादृशैः वर्त्तमान १९८१ तमे ईसाब्दे सृष्टिकालस्य गताब्दाः १,९५,५८,८५,९८१ प्रदर्शिताः; कथं न ते एव प्रामाण्यमात्रहेतुरिति चेन्न

सृष्टिसंवत्सर-शास्त्रानभिज्ञैस्तत्सख्याऽऽकलनात् ।

यच्चोक्तं 'के मनवः, कथं मन्वन्तरसंज्ञा, कथं च ते चतुर्दशसंख्याकाः, स्वायम्भुवादिसंज्ञाः किम्मूलाः? मन्वादिकल्पनाश्रयणात् तन्मूलस्येतिहास-पुराणस्यापेक्षणं चेत्यर्धकुर्कुटीन्यायानुसरणमेव' इति ।

इहोच्यते— महर्षिणा लिखितं यद् 'यत् सत्यं वेदात् प्रसिद्धं क्वाप्य-न्यत्र गतं तत्प्रमाणमन्यदप्रमाणम्' इत्यनुरुध्य पुराणादिषु नवीनेषु चान्यग्रन्थेषु सत्यग्रन्थेभ्यो यत्सत्यं गृहीतं तदेव ग्राह्यम् । याश्च अनृताः सृष्टि-क्रम-विरुद्धाः कपोल-कल्पनाः कृताः तास्तु न कथमपि ग्राह्याः, परं नैतस्याभिप्रायो यत् पुराणेष्वेव लिखितमेतद् मन्वादिवर्णनं नान्यत्रेति मनुस्मृति-सूर्यसिद्धान्तादौ तत्समुपलम्भात् ! मन्वन्तर-संज्ञा' कथं जाता इत्यस्योत्तरे ऋषिलेख एव द्रष्टव्यः, यथाहि— 'मन्वन्तर-पर्यावृत्तौ सृष्टेर्नैमित्तिक-गुणानामपि पर्यावर्तनं किञ्चित्किञ्चिद् भवतीत्यतो मन्वन्तर-संज्ञा क्रियते'। स्वायम्भुवादि-संज्ञा-मूलत्वे तु मनुः स्वय-माह— 'स्वायम्भुवस्य च मनोः षड्वंश्याः मनवोऽपरे'।

मनूनां च स्वायम्भुवादिसंज्ञास्तु इतिहासमूला एव, यथा— स्वय-म्भुवोऽपत्यं (स्वयम्भू-अण्) स्वायम्भुवः संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वान्न गुणः । स च प्रथमो मनुः । स्वरोचिषोऽपत्यं स्वारोचिषो द्वितीयो मनुः एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तदेवं मनु-मन्वन्तराहोरात्रादीनां याः भ्रान्त-कल्पनाः तास्तु आर्षग्रन्थेभ्य एव अनार्षग्रन्थेषु अनुकृताः, आर्षग्रन्थाश्च वेदोपलब्ध-बीजाङ्कुर-पल्लवा एव, यथा च अथर्ववेदे कल्पगणनाबीजम्—

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।(८.२.२१)

अर्थात् दशसहस्रशताब्द द्वि त्रि चतुर्विन्यासः कल्पः । किञ्चैतस्याः काल-गणनायाः अपि मूलं वेदे यथा—

कियता स्कम्भः प्रविवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेस्य ।
एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र ॥

अथर्व १०.७.९

अर्थाद् भूत-भविष्यत्कालरूपं गृहमेकं सहस्र-स्कम्भेषु धृतम् ।
अत्रालङ्काररूपेण कल्पस्यैकसहस्र-युगानां गणना वर्तते ।

—❀—

❀ हिन्दी-अनुवाद ❀

श्री करपात्री ने वेदार्थपारिजात के पृष्ट ५१० पर जो कहा है कि 'वेदोंकी नित्यता होने से उनके उत्पत्तिकाल का ही अभाव हो जाएगा' यह भी अविचारित है। जैसे कि गुरु में उसका अपना ज्ञान रहता है पर वह जिस समय कक्षा में जाकर अपने ज्ञान को शिष्यों में प्रकाशित करता है उसी समय से उस ज्ञान का प्रकाशन लोक मे माना जाता है उसी प्रकार सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अनुग्रह से अग्नि आदि ऋषियों में वेद प्रकाशित किये, तभी से उनका उत्पत्ति अथवा प्रकाशन-काल माना जाता है। वेदों के प्रकाशन से परमात्मा के नित्य ज्ञान की हानि कैसे हो गई ? अर्थात् कथमपि नहीं हुई. और भी, इसी प्रकार देखिए, जिस काल से नित्य जीवात्मा को परमात्मा के नित्यानन्द की अनुभूति होती है वही काल उस आनन्द का उत्पत्तिकाल माना जाता है, और जीवात्मा के द्वारा उस आनन्द की अनुभूति से परमात्मा के नित्यानन्द मे कोई क्षति नही होती। अत: इस प्रकार नित्य परमात्मा से वेदोत्पत्ति मानने से कोई दोषापत्ति नही, हाँ,आपके वाक्यमे वेदानां शब्दके दुबारा पढ़नेसे अवश्य ही दोषापत्ति है, दूसरे वाक्य में वेदानां के स्थान पर उसके पूर्वपरामर्शक तेषां शब्द का प्रयोग ही समीचीन एवं सुवच है।

यह कथन कि 'भूमिका में वर्तमान कल्प-सृष्टि-काल की गणना भी अशुद्ध है' ठीक नही, आपको विशुद्ध मति के अभाव के कारण यह काल-गणना अशुद्ध लगी, वास्तव मे अशुद्ध नहीं है, क्योंकि महर्षि ने भूमिका मे ७ सन्धियों के काल की कही गिनती नही की। टिप्पणी के लेखन का दायित्व तो टिप्पणी-कार का ही है, ऋषि का नहीं।

महर्षि की भाष्य-भूमिका मे कालगणनागत त्रुटि कही कोई नहीं प्रत्युत आपके सम्प्रदाय-प्रवर्तित वर्तमान पचाङ्गों मे सृष्टिकालगणना में तो त्रुटि अवश्य है, क्योंकि वह आपके मयासुर-रचित ज्योतिष शास्त्र के अनुकूल नही है। अथवा आप जैसों को तो त्रुटि न होने पर भी उसका भ्रम सभव ही है, क्योंकि आप जैसे नवीन वेदान्ती ब्रह्म मे भी ससारकी सत्ता को भ्रम ही मानते हैं, जबकि उसकी सत्ता वस्तुत: पृथक है।

अतः वेदान्तिमतखण्डक महर्षि दयानन्द की भूमिका में त्रुटि का

भ्रम मिथ्या है, भूमिका-गत काल-गणना वसिष्ठादि मुनि ग्रन्थसम्मत तथा महर्षि मनुआदि-रचित स्मृति-समर्थित है, फलतः उसमें शङ्कावकाश सम्भव नहीं।

यदि यह कहा जाय कि आप जैसों ने इस वर्ष १९८१ई. में जो संवत् १ ९५ ५८ ८५ ०८१ दिखाया है उसी को क्यों न ठीक मान लिया जाय, यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि वह गिनती प्रामाणिक शास्त्रज्ञों के द्वारा नहीं कीगई है।

यह जो कहा कि 'मनु कौन हैं, मन्वंतर क्यों हैं, वे संख्या में १४ क्यों हैं, स्वायंभुवादि नामकरण का मूलाधार क्या है? मनु आदि क तो कल्पनाओं का आश्रय ले लेना और उनके मूलभूत पुराण इतिहास आदि की उपेक्षा कर देना आधा तीतर आधी बटेर वाली कहावत को याद दिलाता है।'

इस प्रसङ्ग का मूल समाधान महर्षि ने लिखा है कि 'जो सत्य वेदों से प्रसिद्ध है परन्तु अन्यत्र चला गया है वह प्रमाण के योग्य है, और उसके अतिरिक्त सब अप्रमाण हैं। इस बातको ध्यानमें रखते हुए अग्नि आदि पुराणों में अथवा अन्य नवीन ग्रन्थों में वेदादि सत्य ग्रन्थों से जो सत्य ग्रहण किया है वही ग्राह्य है। जो झूठी बाते सृष्टिक्रम के विरुद्ध और कपोल-कल्पित हैं वे किसी प्रकार भी ग्राह्य नहीं। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि मनु मन्वन्तर आदि का वर्णन पुराणोंमें ही लिखा है, सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थों में भी वह लिखा मिलता है। मन्वन्तर संज्ञाएँ किस प्रकार हुई इस विषय में ऋषि-लेख देखना चाहिए जैसे कि— मन्वन्तर की पर्यावृत्ति में सृष्टि के नैमित्तिक गुणों में कुछ-कुछ पर्यावर्तन होता है इसीलिए मन्वन्तर संज्ञाएँ की जाती हैं।

अष्टाध्यायी अध्याय ६ पाद दो

१५७ अच्कावशक्तौ।

अशक्ति में नञ् से परे अच् तथा क अन्त वाले अन्त उदात्त हों— अपच। अविलिखः

१५८. आक्रोशे च ॥

और आक्रोश में ये दोनों अन्त उ. हों— अपचो अपठोऽयं जाल्मः।

१५९. संज्ञायाम्।

संज्ञा में आक्रोश में नञ् से परे अन्तो. हो— अदेवदत्तः अयज्ञदत्तः।

१६० कृत्योकेष्णुच्चार्वादयश्च ॥

कृत्य उक इष्णुच् तथा चारु आदि अन्तो. हों— अकर्त्तव्य अकरणीय अनागामुक अनलंकरिष्णु अनाढ्यम्भविष्णु अचारु।

गण ११२— चारु साधु यौधिक अनंगमेजय वदान्य अकस्मात्। वर्त्तमान वर्द्धमान त्वरमाण ध्रियमाण क्रियमाण रोचमान शोभमानाः संज्ञायान्। विकार सदृशे व्यस्तसमस्ते। गृहपति गृहपतिक, राजाह्नो - छन्दसि।

१६१ विभाषा तृन्नन्न तीक्ष्ण शुचिषु ॥

ये उत्तरपद में विकल्प से अन्तो. हों — अकर्ता अनन्न अतीक्ष्णम् अशुचिः।

१६२. बहुव्रीहाविदमेतत्तद्भ्यः प्रथमपूरणयोः क्रियागणने ॥

बहुव्रीहि मे इदम् एतद् तद् से परे क्रियागणन में प्रथम और पूरणप्रत्ययान्त अन्तो. हो इदंप्रथमः एतद्द्वितीयः ततत्पञ्चमः।

१६३. संख्यायाः स्तनः ॥

संख्या से परे स्तन अन्तो. हो— द्विस्तना त्रिस्तना चतुःस्तना।

१६४. विभाषा छन्दसि ॥

वेदमें विकल्पसे स्तन अन्तो. हो— द्विस्तनां कुर्याद चतुःस्तनाङ्करोति।

१६५. संज्ञायां मित्राजिनयोः ॥

संज्ञा में मित्र और अजिन उत्तरपद अन्तो. हो— देवामित्र ब्रह्ममित्र कृष्णाजिन वृकाजिन। वार्तिक— मित्र मे ऋषि का प्रतिषेध है— विश्वामित्र ऋषिः।

१६६ व्यवायिनो ऽन्तरम् ॥

व्यवधान वाचक से परे अन्तर अन्तो. हो - वस्त्रान्तरः कम्बलान्तरः

१६७. मुखं स्वाङ्गम् ॥
स्वांगवाचक मुख उत्तरपद अन्तो. हो— गौरमुखः भद्रमुखः।
१६८ नाव्यय दिक्शब्द गो महत स्थूल मुष्टि पृथ वत्सेभ्य: ॥
सूत्रोक्त ८ से परे अन्तो. न हो— उच्चैर्मुख प्राङ्मुख गोमुख महा- मुख स्थूलमुख मेष्टिमुख पृथुमुख वासमुख ।
१६९ निष्ठोपमानादन्यतरस्याम् ॥
निष्ठा और उपमान वाचक से परे विकल्प से अन्तो. हो— प्रक्षालित- मुख सिंहमुख व्याघ्रमुख ।
१७० जातिकालसुखादिभ्यो ऽनाच्छादनात् क्तोऽकृत मत प्रतिपन्ना ॥
आच्छादन—वर्जित जाति, काल और सुख आदि से परे कृत, मत. प्रतिपन्न को छोड़कर क्तान्त अन्तो० हो— सारंगजग्धः मासजातः सुख- जतः दुःखजात ।
१७१ वा जाते ॥
जात विकल्पसे अन्तो० हो— दन्तजात मासजात सुखजात दुःखजात।
१७२. नञ्सुभ्याम् ॥
नञ् और सु से परे अन्तो० हो— अव्रीहिः सुमाष. ।
१७३. कपि पूर्वम् ॥
नञ्-सुसे परे कप् परेरहते पूर्वउदात्त हो— अब्रह्मबन्धुक सुकुमारीक ।
१७४ ह्रस्वान्ते ऽन्त्यात् पूर्वम् ॥
ह्रस्वान्त में अन्त्य से पूर्व वर्ण उदात्त हो— अव्रीहिकः सुमाषकः ।
१७५.बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि ।
उत्तर पदार्थ के बहुत्व में बहु से परे नञ् के समान स्वर हो— बहुव्री- हिक बहुमित्रक ।
१७६ न गुणादयो ऽवयवाः ।
अवयव वाचक गुण आदि अन्तोदात्त न हों— बहुगुणा रज्जुः बहु- क्षर पाद ।
२१३ वॉं आकृति गण — गुण अक्षर छन्द सूक्त अध्याय ।
१७७ उपसर्गात् स्वाङ्गं ध्रुवमपर्शु ।
उपसर्ग से परे पर्शु को छोड़कर अचल स्व- अंग वाचक पद अन्तो० हो— प्रपृष्ठः प्रललाटः ।
१७८ वनं समासे ।
समास में उपसर्ग से परे वन अन्तो० हों— प्रवणे यष्टव्यम् निर्वणे प्रणिधीयते ।

१७९ अन्तः ।

अन्तर् से परे वन अन्तोदात्त हो— अन्तर्वणम् ।

१८०.अन्तश्च ।

उपसर्ग से परे अन्तः अन्तो० हो- प्रान्तः पर्यन्तः ।

१८१ न निविभ्याम् ।

नि और वि से परे अन्तः अन्तो० न हो – न्यन्तः व्यन्तः ।

१८२ परेरभितोभावि मण्डलम् ॥

परि से परे अभितोभावि (कूल-तीर) और मण्डल अन्तो० हो— परिकूलम् परितीरम् परिमंडलम् ।

१८३ प्रादस्वाङ्गं संज्ञायाम् ॥

संज्ञा में प्र से परे अस्वाङ्गवाचक अन्तो० हो- प्रकोष्ठम् प्रगृहम्

१८४.निरुदकादीनि च ॥

और निरुदक आदि अन्तो० हों— निरुदकम् ।

११४वाँ गण- निरुदकम् निरुलपम् निपलम् निर्मशकम् निर्मक्षिकम् । निष्कालकः निष्कालिकः दुस्तरीपः निस्तरीपः निस्तरीकः निरजिनम् उदजिनम् उपाजिनम् । वा० परि से हस्त पाद केश कर्ष भी अन्तो हों ।

१८५.अभेर्मुखम् ।

अभि से परे मुख अन्तो० हो— अभिमुखः ।

१८६.अपाच्च ।

और अप से भी परे मुख अन्तोदात्त हो— अभिमुखः अभिमुखम् ।

१८७ अप स्फिग पूत वीणाञ्जो ऽध्व कुक्षि सीरनाम नाम च ॥

अप से परे सूत्रोक्त ८ शब्द अन्तो० हों- अपस्फिगम् अपपूतम् अपवीणम् अपाञ्जः अपाध्वा अपकुक्षिः अपसीरः अपहलम् अपनाम ।

१८८.अधेरुपरिस्थम् ॥

अधि से परे उपरिस्थवाची अन्तो० हो-- अधिदन्तः अधिकर्णः ।

१८९.अनोरप्रधानकनीयसी ॥

अनु से परे अप्रधान और कनीयस अन्तो० हों- अनुज्येष्ठ अनुमध्यम ।

१९० पुरुषश्चान्वादिष्टः ॥

अनु से परे अन्वादिष्ट पुरुष अन्तो० हो— अनुपुरुषः ।

१९१.अतेरकृत्पदे ।

अति से परे अकृदन्त तथा पद अन्तो० हो— अत्यङ्कुशो नागः अतिपदा शक्वरी ।

१९२. नेर निधाने।

अनिधान (अप्रकाशन) में नि से परे अन्तो० हो— निमूलम् न्यक्षम् नितृणम्।

१९३ प्रतेरश्वादयस्तत्पुरुषे ॥

प्रति से परे अंशु आदि तत्पुरुष में अन्तो० हों— प्रत्यंशुः प्रतिजनः प्रतिराजा।

२१५ वां गण– अंशु जन राजन् उष्ट्र खेटक अजिर आर्द्रा श्रवण कृत्तिका अर्द्ध पुर।

१९४ उपाद् द्व्यजजिनमगौरादयः॥

उप से परे गौरादि को छोड़कर द्व्यच तथा अजिन अन्तो० हों— उपदेव उपेन्द्र उपाजिन।

२१६ वां गण– गौर तैष तैल लेट लोट जिह्वा कृष्णा कन्या गुड कल्ह पाद।

१९५ सोरवक्षेपणे

सु से परे निन्दा में अन्तोदात्त हो– सुप्रत्यवसितः।

१९६. विभाषोत्पुच्छे।

उत्पुच्छ में विकल्प से अन्तो० हो— उत्पुच्छः

१९७ द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहौ ॥

बहुव्रीहि में द्वि-त्रि से परे पात्, दत्, मूर्धा विकल्प से अन्तोदात्त हों– द्विपाद् त्रिपाद् द्विदन् त्रिदन् द्विमूर्धा त्रिमूर्धा।

१९८ सक्थं चाक्रान्तात् ॥

अक्रान्त से परे सक्थ विकल्प से अन्तोदात्त हो— गौरसक्थः श्लक्ष्णसक्थः।

१९९ परादिश्छन्दसि बहुलम् ॥

वेद में सक्थ (सक्थ) का बहुलता से आद्युदात्त हो— अञ्जसक्थमालभेत। वार्तिक– परादिश्च परान्तश्च पूर्वान्तश्चापि दृश्यते।

पूर्वादयश्च दृश्यन्ते व्यत्ययो बहुलं ततः॥

परादि उदाहृत होचुका, परान्त– परिस्कन्धः, पूर्वान्त– मरुद्वृधः, पूर्वादि– दिवोदासाय साम गायते।

यह षष्ठाध्याय का दूसरा पाद समाप्त हो गया॥

—❀—

शतपथ ब्राह्मण ३.८.४

पशुयाग में ११-११ के तीन होते हैं— ११ प्रयाज, ११ अनुयाज, ११ उपयाज। १० हाथ की, १० पैर की अंगुलियाँ, १० प्राण, प्राण, उदान, व्यान, इतना ही पुरुष है जो पशुओंमे श्रेष्ठ है, अन्य उसके पीछे अनुपशु हैं। १

अतः कहते हैं कि यज्ञ में वह किया जाता है कि जिससे प्राणी सब अंगों के लिए कल्याणकारी हों। २

वह गुदा के परीक्षार्थ तीन भाग करता है, यह प्राण है, यह आगेको फैली है, यह उसके पीछे चलता है। ३

वह उसके तीन भाग करके एक उपयाजों के लिए, एक जुहू मे, एक उपभृत् में, जिससे वह सब अंगों के लिए लाभकारी जाना जा सके। ४

केवल वही छात्र का स्पर्श करे जो उसे मेधा दे सके। यदि कमजोर, हो तो ऐसा करे कि पेट की चर्बी गुदा की ओर आजाय। यह प्राण है जहाँ यह फैलता है, यह उसके पीछे चलता है। यही छात्र है, जहाँ ५

जब तक यह रहता है तब तक वह है, जब वह निकल जाता है तब यह लकड़ी के समान व्यर्थ पड़ा रहता है। ५

गुदा ही छात्र है, मेद ही मेधा है, यदि वह पतली हो तो स्वयमेव हो जाती है। ६

अब पृषदाज्य (घी-दही) लेता है, यह द्वन्द्व प्रजनन करता है। ७

उससे अनुयाज में काम लेता है, पशु अनुयाज हैं, पृषदाज्य दूध है, अतः उनमें इसे धारण कराता है, वह यह दूध उनमें रखता है, प्राण और अन्न पृषदाज्य हैं, अन्न प्राण है ॥८

इनको सामने काम में लाता है, इस तरह सामने के प्राण को छात्र में धारण कराता है, इसीसे पीछे की ओर उपयाज करके पीछे के प्रा॰ उसमें रखता है, इस तरह दो प्राणों की प्रतिष्ठा होती है, एक ऊपर दूसरी नीचे ९

वह होता अकेले ही दो के लिए वषट् करता है, एक अध्वर्यु के लिए द्वितीय उपयाज-कर्ता प्रतिप्रस्थाता के लिए, यजन के पश्चात् होने से उपयाज नाम पड़ा, इसमें पीछे से उत्पत्ति होती है, पीछे से ही स्त्री के सन्तानें उत्पन्न होती हैं ॥ १०

वह ६.२१ के ये मन्त्र पढ़कर उपयाज (शिष्यको उपदेश) करता है—

समुद्रं गच्छ स्वाहा। [तू यान-विद्या से समुद्र को जा] जल समुद्र और वीर्य है, वह वीर्य को ही सींचता है। ११

अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा [तू विमान-विद्या से आकाश में जा] अन्तरिक्ष में प्रजाएं बनती हैं, वह उसे वहीं के योग्य बनाता है।१२

देवं सवितारं गच्छ स्वाहा [तू देव सविता (ईश्वर-सूर्य) को जान] सविता ही देवोंका प्रेरक है, सविताके प्रेरित ही वह पैदा होता है।१३

मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा [योगविद्या प्राणायामसे प्राणोदानको जान] वह इससे इनको ठीक करता है। १४

अहोरात्रे गच्छ स्वाहा [तू ज्योतिष विद्या से दिन-रात को जान] दिन-रातमें ही सन्तान बनती है. उन्हींमें वह इनको योग्य बनाताहै।१५

छन्दांसि गच्छ स्वाहा [तू ४ वेदों और ७ छन्दों को जान] छन्द, ७ ग्राम्य, ७ जंगली पशु हैं, इनको वह बताता है। १६

द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा [तू सूर्य-पृथिवी और मध्य-लोकोंको जान] प्रजापति ने प्रजा रचकर द्यौ-भूमि के मध्य रख दिया, अतः वह भी इनका ज्ञान कराता है। १७

अब वह अत्युपयाज करता है, यदि न करे तो छात्र वैसे ही रहें जैसे आरम्भ में थे; अधिक करके वह इनको अधिक योग्य बनाता है। १८

यह ब्राह्मण ४, प्रपाठक ६, कंडिका १९२ समाप्त हुई।

अध्याय ८ ब्राह्मण ५

वह उपयाज करता है- यज्ञं गच्छ स्वाहा [तू वेद से यज्ञ को जान]
जल ही यज्ञ है, जल वीर्य है। यह कहकर वीर्य-वृद्धि करता है। १
सोमं गच्छ स्वाहा [तू आयुर्वेद से सोमादि ओषधियों को जान]
वीर्य ही सोम है, उसकी रक्षा का उपदेश करता है। २
दिव्यं नभो गच्छ स्वाहा [तू दिव्य शुद्ध जल का सेवन कर]
जल ही दिव्य नभ है, वह वीर्य है, उसकी वृद्धि कराता है। ३
अग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा [तू प्रकाशमान भूमि-विद्युत् को जान
यह पृथिवी अग्नि वैश्वानर है, यही प्रतिष्ठा है, वह इसे बढ़ाता है। ४
अब मुख-स्पर्श करता है- मनो मे हार्दि यच्छ [मेरा मन प्रसन्न कर]
इस प्रकार उपद्रष्टा अपने को नहीं आहुति देता। ५

अब जाघनियों के विषय में गुरु-पत्नियों से यज्ञ कराते हैं। जघन आधा जाघनी है, स्त्रीयों के जघनार्ध से ही सन्तानें पैदा होती हैं, अतः पत्नी-संयाज करके शिष्य को सन्तानवत् बनाता है। ६

विद्वानों की पत्नियों के लिए छाग का भीतरी भाग परोक्षार्थ देता है, क्योंकि स्त्रियों के भीतर से ही सन्तानें पैदा होती हैं, ऊपरी परोक्ष गृहपति आचार्य के आधीन है क्योंकि ऊपर से ही पुरुष स्त्री पर अधिकार रखता है। ७

अब वे हृदय-शूल के साथ अवभृथ-स्नान के लिये जाते हैं। छाग के आने पर उसको हृदय में शोक होता है जो वहाँ से हृदयशूल में जाता है, उसे तपाकर, छेदकर, शूलपर रखकर, तीन बार हिलाकर, शूल से निकालकर रखता है। ८

अब हृदयशूल को देता है, उसे पृथिवी-जल में न फेंके, अन्यथा शोक ओषधि-वनस्पति-जल में घुस जायगा। ९

किन्तु जल में ही जाकर ऐसे स्थानपर गाड़ दे जहाँ सूखे-गीले का मेल हो, यदि न जाना चाहे तो यूप के सामने जलपात्र लाकर गील-सूखे की सन्धि पर इस मन्त्र से गाड़ दे—

मापो मौषधीर्हिंसीः धाम्नो धाम्नो राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च।
यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च॥ ६.२२

[जल-ओषधिको नष्ट न करें, हे राजा वरुण, हर धाम से हमें न छुड़ा, हे वरुण, आप गौओं को अहन्तव्या कहते हैं हम भी ऐसा ही कहते हैं]

इस प्रकार वह ओषधि-जल को नष्ट नहीं करता और वह इसे वरुण-पाश से छुड़ा देता है। १०

अब वह य ६.२२ पढ़कर अभिमन्त्रण करता है—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। [हमारे लिए जल-ओषधियाँ अच्छे मित्र के समान हों और दुष्ट मित्र के समान उसके लिए हों जो हमसे या जिससे हम द्वेष करते हैं।] जब इसके साथ जाते हैं तो जल-ओषधियाँ मानो उनसे पीछे हटती हैं, अब वे पुनः आती हैं। यह प्रायश्चित किया जाता है। यह अग्नि-सोम या अग्नि के यागमें नहीं करता, अनुबन्ध्या वशा के सम्बन्ध में करता है जिसके वश में सब यज्ञ स्थित है। वशा के साथ चलने से अग्नि, अग्नि-सोम पशु (छाग)-याग की और हृदयशूल के साथ चलने की पूर्त्ति हो जाती है॥ ११

यह अध्याय ८ का ब्राह्मण ५ और अध्याय ८ समाप्त हुआ।

—※—

र चित द्वा ं र ग्र न्थ हैं, उसका पठन-पाठन अवश्य करें।

तृण-राशि स्थः कुक्कुरः

[स्वर्गीय मङ्गलसेन कवि बदायूं]

कोऽपि श्वा तृणराशिस्थः काञ्चिद् गां भोक्तुमागताम्।
सन्दृश्याऽरब्धवानुच्चैर्भषितुं वर्जयन्निव ॥ १

गवोक्तम् शृणु रे मूर्ख ! भक्ष्यं नास्त्येव ते तृणम्।
निवारयसि किं त्व मां भाषं भाषं निरर्थकम् ॥२

दूरं तिष्ठ तदुद्देशाद्भक्षयिष्याम्यहं तदा।
नाहृतं तद्वचस्तस्य कुक्कुरेण परं हठात् ॥ ३

एवं प्राय. स्वभावोऽस्ति मनुष्यस्य दुरात्मनः।
स्वयमत्तुं न शक्नोति भोक्तुं दत्ते न चेतरम् ॥ ४

❁ समाचार ❁

आर्यसमाज अनारकली मन्दिर मार्ग नई दिल्ली का वार्षिकोत्सव ९ से १५ नवम्बर १९८७ ई० तक समारोह से मनाया गया।



नमस्ते! आपका वर्ष पूर्ण होगया, कृपया वार्षिक शुल्क २०) शीघ्र भे

विश्व वेदपरिषद् प्रबन्ध-समिति की बैठक दि० २-१०-८७ को हुई। निश्चय हुआ कि कुछ वर्षो पूर्व सौ रु देकर बने संरक्षक पुनः १००) दें। आगे से वेदज्योति त्रैमासिक कोज।य, अतः अगला अङ्क अप्रैल का होगा।

दैनन्दिनी पौष २०४४

तिथि कृष्ण १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० अमा
वार र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र
नक्षत्र मृ आ पुन पु श्ले म पू उ ह चि स्वा वि अ ज्ये
तारीख दिस. ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०

तिथि शुक्ल १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू
वार सो मं बु गु शु श र सो म बु गु शु श र
नक्षत्र मू पू उ श्र ध श उ रे प भ कृ रो मृ आ
तारीख द. २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ जन. १ २ ३

ऐतरेय, शतपथ, निरुक्त सम्पूर्ण

अनुवादक— आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ, मूल्य ऐतरेय ३०) शतपथ दो काण्ड २०), निरुक्त ३०) शीघ्र मँगाइये।
निवेदक— वीरेन्द्रमुनि अध्यक्ष, ओ३मित्र शास्त्री मन्त्री,
विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर; लखनऊ २२६००६

ऋत्वनुकूल हवन-सामग्री

हमने आर्य यज्ञप्रेमियों के आग्रह पर संस्कारविधि के अनुसार हवन-सामग्री का निर्माण हिमाचल की ताज़ी जड़ी बूटियों से आरम्भ किया है, उत्तम, कीटाणु-नाशक, सुगन्धित तथा पौष्टिक तत्त्वों से युक्त यह हवन-सामग्री अत्यन्त अल्प मूल्य में प्राप्त है, थोक मूल्य ५) प्रति किलो।
—योगी फार्मेसी, लक्सर रोड, डा० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ.प्र.)

× × × × × × × × × × × × × × × × × ———————

प्रेषक- मुद्रक आदर्श प्रेस, दूरभाष ७१५०१ सेवा में संख्या 1328
सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६ श्री पुस्तकालयाध्यक्ष,
गुरुकुल कांगड़ी